कलम, आज उनकी जय बोल

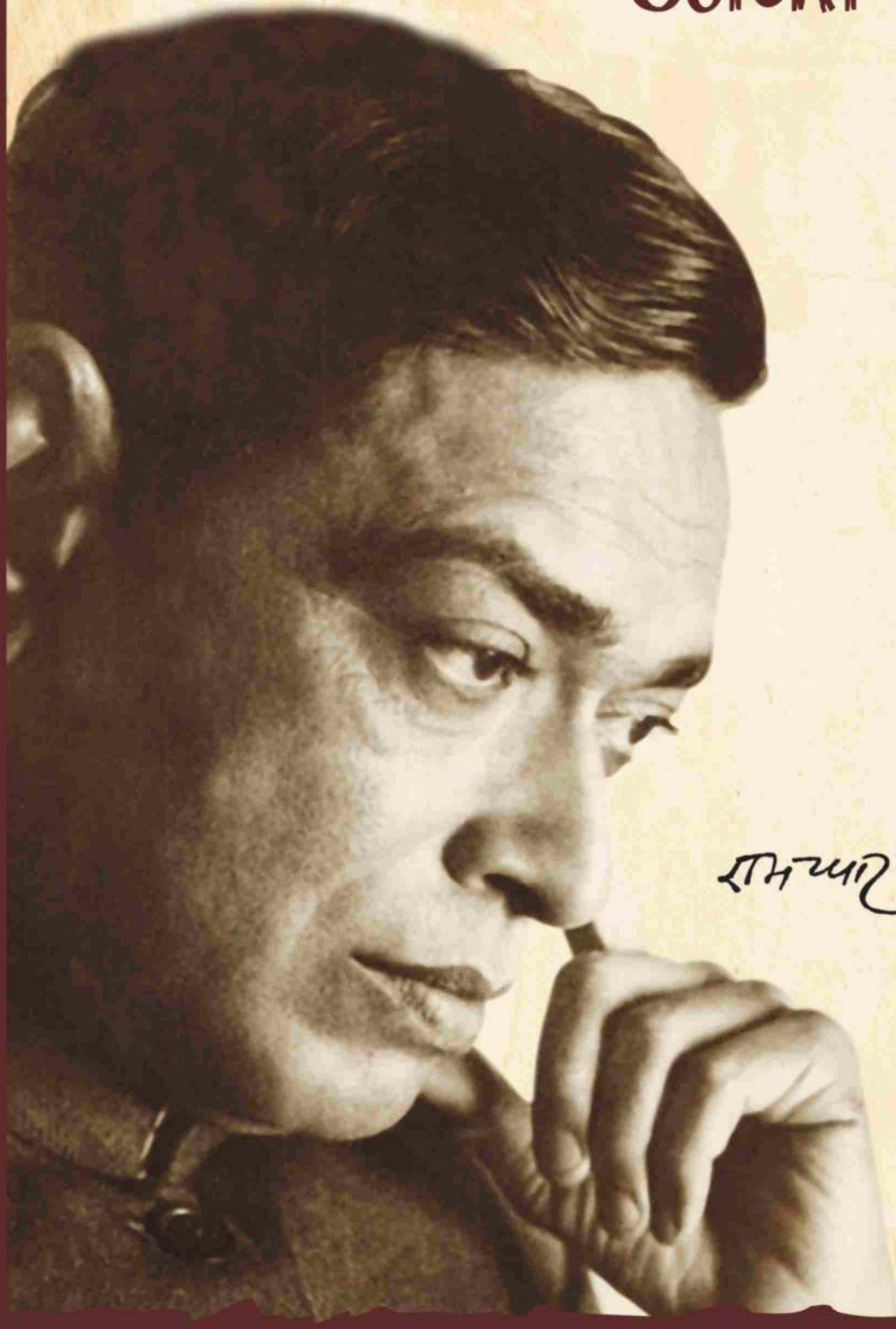

रामधारी सिंह दिनकर

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास
दिनकर नगर, नालंदा, बिहार

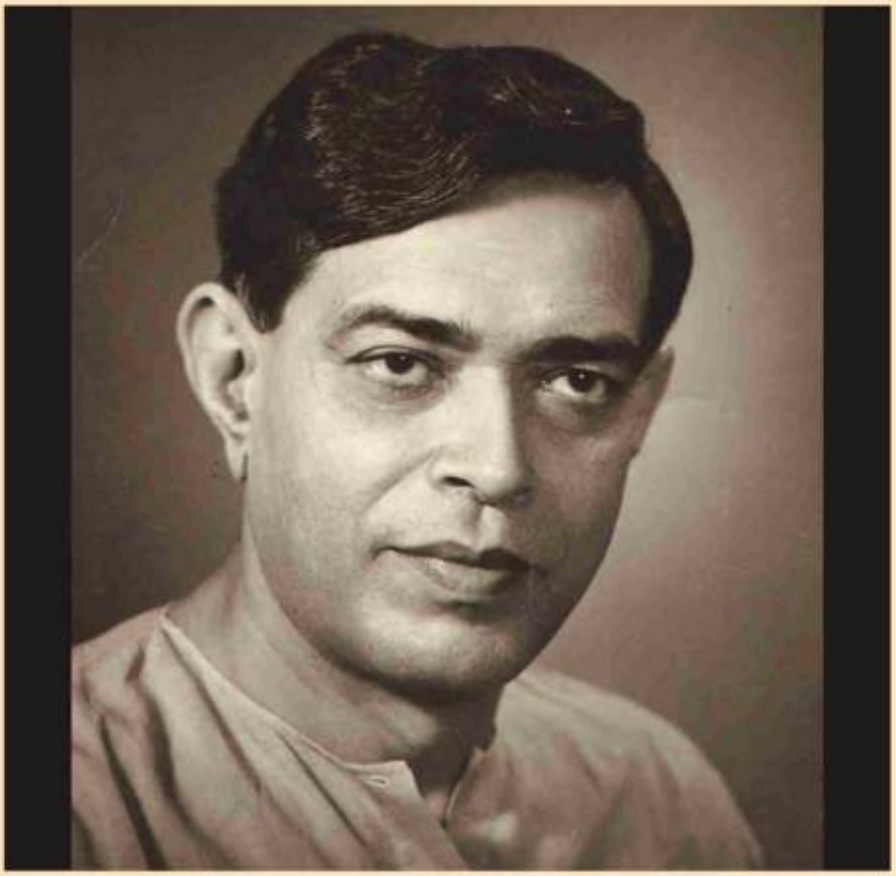

रामधारी सिंह दिनकर

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की कालजयी काव्य-कृति "हुंकार"

के

75 वें वर्ष की स्मृति में

कलम, आज उनकी जय बोल

संपादक:
नीरज कुमार

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास

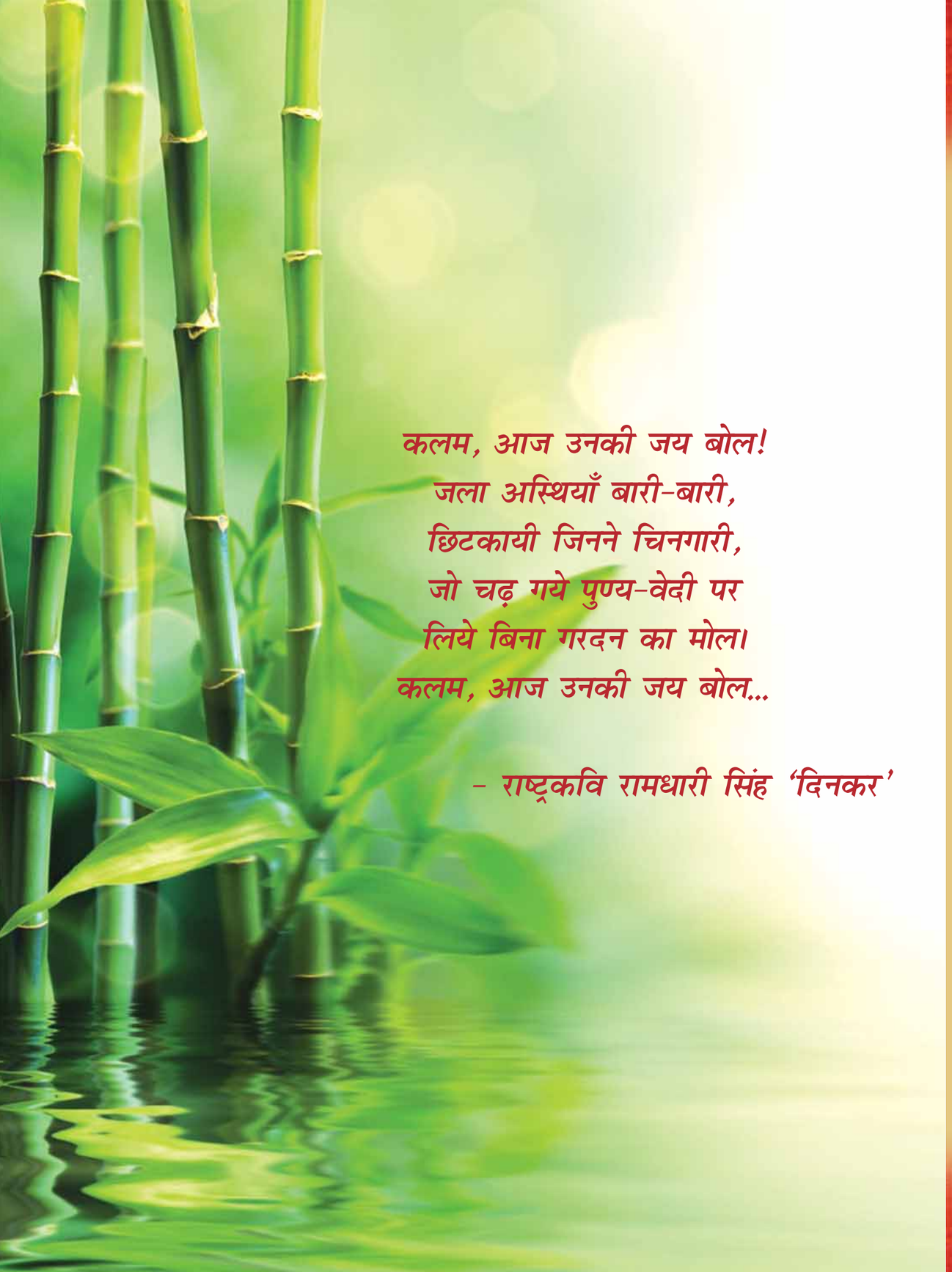

कलम, आज उनकी जय बोल!
जला अस्थियाँ बारी-बारी,
छिटकायी जिनने चिनगारी,
जो चढ़ गये पुण्य-वेदी पर
लिये बिना गरदन का मोल।
कलम, आज उनकी जय बोल...

- राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर'

कलम, आज उनकी जय बोल

संपादक
नीरज कुमार

उप-संपादक
विक्रम आनन्द

सहायक संपादक
राजेश कुमार 'माँझी'

सलाहकार संपादक
डॉ. रतन कुमार पाण्डेय
डॉ. सुभाष चन्द्र राय
गिरीश पंकज, राम विलास

संपादन सहयोग
परीक्षित नारायण 'सुरेश'
नरेन्द्र कुमार शर्मा, अमित कुमार पासवान
अरूण कुमार, दिवाकर कुमार

कलात्मक सहयोग
मनजीत सिंह

ग्राफिक डिजाइन
भूपेन्द्र सिंह चाहर
रामबाबू कुमार

सहयोग राशि रु. 251/-

मुद्रक
एस. के. प्रिन्टर्स, कमला नगर, दिल्ली-110007

प्रकाशक
राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास
206, द्वितीय तल, विराट भवन, कॉमर्शियल कॉम्पलेक्स
डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009

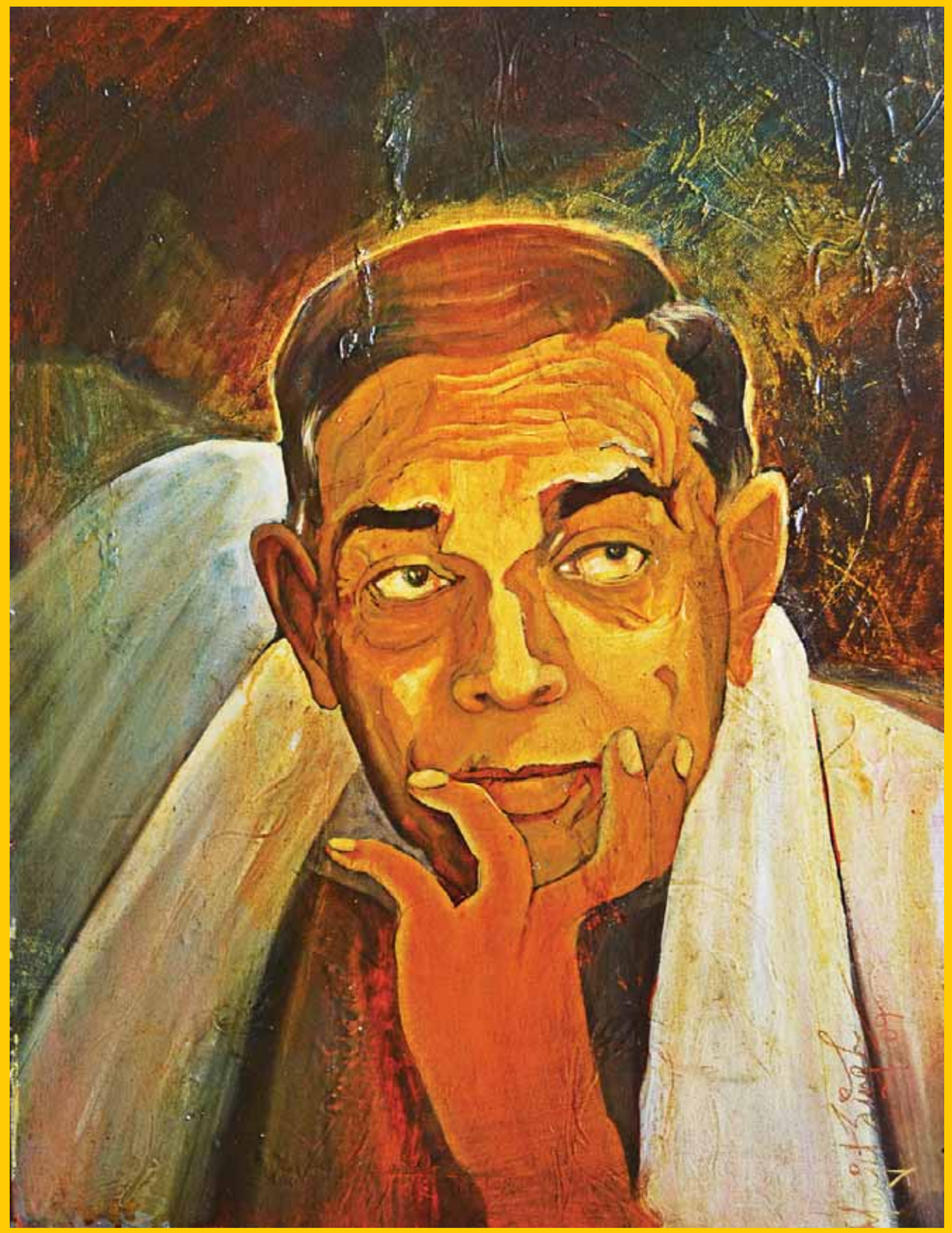

चित्रकार मनजीत सिंह की कलाकृति

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर'

(23-9-1908 - 24-4-1974)

सत्यमेव जयते

अध्यक्ष, लोक सभा
SPEAKER, LOK SABHA

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि महान राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की अमर कृति 'हुंकार' की हीरक जयंती के अवसर पर 12 अगस्त 2015 को फिक्की सभागार, नई दिल्ली में **'कलम, आज उनकी जय बोल महोत्सव'** का आयोजन होने जा रहा है। इस अवसर पर 'रश्मिरथी' काव्य का नाट्य मंचन किया जाएगा, साथ ही "कलम, आज उनकी जय बोल" नामक स्मारिका का लोकार्पण होगा। इसके लिए न्यास के आयोजकगण बधाई के पात्र हैं।

राष्ट्रकवि दिनकर की कृतियां देशप्रेम, राष्ट्रीय चेतना एवं स्वाभिमान तथा संघर्ष की साक्षात् प्रतीक हैं और वे कालजयी हैं। इस अवसर पर प्रकाशित होने वाली स्मारिका के सफल प्रकाशन के साथ–साथ कार्यक्रम के आयोजन की सफलता की भी कामना करती हूं।

(सुमित्रा महाजन)

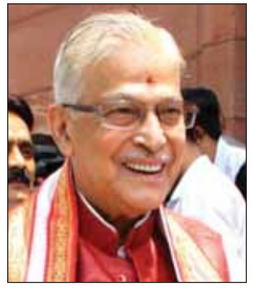

डॉ मुरली मनोहर जोशी
संसद सदस्य (लोक सभा)
अध्यक्ष
प्राक्कलन समिति

52-बी, संसद भवन
नई दिल्ली-110 001
दूरभाष: 23034701, 23017464

शुभकामना संदेश

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास इस वर्ष फिक्की सभागार, तानसेन मार्ग, नई दिल्ली में 12 अगस्त 2015 को राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की कालजयी कृति 'हुंकार' की हीरक जयंती (75वें वर्ष) के सुअवसर पर "कलम, आज उनकी जय बोल महोत्सव" के प्रकाशन की योजना बना रहा है।

राष्ट्रकवि दिनकर राष्ट्रीय चेतना, स्वाभिमान एवं संवेदना के ओजस्वी कवि थे। आजादी की लड़ाई में राष्ट्रकवि दिनकर का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आज भी उनकी कृतियों के अध्ययन और मनन से अन्याय एवं शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने की अद्भुत शक्ति मिलती है।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि हीरक जयंती के अवसर पर इस महोत्सव में 'रश्मिरथी' काव्य का नाट्य मंचन किया जा रहा है और एक स्मारिका ***"कलम, आज उनकी जय बोल"*** का लोकार्पण भी किया जाने वाला है।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास सतत प्रगति के पथ पर अग्रसर रहे, संस्था से जुड़े सभी सदस्यों को मेरी हार्दिक बधाई एवं स्मारिका के सफल प्रकाशन हेतु मेरी अनेक शुभकामनाएं।

(मुरली मनोहर जोशी)

नई दिल्ली;
4 अगस्त, 2015

आवास : 6, रायसीना रोड, नई दिल्ली-110 001 • **दूरभाष** : 23718444, 23711144 • **फैक्स** : 23711772
15/96एच, सिविल लाइंस, कानपुर-208 001 (उत्तर प्रदेश)
दूरभाष : (0512) 2399555 • **ई-मेल** : murli@sansad.nic.in

केदारनाथ सिंह
साहित्यकार

उदयाचल
दिनकर पथ, राजेन्द्र नगर रोड न. 12
पटना- बिहार
दूरभाष: 0612-2687217

संदेश

हुंकार के प्रथम प्रकाशन के पचहत्तर वर्ष पूरे हुए आज भी वर्तमान में 'नयी पीढ़ी' कहलाने के हक़दारों को इस संग्रह की कविताएँ रसानुभूति का दान करती हैं, तो यह प्रमाण बन जाता है इन कविताओं में शाश्वतता-तत्त्व के होने का दिनकर स्मृति न्यास ने इस बात की स्वीकृति-स्वरूप समारोह का आयोजन किया है - तो प्रयास स्तुत्य है।

न्यास अपने लक्ष्य की ओर मजबूत इराओं और क़दमों से आगे बढ़ रहा है। लक्ष्य क्या है? लक्ष्य है भारतवर्ष में साहित्य और संस्कृति का अवलम्ब लेकर एक आन्दोलन खड़ा करना जिससे भारत की सारी भाषाओं में फलने-फूलने वाली सांस्कृतिक चेतनाओं का संगम तैयार हो जाये।

संसार की अधिकतर भाषाएँ विलुप्ति की कगार पर खड़ी हैं। भारतीय भाषाओं पर भी यह संकट आसन्न है। भाषाएँ विरासतों की रक्षिकाएँ हैं। किसी भाषा का मरना एक फूल का मुरझा जाना है।

हम जो ''अनेकता में एकता'' का शोर मचाने वाले हैं, दरअसल इस नारे का वैसा ही उपयोग करते हैं, जैसे बेकार बैठे हैं तो 'चलो बाज़ार घूम आयें के द्वारा समय का उपयोग करते हैं - कुछ खरीद लाये या घूमते-घूमते चाट-वाट खा लिया। ऐसे में हम न तो भाषा की सुरक्षा कर सकते, न रख सकते विरासत को साबुत।

वैश्विकता के कोलाहल ने हमारे चित की स्थिरता बुरी तरह से भग्न कर दिया है। इस नष्ट स्थिर-चित्तता वाले समाज को भाषा और संस्कृति सुरक्षा-अभियान की ओर उन्मुख करने के लिये जिस लगन, उत्साह, उदारता और अनुशासन की ज़रूरत है वह दिनकर स्मृति न्यास को उद्देश्यों तक पहुँचाने को कटिबद्ध इस छोटे समुदाय में दिखता है। जब इसके आयोजनों में मंच साझा करने वालों पर नज़र जाती है तब मतभिन्नता का लिबास उतार कर, मतैक्य के वस्त्रों से सुसज्जित गुणी जनों को देखकर लगता है। न्यास निर्धारित सही मार्ग पर सहजता से बढ़ रहा है, मेरी कामना है कि किसी दिन लोग कहें - दिनकर स्मृति के हम - ऋणी हैं।

- केदारनाथ सिंह
3-8-2015

हरियाणा राज भवन,
चण्डीगढ़ - 160019

HARYANA RAJ BHAVAN,
CHANDIGARH - 160019

सन्देश

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास द्वारा 12 अगस्त 2015 को दिनकर जी की कालजयी कृति 'हुंकार' की हीरक जयंती के अवसर पर ''कलम आज उनकी जय बोल महोत्सव'' का आयोजन किया जा रहा है।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर महान कवि थे जिन्होंने स्थायी शांति एवं स्वत्व की रक्षा के लिए अपनी लेखनी को क्रांतिकारी रूप दिया। उन्होंने देश को उस समय कविता के रूप में शक्ति दी जिस समय देश अंग्रेजों के साथ आजादी के लिए संघर्ष कर रहा था और देश के हर व्यक्ति को उत्साह की जरूरत थी। वह उत्साह दिनकर जी की कविताओ ने भारतीय जनमानस को दिया। तब से वीर रस के कवि को राष्ट्र कवि के रूप में पूरा भारत आदरपूर्वक नमन करता है और आज भी उनके रचनाओं से उत्साहित व प्रेरित होता है।

1938 में प्रकाशित 'हुंकार' वह काव्य–संग्रह जिसकी ओजमयी कविताएं उस समय के युवा वर्ग की जुबान पर सहज ही चढ गईं थीं। इन कविताओं में कवि अतीत के गौरवगान की अपेक्षा वर्तमान के दैन्य के प्रति आक्रोश व्यक्त करता है। इस दृष्टि से 'हुंकार' की कविताएं आज भी प्रासंगिक हैं।

मैं 'हुंकार' की हीरक जयन्ती पर सबको बधाई देता हूं और ''कलम आज उनकी जय बोल महोत्सव'' के सफल आयोजन की कामना करता हूं।

(प्रो0 कप्तान सिंह सोलंकी)

EPABX 0172 -2740581, 2740583 Fax - 0172 - 2740557 E-mail : governor@hry.nic.in

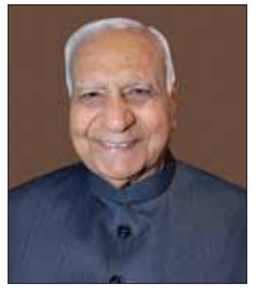

बलरामजी दास टंडन
राज्यपाल छत्तीसगढ़

राजभवन
रायपुर - 492001
छत्तीसगढ़
भारत
फोन : +91-771-2331100
+91-771-2331105
फैक्स : +91-771-2331108

क्र./610/पीआरओ/रास/15
रायपुर, दिनांक 01 अगस्त 2015

संदेश

प्रसन्नता की बात है कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास, दिल्ली द्वारा उनके **'हुंकार'** नामक काव्य संग्रह की हीरक जयंती के अवसर पर 'कलम आज उनकी जय बोल महोत्सव' में स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की कालजयी कृतियां, हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य निधि हैं। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान उन्होंने अपनी ओजस्वी कविताओं के जरिए देशवासियों में देशभक्ति की अलख जगाई। उनके काव्य सृजन, स्वाधीनता के संघर्ष के दौरान देश के लिए अपना बलिदान देने वाले स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को प्रेरित करते रहे। उन्होंने सदैव अन्याय का मुखर होकर प्रतिकार किया। आज भी संवेदना से परिपूर्ण उनकी कृतियां, देशवासियों में अपूर्व उत्साह एवं ऊर्जा का संचार करती है।

मुझे विश्वास है कि यह स्मारिका संकलनीय होगी तथा पाठकों के लिए प्रेरक एवं मार्गदर्शक साबित होगी।

स्मारिका के प्रकाशन पर मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

(बलरामजी दास टंडन)

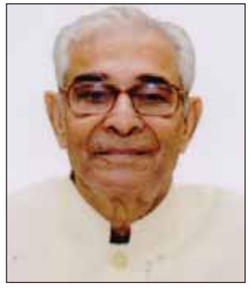

ओ. पी. कोहली
राज्यपाल, गुजरात

राजभवन
गांधीनगर - ३८२ ०२०.

23 JUL 2015

संदेश

राष्ट्रकवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' की कालजयी कृति 'हुंकार' की हीरक जयंती के अवसर पर राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास द्वारा आयोजित 'कलम, आज उनकी जय बोल महोत्सव' में स्मारिका - "कलम, आज उनकी जय बोल" का लोकार्पण किया जायेगा, यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

राष्ट्रकवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' राष्ट्रीय चेतना, स्वाभिमान एवं संवेदना को प्रज्वलित रखनेवाले एक विरल एवं ओजस्वी प्रतिभा संपन्न कवि थे। देश की स्वतंत्रता की लडाई में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनकी कृतियों के अध्ययन और मनन से हमें अन्याय एवं शोषण के विरूद्ध संघर्ष करने की अपार शक्ति प्राप्त होती है।

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' की कालजयी कृति "हुंकार" की हीरक जयंती पर प्रकाशित की जा रही स्मारिका की सफलता हेतु मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

ओ पी कोहली

(ओ० पी० कोहली)

केशरी नाथ त्रिपाठी
राज्यपाल, पश्चिम बंगाल

राजभवन
कोलकाता ७०००६२

संदेश

२७.०७.२०१५

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास, दिल्ली द्वारा दिनांक १२ आगस्त २०१५ को राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर'की कालजयी कृति 'हुंकार' की हीरक जयन्ती के शुभ अवसर पर "कलम, आज उनकी जय बोल महोत्सव" का आयोजन किया जा रहा है। इस अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन भी किया जा रहा है।

मैं उक्त महोत्सव की सफलता एवं स्मारिका के सफल प्रकाशन के लिए अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

केशरी नाथ त्रिपाठी

केशरी नाथ त्रिपाठी

एम. वेंकैया नायडु
M. VENKAIAH NAIDU

सत्यमेव जयते

शहरी विकास,
आवास और शहरी गरीबी उपशमन एवं
संसदीय कार्य मंत्री
भारत सरकार
MINISTER OF URBAN DEVELOPMENT,
HOUSING & URBAN POVERTY ALLEVIATION
AND PARLIAMENTARY AFFAIRS
INDIA

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि दिनांक 12 अगस्त, 2015 को राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर जी की रचना **'हुंकार'** के हीरक वर्ष की स्मृति में **"कलम, आज उनकी जय बोल महोत्सव"** का आयोजन किया जा रहा है। स्वतंत्रता संग्राम में दिनकर जी की कविताओं ने लोगों मे देशभक्ति की मशाल को रोशन रखते हुए आजादी प्राप्त करने के लिए संघर्ष करने की भावना को बढ़ावा दिया। यह भी हर्ष का विषय है कि इस आयोजन के अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है जिसमें प्रकाशित लेखों एवं अन्य रचनाओं के माध्यम से सभी आयु-वर्ग के पाठक दिनकर जी के विचारों से अन्याय व शोषण के विरूद्ध संघर्ष की प्रेरणा लेंगे।

मैं इस समारोह की सफलता एवं स्मारिका के सफल प्रकाशन के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएं देता हूं।

(एम. वेंकैया नायडु)

Office:- Room No. 104-C, Nirman Bhawan, New Delhi-110108; Phone: 011-23061166, 23061162, 23062089 (Fax)
Residence:- 30, Aurangzeb Road, New Delhi - 110011; Phone: 011-23019387, 23019388 (Telefax)

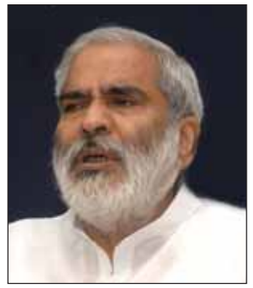

डा. रघुवंश प्रसाद सिंह
DR. RAGHUVANSH PRASAD SINGH

पूर्व - केंद्रीय मंत्री
भारत सरकार
नई दिल्ली - ११० ०११४
Vill. Panapur Shahhpur, P.O. Lavapur
Narayan, Distt. VaishaliBihar

३ अगस्त, २०१५

सन्देश

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की कालजयी कृति 'हुंकार' की हीरक जयंती के अवसर पर "कलम, आज उनकी जय बोल" महोत्सव का आयोजन दिल्ली में किया जा रहा है। तथा इस सुअवसर पर स्मारिका का प्रकाशन भी किया जा रहा है।

समाज और राष्ट्र आरदणीय राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के प्रति आभार व्यक्त करता है जिन्होंने अपने काव्य के माध्यम से साहस एवं संघर्ष के बल पर अन्याय एवं शोषण से लड़ने के लिए अपने कर्म–कौशल, श्रम–उद्यम के बल पर अपना भाग्य संवारने के लिए जन–जन को सचेत किया, प्रेरित किया, जाग्रत किया, प्रबुद्ध किया। आदरणीय दिनकर का काव्य आज भी प्रासंगिक है। शब्दों में भावनाओं को छू लेने व प्रभावित करने का चमत्कार तभी आता है, सदियों तक उसकी गूंज तभी रहती है जब उनमें रचयिता के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की साधना सच एवं साहस भरा होता है।

समारोह के सफल आयोजन एवं "कलम आज उनकी जय बोल" स्मारिका के सफल प्रकाशन की हार्दिक शुभकामना करता हूँ।

(रघुवंश प्रसाद सिंह)

डॉ. हर्ष वर्धन
DR. HARSH VARDHAN

D.O. No. 6220 M(S&TSES)2015
मंत्री
विज्ञान और प्रौद्योगिकी एवं पृथ्वी विज्ञान
भारत सरकार
नई दिल्ली-110001
MINISTER
SCIENCE & TECHNOLOGY AND EARTH SCIENCES
GOVERNMENT OF INDIA
NEW DELHI - 110001

सत्यमेव जयते

संदेश

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर स्मृति न्यास द्वारा राष्ट्रकवि दिनकर की कालजयी रचना 'हुंकार' की हीरक जयंती के अवसर पर 'रश्मिरथी' काव्य का नाट्य मंचन किया जा रहा है तथा इस अवसर पर 'कलम, आज उनकी जय बोल' नामक स्मारिका का लोकार्पण हो रहा है।

दिनकर जी की रचनाएं साहित्य जगत में एक प्रमुख स्थान रखती हैं। अपनी कृतियों के माध्यम से वे समाज और राष्ट्र को प्रेरक संदेश देते रहे। जिस भी विषय पर उन्होंने अपने विचार प्रस्तुत किये, उनमें आज भी जीवंतता कायम है। सौभाग्यशाली हैं कि हमें ऐसे महान कवि और लेखक के विचार पढ़ने को मिले।

मैं इस अवसर पर न्यास के पदाधिकारियों को बधाई देता हूं तथा नाट्य मंचन एवं स्मारिका के अपने प्रयोजन में सफलता की कामना करता हूं।

शुभकामनाओं सहित,

(डॉ. हर्ष वर्धन)

श्री नीरज कुमार
अध्यक्ष,
राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर स्मृति न्यास
206, द्वितीय तल, विराट भवन
कॉमर्शियल कॉम्प्लैक्स
डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110 009

209, अनुसंधान भवन, 2, रफी मार्ग, नई दिल्ली-110001 दूरभाष : +91-11-23316766, 23714230, फैक्स : +91-11-23316745
209, Anusandhan Bhawan, 2, Rafi Marg, New Delhi-110001 Ph.: +91-11-23316766, 23714230, Fax : +91-11-23316745

थावरचन्द गेहलोत
THAAWARCHAND GEHLOT
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री
भारत सरकार
MINISTER OF
SOCIAL JUSTICE AND EMPOWERMENT
GOVERNMENT OF INDIA

सत्यमेव जयते

Dy. No..................../VIP/M/

कार्यालय 202, सी विंग, शास्त्री भवन,
नई दिल्ली–110115
Office : 202, 'C' Wing, Shastri Bhawan,
New Delhi-110115
Tel. : 011-23381001, 23381390, Fax : 011-23381902
E-mail : min-sje@nic.in
दूरभाष: 011-23381001, 23381390, फैक्स: 011-23381902
ई-मेल: min-sje@nic.in

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता है कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर स्मृति न्यास द्वारा उनके द्वारा रचित कालजयी कृति हुंकार की हीरक जयंती (75वें वर्ष) के सुअवसर पर **"कलम आज उनकी जय बोल"** नामक स्मारिका का प्रकाशन ~~का प्रकाशन~~ किया जा रहा है ।

उक्त आयोजन एवं **"कलम आज उनकी जय बोल"** नामक स्मारिका की सफलता के लिए मेरी ओर से शुभकामनाएं ।

21.7.15
(थावरचन्द गेहलोत)

FTS 61746/2015/Desp/HFM

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री
भारत सरकार
Minister of Health & Family Welfare
Government of India

NATIONAL HEALTH MISSION

जगत प्रकाश नड्डा
Jagat Prakash Nadda

सत्यमेव जयते

सन्देश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि राष्ट्रकवि, रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति द्वारा दिनांक 12 अगस्त, 2015 को आयोजित राष्ट्रकवि दिनकर जी की कालजयी कृति 'हुंकार' की हीरक जयंती के सुअवसर पर 'कलम, आज उनकी जय बोल' नाम से एक स्मारिका का प्रकाशन भी किया जा रहा है।

यह अत्यन्त हर्ष की बात है कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के हीरक जयंती (75वें वर्ष) के अवसर पर 'कलम,आज उनकी जय बोल महोत्सव' में उनकी विख्यात काव्य 'रश्मिरथी' का नाट्य मंचन भी होगा। राष्ट्रकवि दिनकर जी राष्ट्रीय चेतना, स्वाभिमान एवं संवेदना के ओजस्वी कवि थे। जिनकी कृतियां समाज में व्याप्त कुरीतियों, अन्याय एवं शोषण के खिलाफ संघर्ष करने में सहायक सिद्ध हुई हैं। दिनकर जी ने अपनी कलम से आजादी की लड़ाई लड़ने वाले स्वतंत्रता सेनानियों को उत्साहित करने वाले काव्य की रचनाएं लिखीं। राष्ट्रकवि की काव्य एवं रचनाएं आज के समाज के लिए पथप्रदर्शक का कार्य करती हैं। आशा है, राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास द्वारा प्रकाशित यह स्मारिका अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल होगी।

आयोजन की सफलता एवं स्मारिका के सफल प्रकाशन के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

(जगत प्रकाश नड्डा)

नई दिल्ली.

348,ए-स्कंध, निर्माण भवन, नई दिल्ली-110011
348, A-Wing, Nirman Bhawan, New Delhi-110011
Tele : (O) : +91-11-23061647, 23061661, 23061751, Telefax : 23062358, 23061648
E-mail : hfwminister@gov.in

Apro/AB/2015/07/23/VJ

दि. 23-07-2015

संदेश

वाङ्‌मयम्, सारस्वतम् एवं साहित्यम्-इन तीनों में से साहित्यम् लोक-भोग्य की श्रेणी में आता है। इसके नामाभिधान में ही **'हित'** की, समाज कल्याण की पावन भावना निहित है। अतः साहित्य ही किसी भी समाज, राष्ट्र या विश्व का परोपकारी अंग स्वीकार हुआ है।

भारत के प्रथम राष्ट्रकवि आदरणीय स्वर्गीय रामधारीसिंह 'दिनकर' वास्तव में साहित्यकाश के आदित्य थे, हैं और रहेंगे। हिन्दी साहित्य का आधुनिक-काल 'दिनकर' की रचनाओं के बिना अधूरा है। राष्ट्रकवि का हिन्दी साहित्य में योगदान अतुलनीय है।

अतीव प्रसन्नता का विषय है कि **राष्ट्रकवि रामधारीसिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास, दिल्ली**, आगामी **12 अगस्त, 2015** को 'दिनकर' की कालजयी रचना **'हुँकार'** की हीरक जयंती के पावन प्रसंग पर एक **स्मारिका-'कलम् आज उनकी बोल'** महोत्सव का आयोजन कर रहा है। इसी सारस्वत अवसर पर दिनकर जी की कृति **रश्मिरथी** का नाट्य मंचन किया जाना, यथार्थ में उनको समर्पित श्रद्धांजलि ही है।

मैं, इस न्यास के सभी परिवार बन्धुओं एवं शब्दसेवी समाजिकों को इस सारस्वत कार्य के लिए बधाई देती हूँ तथा इस समारोह की भव्य सफलता के लिए शुभ-कामनाएं प्रेषित करती हूँ।

(आनंदीबेन पटेल)

डॉ॰ सत्यनारायण जटिया
संसद सदस्य (राज्य सभा)

122, संसदीय सौध,
नई दिल्ली-110001
दूरभाष: 23012006, 23034127
फैक्स: 011-23094298

संदेश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि **राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास** द्वारा 12 अगस्त 2015 को राष्ट्रकवि दिनकर की कालजयी कृति 'हुंकार' की हीरक जयंती के अवसर पर 'कलम, आज उनकी जय बोल महोत्सव' का आयोजन किया जा रहा है। इस अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन भी किया जा रहा है।

दिनकर जी का व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही अतुलनीय है। उनका प्रखर राष्ट्रवाद और उपेक्षितों को सम्मानपूर्ण स्थान का प्रबल आग्रह उनके गहन समाजशास्त्रीय वैज्ञानिक दृष्टि का परिचायक है। वे भारत राष्ट्र की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा के संवाहक कवि थे। इनकी कालजयी रचनाओं में राष्ट्र की प्राणशक्ति विन्यस्त है।

'कलम, आज उनकी जय बोल' स्मारिका, महाकवि की समग्रता को प्रतिबिम्बित करे। स्मारिका संग्रहणीय हो और दिनकर जी की स्मृति को चिरस्मरणीय एवं चिरस्थायी बनाए।

शुभकामनाओं सहित

(डॉ॰ सत्यनारायण जटिया)

BHAGAT SINGH KOSHYARI, M.P. (LS)
(Ex. Chief Minister, Uttarakhand)
CHAIRMAN
Committee on Petitions (Lok Sabha)
MEMBER
- Standing Committee on Energy
- Parliamentary Committee on Ethics
- Consultative Committee, Ministry of Environment & Forests

014, Parliament House Annexe,
New Delhi-110 001
Telephone : 23034351
Telefax : 23019660
E-mail : j123uk@gmail.com

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास द्वारा हुंकार की हीरक जयंती के सुअवसर पर 'कलम, आज उनकी जय बोल' महोत्सव मनाया जा रहा है।

दिनकर जी ने 'संस्कृति के चार अध्याय' से लेकर रेणुका, हिमालय के प्रति, कुरुक्षेत्र, हुंकार आदि काव्यों में भारतीय संस्कृति एवं उसके प्राचीन गौरव की ओजपूर्ण प्रस्तुति की है। उनके काव्य की पंक्तियां आज भी रक्त संचार में इजाफा करा देती हैं। यथा-

'धरकर चरण विजित शृंगों पर झंडा वही उठाते हैं,
अपनी ही उँगली पर जो खंजर की जंग छुड़ाते हैं।'

महाकवि ने अपनी लेखनी के द्वारा देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावना से जन-जन को प्रेरित कर स्वतंत्रता संग्राम को सार्थक गति प्रदान की थी। उनकी अधिकांश रचनाएं राष्ट्रवादी होने के साथ-साथ ओज, शक्ति एवं ललकार से परिपूर्ण थी। उनकी व्यंगात्मक रचनाएं भी काफी धारदार थीं। आशा है दिनकर स्मृति न्यास उनके मुख्य स्वर को महान मुकाम देकर जन-जन में राष्ट्रीयता की भावना पैदा करने में सहायक सिद्ध होगा।

स्मारिका के सफल प्रकाशन एवं इसकी उपयोगिता हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

भवदीय

(भगत सिंह कोश्यारी)

Residence: 14, Lodhi Estate, New Delhi-110 003 • Telephone: 24643487, 24643483 (Fax)
17-A, New Cantt. Road, Dehradun (Uttarakhand) • Telefax: 0135-2746835

श्रीपाद नाईक
SHRIPAD NAIK

राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार)
आयुर्वेद, योग व प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी सिद्ध एवं
होम्योपैथी (आयुष) एवं
राज्य मंत्री (स्वास्थ्य और परिवार कल्याण)
भारत सरकार
MINISTER OF STATE (INDEPENDENT CHARGE) FOR
AYURVEDA, YOGA & NATUROPATHY
UNANI, SIDDHA AND HOMOEOPATHY (AYUSH)
AND MINISTER OF STATE FOR HEALTH & FAMILY WELFARE
GOVERNMENT OF INDIA

सन्देश

मुझे शुभकामना प्रेषित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि "राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास" दिल्ली, राष्ट्रकवि श्री दिनकर जी द्वारा रचित कृति 'हुंकार' की हीरक जयंती (७५ वें वर्ष) के सुअवसर "कलम, आज उनकी जय बोल महोत्सव" मनाने जा रहा है। जोकि राष्ट्रकवि श्री दिनकर जी के लिए सम्मान का प्रतीक है। श्री दिनकर जी का राष्ट्र के प्रति योगदान सराहनीय रहा है। मैं ऐसे महान कवि का ह्रदय से सम्मान करता हूँ। और आशा करता हूँ कि अन्नत काल तक श्री दिनकर जी के प्रति लोगों के दिल में इसी प्रकार सम्मान रहेगा। हीरक जयंती के सुअवसर पर स्मारिका **"कलम, आज उनकी जय बोल"** का लोकार्पण सराहनीय है।

"कलम, आज उनकी जय बोल" स्मारिका के सफल प्रकाशन, एवं सफल लोकार्पण की कामना करते हुऐ स्मारिका के लेखक एवं संस्थान के सभी कर्मचारियों को हार्दिक शुभकामनाऐ।

शुभकामनाओं के साथ,

(श्रीपाद नाईक)

दिनांक 16.07.2015

Office : 101, AYUSH Bhavan, 'B' Block, GPO Complex, INA,
New Delhi-110023
Tel : 011-24651955, 011-24651935 Fax : 011-24651936
Office : 250, 'A' Wing, Nirman Bhavan, New Delhi-110 011
Tel. : 011-23061016, 011-23061551 Fax : 011-3061157 Telefax : 23062828
E-mail : shripad.naik@sansad.nic.in

Res (Delhi) : 1, Lodhi Estate, New Delhi-110 003. Tel. : 011-24635396, 011-24641398
Res. (Goa) : "Vijayshree" House No. 111 St. Pedro, Oldgoa, Goa-403402
Tel. :0832-2444510 Fax : 0832-244088

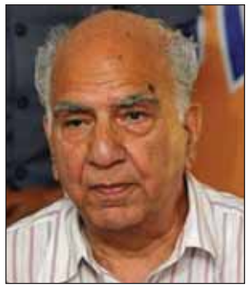

शान्ता कुमार
संसद सदस्य (लोक सभा)
सभापति
सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति

147, संसद भवन
नई दिल्ली-110001
दूरभाष: 23034639
टेलीफैक्स: 23018475

सन्देश

मुझे यह जानकर हर्दिक प्रसन्नता है कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर स्मृति न्यास द्वारा दिनकर जी की कालजयी कृति 'हुंकार' की हीरक जयंति के अवसर पर स्मारिका प्रकाशित की जा रही है ।

राष्ट्रकवि दिनकर की कालजयी कृतियो का जनमानस तक पहुंचाने में दिनकर स्मृति न्यास का योगदान सराहनीय है ।

समारोह के सफल आयोजन हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनाएं ।

(शान्ता कुमार)

आवास : 23, अशोक रोड, नई दिल्ली-110001 • **दूरभाष** : 23745003, 23745005 • **टेलीफैक्स** : 23745008
यामिनी परिसर, पालमपुर-176061, **दूरभाष** : 01894-230630 • **फैक्स** : 01894-232588 • **मोबा.** : 09418030630/09013869148
ई-मेल : skyamini@gmail.com/shanta.kumar@sansad.nic.in

जनरल (डा.) विजय कुमार सिंह
पी वी एस एम, ए वी एस एम, वाई एस एम (से.नि.)
General (Dr.) Vijay Kumar Singh
PVSM, AVSM, YSM (Retd.)

सांख्यिकी एवं कार्यक्रम
कार्यान्वयन राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार),
विदेश राज्य मंत्री एवं प्रवासी भारतीय कार्य राज्य मंत्री
भारत सरकार, नई दिल्ली
Minister of State for Statistics and Programme Implementation (Independent Charge),
Minister of State for External Affairs &
Minister of State for Overseas Indian Affairs
Government of India, New Delhi

सन्देश

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास द्वारा उनकी कालजयी कृति 'हुंकार' की हीरक जंयती के पावन अवसर पर 'कलम, आज उनकी जय बोल महोत्सव' का आयोजन और स्मारिका 'कलम, आज उनकी जय बोल' का प्रकाशन किया जा रहा है

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने अपने अद्वितीय साहित्यिक योगदान द्वारा हिन्दी भाषा और साहित्य को जैसी समृद्धि प्रदान की है वैसे उदाहरण हिन्दी जगत में विरले हैं। उन्होंने अपनी जीवंत संवेदना के माध्यम से काव्य और गद्य दोनों क्षेत्रों में उत्कृष्ट कोटि के साहित्य का सृजन किया। जहाँ उनके काव्य में देश प्रेम, राष्ट्रीय चेतना और श्रृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है, वहीं संस्कृति के चार अध्याय, अर्द्ध–नारीश्वर, मिट्टी की ओर, रेती के फूल आदि जैसी विशिष्ट गद्य रचनाओं में गंभीर चिंतन की झलक मिलती है।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' जी की स्मृति को श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए मैं इस समारोह तथा स्मारिका 'कलम, आज उनकी जय बोल' की सफलता हेतु हार्दिक मंगलकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

जे. के. सिंह

101, Sardar Patel Bhawan, Parliament Street, New Delhi-110001
Tel: 011-23367245, 23340739, 23340884, Fax: 011-23340138

Residence: 36, Aurangzeb Road, New Delhi-110011
Tel: 011-23794516, 23017056, Fax: 011-23013800

हुक्मदेव नारायण यादव, संसद सदस्य
सभापति
कृषि संबंधी स्थायी समिति
(लोक सभा)

सत्यमेव जयते

कार्यालय : 138, संसद भवन,
नई दिल्ली-110 001
फोन : 011-23017502
23034793
फैक्स : 011-23017502

15/7/2015

शुभकामना सन्देश

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुयी कि कलम आज उनकी जयबोल महोत्सव के अवसर पर स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है । राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की कालजयी कृति हुंकार की हीरक जयन्ती मनायी जा रही है । राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर राष्ट्र के गौरव थे। पूरा राष्ट्र हृदय से उन्हें सम्मान देता है । जनभावना को राष्ट्रभावना के रूप में स्थापित किया । पूरा राष्ट्र उनका आभारी रहेगा और अनन्तकाल तक उनकी कविता से प्रेरणा पाते रहेगा । स्मारिका की सफलता की कामना करता हूँ । न्यास इसी तरह पुनीत कार्य करता रहे यही शुभकामना है ।

हुक्मदेव नारायण यादव

तारिक़ अनवर

संसद सदस्य (लोक सभा)
नेता : सदन, राष्ट्रवादी कॉंग्रेस पार्टी
राष्ट्रीय महासचिव, राष्ट्रवादी कॉंग्रेस पार्टी

सत्यमेव जयते

सदस्य : कार्मिक, जन शिकायत, कानून एवं न्याय पर विभाग सम्बन्धी संसदीय स्थायी समिति
सदस्य : परामर्शदात्री समिति, पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय
सदस्य : सरकारी आश्वासनों सम्बन्धी समिति
सदस्य : सामान्य प्रयोजन सम्बन्धी समिति

NCP/TA/3481/2015

23 जुलाई, 2015

प्रिय नीरज जी,

दिनांक 10 जुलाई, 2015 के आपके दो पत्र प्राप्त हुए जिनका मैंने अवलोकन किया है। पहले पत्र के द्वारा यह जानकारी मिली कि राष्ट्रकवि दिनकर की कालजयी कृति "हुंकार" की 'हीरक जयंती' के सुअवसर पर 'राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास' द्वारा दिनांक 12 अगस्त, 2015 को "कलम, आज उनकी जय बोल महोत्सव" का आयोजन किया जा रहा है।

बेहद आभारी हूँ कि आपने मुझे याद रखा और इस कार्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया। कुछ अपरिहार्य कारणवश मैं इस कार्यक्रम में सम्मिलित नहीं हो सकूँगा जिसके लिए खेद है।

दूसरे पत्र के द्वारा यह जानकारी मिली कि इस अवसर पर एक स्मारिका का भी प्रकाशन किया जा रहा है।

मुझे आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि उक्त स्मारिका में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' से जुड़े संस्मरण व लेख तो प्रकाशित होंगे ही, साथ ही यह समाजोपयोगी व ज्ञानवर्द्धक आलेखों से भी सुसज्जित होगी।

"कलम, आज उनकी जय बोल महोत्सव" के सफल आयोजन एवं स्मारिका के उत्कृष्ट प्रकाशन की कामना के साथ,

शुभकामनाओं सहित,

आपका

(तारिक़ अनवर)

श्री नीरज कुमार,
राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास,
206, द्वितीय तल, विराट भवन,
कॉमर्शियल कॉम्प्लेक्स,
डॉ. मुखर्जी नगर,
दिल्ली – 110009

10, डॉ बिशम्भर दास मार्ग, नई दिल्ली - 110 001 फोन : 23350858, 23359218 फैक्स : 23352112
निवास : ए. बी. -11, तिलक मार्ग, नई दिल्ली-110001 फोन : 23384392 फैक्स : 23384374
ई-मेल : t.anwar@sansad.nic.in

विजय गोयल
संसद सदस्य, राज्य सभा

Vijay Goel
Member of Parliament
(Rajya Sabha)

सत्यमेव जयते

10, Ashoka Road
New Delhi - 110001

Tel. : 23782020
Telefax : 23782233
E-mail : contact@vijaygoel.in

03 अगस्त, 2015

सन्देश

यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर; की कालजयी कृति 'हुंकार' की हीरक जयंती के अवसर पर स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

राष्ट्रकवि दिनकर राष्ट्रीय चेतना, स्वाभिमान एवं संवेदना के ओजस्वी कवि थे। आजादी की लड़ाई में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्तमान समय में उनकी काव्य रचनाओं के अध्ययन से अन्याय एवं शोषण के खिलाफ संघर्ष करने की शक्ति प्राप्त होती है।

आशा है, स्मारिका में प्रकाशित सामग्री जनसामान्य के लिए उपयोगी एवं ज्ञानवर्धक होगी।

स्मारिका के सफल प्रकाशन के लिए मेरी ओर से हार्दिक शुभकामनाएं स्वीकार करें।

शुभकामनाओं सहित,

आपका,

(विजय गोयल)

श्री नीरज कुमार
अध्यक्ष,
राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास
206, द्वितीय तल, विराट भवन
कॉमर्शियल कॉम्पलैक्स, डॉ0 मुखर्जी नगर
दिल्ली– 110 009

डॉ. अरुण कुमार
सांसद, लोक सभा

171-72, साउथ एवन्यू
नई दिल्ली
फोन: 011-23018575

संदेश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि **राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास** द्वारा 12 अगस्त 2015 को राष्ट्रकवि दिनकर की कालजयी कृति 'हुंकार' की हीरक जयंती के अवसर पर **'कलम, आज उनकी जय बोल महोत्सव'** का आयोजन किया जा रहा है। इस अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन भी किया जा रहा है।

दिनकर साहित्य उन मूल्यों के लिए समर्पित है, जहाँ भारतीय समाज दुनिया का प्रेरक तत्व बना रहे। एक संदर्भ की चर्चा मैं यहाँ करना चाहूँगा कि ऐतिहासिक लाल किला के कवि सम्मेलन का उद्घाटन करने हेतु भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू जब मंच पर चढ़ रहे थे तो लड़खड़ा गए, तब राष्ट्रकवि दिनकर ने पीछे से उन्हें थाम लिया। इस पर नेहरूजी ने कहा, दिनकरजी आपने अच्छा किया। जवाब में दिनकरजी ने कहा जब-जब राजनीति लड़खड़ाती है, साहित्य उसे आगे बढ़कर थाम लेता है। नेहरूजी झेप गए और आगे बढ़ गए।

काश! आज के राजनीतिज्ञ इस भाव को समझ पाते और विश्व मानवता का चेतना केन्द्र भारत, मंडल, कमंडल और भूमंडल के सीमित राजनीति से बाहर निकलकर अपने पुरखों के उस इतिहास को संबल देता।

न्यास के सृजन अभियान के लिए सभी आयोजकों को हृदय से बधाई।

राष्ट्रकवि दिनकर ने कहा है:

कुछ समझ नहीं पड़ता रहस्य ये क्या है, जाने भारत में बहती कौन हवा है।
गमलों में हैं जो खड़े सुरम्य सुदल हैं, धरती पर के ही पेड़ दीन दुर्बल हैं ।
जब तक है ये वैषम्य समाज सड़ेगा, किस तरह एक होकर ये देश रहेगा ।।

31/07

(डॉ॰ अरुण कुमार)

R.K. Sinha
MEMBER OF PARLIAMENT
(RAJYA SABHA)

Member :
- Standing Committee on Labour & Employment
- Consultative Committee on Labour & Employment
- Hindi Advisory Committee on Dept of Law & Justice

DELHI - C-1/22, Humayun Road, New Delhi-110003 Tel. : 011-24656645, Telefax : 011-24656646
PATNA - Annapoorna Bhawan, Annapoorna Path, Kurji, Patna - 800 010, Tel. : +91-612-2266666, +91-612-2263949, +91-612-2273949, +91-612-3257528, Fax : +91-612-2263948
E-mail : rkishore.sinha@sansad.nic.in
WEB. : www.rksinha.com

दिनांक–20 / 07 / 2015

शुभकामना संदेश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह "दिनकर" स्मृति न्यास द्वारा 12 अगस्त को राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की कालजयी कृति "हुंकार" की हीरक जयंती के अवसर पर "कलम, आज उनकी जय बोल महोत्सव" का आयोजन किया जा रहा है।

आपकी संस्था इसी प्रकार का सामाजिक कार्य करती रहे। मैं अपनी हार्दिक शुभकामना प्रेषित करता हूँ और आशा करता हूँ कि संस्था अपने कार्य में उत्तरोतर प्रगति करती रहेगी।

रवीन्द्र सिन्हा

(आर० के० सिन्हा)

प्रो. रमा शंकर दूबे
पी-एच.डी., एफ.आई.एस.ए.बी., एफ.बी.आर.एम.
कुलपति
Prof. Rama Shanker Dubey
Ph.D., FISAB, FBRS
Vice-Chancellor

तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर - 812007 (बिहार)
T.M. BHAGALPUR UNIVERSITY
Bhagalpur - 812007 (Bihar)
Phone : + 91 - 641 - 2620100 (O)
: + 91 - 641 - 2620600 (R)
Fax : + 91 - 641 - 2620240
Mob. : 08292490710
e-mail : tmbuvc@gmail.com

पत्रांक / Ref.No. : .....

दिनांक / Dated : 21.07.2015

शुभकामना संदेश

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की कालजयी कृति **'हुंकार'** के प्रकाशन के **'हीरक वर्ष'** पर **'कलम, आज उनकी जय बोल'** महोत्सव का भव्य आयोजन होने जा रहा है तथा इस अवसर पर देश के अमर शहीदों के लिए दिनकर के व्यक्त उदगार **'कलम, आज उनकी जय बोल'** स्मारिका का प्रकाशन भी हो रहा है। देश की वर्तमान परिस्थिति के संदर्भ में ये दोनों ही कार्य अति महत्वपूर्ण हैं। राष्ट्रकवि दिनकर की कृतियों ने न केवल राष्ट्र का मान बढ़ाया है, बल्कि संपूर्ण राष्ट्र की जन चेतना को प्रस्फुटित एवं विकसित करने के लिए उर्वरक के समान नवस्फूर्ति देने का कार्य किया है। दिनकर जी की कविताओं ने आजादी की लड़ाई में अहर्निश लगे रहे असंख्य लोगों में राष्ट्रहित की प्रबल भावना जगाते हुए सदा कर्त्तव्यबोध कराया। राष्ट्रीय भावना राष्ट्र की प्रगति का मूल मंत्र है जिससे सम्पूर्ण मानवता की प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है। राष्ट्रकवि की कविताएँ आज भी पाठकों में नवजीवन, नया जोश एवं राष्ट्रीय नव जागरण का मार्ग बखूबी प्रशस्त करती हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि आप का यह आयोजन एवं स्मारिका का प्रकाशन दिनकर जी की भावना को अक्षुण्ण रखने एवं समाज को जागृत एवं सचेष्ट रखने में एक सार्थक प्रयास सिद्ध होगा।

आपके इस आयोजन के लिए एवं स्मारिका के जनोपयोगी होने की दिशा में हमारी ओर से अमित शुभकामनाएँ!

रमाशंकर दूबे
कुलपति

पूर्व कुलपति, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छत्तीसगढ़)
Former Vice-Chancellor, Guru Ghasidas University, Bilaspur (Chhattisgarh)

Prof. (Dr.) Md. Ishtiyaque
VICE-CHANCELLOR

MAGADH UNIVERSITY
Nil-83, Bodhgaya, Gaya-824234 (Bihar) India
Mob +91-8757652429
Tel +91-631-2222714, 2220387 (R)
FAX +91-631-2221717 (R), 2200572 (O)
Ph. +91-0631 - 2200495 (O)
Website www.magadhuniversity.in
e-mail: mishtaak@gmail.com

Ref. .....

Date 15/7/15

शुभकामना – संदेश

मुझे यह जानकर बेहद खुशी हुई कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास, दिल्ली द्वारा दिनकर जी की लोकप्रिय काव्य–कृति 'हुंकार' के प्रकाशन के 75 वें वर्ष को हरिक वर्ष के रूप में यादगार बनाने का प्रशंसनीय कार्य किया जा रहा है। निश्चय ही दिनकर जी युग–चेतना के सशक्त प्रहरी थे। 'हुंकार', 'रश्मिरथी', 'कुरूक्षेत्र' जैसी रचनाएँ युगों से शोषित, उपेक्षित और प्रताडित मानव जाति के उत्थान के लिए हमेशा याद की जाती रहेंगी। समरस समाज की स्थापना और गैर बराबरी के खिलाफ आवाज बुलंद करना दिनकर जी के व्यक्तित्व की नायाब पेशकश है। ओज और पौरूष के जागरूक पहरूए के रूप में वे हमेशा याद किये जाते रहेंगे।

मुझे इस बात से भी हार्दिक खुशी हुई है कि 'हुंकार' की स्मृति में 'कलम आज उनकी जय बोल' महोत्सव का आयोजन कर कलम की ताकत और उसकी महत्ता को रेखांकित किया जा रहा है।

'रश्मिरथी' में महाभारत के उपेक्षित पात्र कर्ण के ब्याज से दिनकर जी ने उस समाज पर गंभीर व्यंग्य किया है, जिसमें व्यक्ति के गुण को महत्त्व न देकर उसकी जाति को उसकी योग्यता का आधार माना जाता है। इस काव्य का नाट्यमंचन निस्सन्देह प्रभावकारी होगा। 'नहीं फूलते कुसुम मात्र राजाओं के उपवन में' कहकर उन्होंने यही संदेश दिया है।

'हुंकार' की ये पंक्तियाँ दिनकरजी के प्रचंड पौरूष और मानवता के आदर के लिए कितनी सार्थक हैं –

"न देखे विश्व पर मुझको घृणा से, मनुज हूँ सृष्टि का श्रृंगार हूँ मैं।
सुनूँ क्या सिंधु मैं गर्जन तुम्हारा, स्वयं युगधर्म का हुंकार हूँ मैं।।"

इस समारोह के अवसर पर प्रकाशित की जाने वाली स्मारिका की लोकप्रियता और पठनीयता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ और बधाइयाँ।

मो० इश्तियाक
कुलपति

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय
हिसार – 125 004 (हरियाणा) भारत
Chaudhary Charan Singh Haryana Agricultural University
Hisar-125 004 (Haryana) India
(Established by Parliament Act No. 16 of 1970)

प्रो० कृष्ण सिंह खोखर
कुलपति
Prof. K. S. Khokhar
Vice-Chancellor

संदेश

यह बहुत ही हर्ष का विषय है कि दिनांक 12 अगस्त, 2015 को **राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर** की कालजयी कृति **'हुंकार'** की हीरक जयंती के पावन अवसर पर **'कलम, आज उनकी जय बोल'** महोत्सव में स्मारिका के प्रकाशन व उसके लोकार्पण के प्रेरणादायी शुभ कार्य के साथ–साथ इनके **'रश्मिरथी'** काव्य का नाट्य–मंचन किया जा रहा है।

जन–जागरण का शंखनाद करने वाले माँ भारती के ओजस्वी सपूत के प्रति साहित्य–जगत की यही सच्ची श्रद्धांजलि है। बाल्यकाल से ही पारिवारिक एवं सामाजिक घात–प्रतिघातों से जूझने वाले इस महामना को संघर्षों की चोट ने फौलादी बना दिया। बेबाकी से दो टूक बात कहने में ये अपना सानी नहीं रखते और प्रपंच व आडम्बर से ये कोसों दूर रहे। इसी कारण इनकी कविताओं में शुद्ध सत्य की अम्लान कांति है। ये कहते हैं–

'क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो।
उसको क्या, जो दंतहीन, विषरहित, विनीत, सरल हो।'

इन्होंने अपने साहित्य में दलित, शोषित, सर्वहारा वर्ग की आवाज को बुलन्द किया तथा समय के साथ इनका यह स्वर और अधिक दृढ व मुखर होता चला गया। इनका यह आक्रोश ऊपर से ओढा हुआ नहीं था अपितु इनके जीवन का सत्य था जिसे इन्होंने जीया था, तभी ये डंके की चोट कह सके थे–

'वे भी यहीं, दूध से जो अपने श्वानों को नहलाते हैं,
वे बच्चे भी यहीं, कब्र में दूध–दूध जो चिल्लाते हैं।'

संघर्ष के समय भयंकर गर्जन व शांति के समय रस की शीतल अजस्र धार से रससिक्त कर देने की काव्यकला में दिनकर जी सिद्धहस्त थे। स्वर से प्रखर व ह्रदय से कोमल इस कवि की **'कुरुक्षेत्र'**, **'परशुराम की प्रतीक्षा'**, **'उर्वशी'** और **'रसवंती'** जैसी रचनाएँ इसका प्रमाण हैं।

ये सन् 1952 से सन् 1964 तक राज्यसभा के मनोनीत सदस्य रहे। इन्हें **'पद्मभूषण'** के सम्मान से सम्मानित तथा **'संस्कृति के चार अध्याय'** व **'उर्वशी'** हेतु क्रमशः **साहित्य अकादमी** तथा **ज्ञानपीठ पुरस्कार** से पुरस्कृत किया गया।

इनका गद्य–पद्यमय ओजस्वी व सरस साहित्य भावी पीढियों को सदैव प्रेरणा प्रदान करता रहेगा क्योंकि इसमें आशा व उत्साह का स्वर सर्वत्र आलोकित है–

'वह प्रदीप जो दीख रहा है झिलमिल दूर नहीं है,
थककर बैठ गए क्या भाई, मंजिल दूर नहीं है।'

ऐसे तेजस्वी कवि के विषय में **'राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर स्मृति न्यास'** द्वारा प्रकाशित की जाने वाली स्मारिका का लोकार्पण व **'रश्मिरथी'** का मंचन बहुत ही सराहनीय प्रयास है। इसके लिए आपको व आपके सभी सहयोगियों को मैं हार्दिक बधाई देता हूँ और इस सत्प्रयास की सफलता हेतु शुभकामना करता हूँ।

(कृष्ण सिंह खोखर)

प्रो. अवध किशोर राय
पी-एच.डी., डी.एस-सी.(एच.सी.), एफ.बी.एस.,
एफ.पी.एस.आई., एफ.ई.एस.आई.
प्रति-कुलपति
Prof. A. K. Roy
Ph.D., D.Sc. (HC), FBS, FPSI, FESI
Pro- Vice-Chancellor

T.M. BHAGALPUR UNIVERSITY
Bhagalpur - 812007 (Bihar)
Phone : + 91 - 641 - 2620771 (O)
: + 91 - 641 - 2620561 (R)
Mob. : 9431204572
e-mail : tmbuprovc@gmail.com

पत्रांक / Ref.No. : ....

दिनांक / Dated : 20.7.15

संदेश

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की अनमोल कृति 'हुंकार' के प्रकाशन के 'हीरक वर्ष' पर 'कलम, आज उनकी जय बोल' महोत्सव का विराट् आयोजन तथा इस अवसर पर उनके सम्मान में एक स्मारिका का प्रकाशन करने जा रहे हैं। दिनकर युग के ऐसे चारण थे जिनकी किरणें कभी मन्द नहीं होंगी। आपके द्वारा किये जा रहे ये दोनो कार्य अत्यन्त महत्त्व के तथा साधनापूर्ण है।

आप अपने साधना–पथ पर निरन्तर बढ़ते रहें, मेरी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं।

भवदीय,

प्रो०(डा०) अवध किशोर राय
प्रतिकुलपति
ति० मां० भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र - 136 119 (भारत)
KURUKSHETRA UNIVERSITY, KURUKSHETRA - 136 119 (INDIA)
(Established by the State Legislature Act XII of 1956)
("A" Grade, NAAC Accredited)

डा. कृष्ण चन्द रल्हाण
कुल सचिव
Registrar

संदेश

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास, दिल्ली द्वारा 12 अगस्त, 2015 को राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की कालजयी कृति 'हुंकार' की हीरक जयंती (75वें वर्ष) के पावन अवसर पर "कलम, आज उनकी जय बोल" स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म एक सामान्य किसान के घर में हुआ। उनकी ओजस्वी वाणी लोगों को स्वतन्त्रता संग्राम में सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए प्रेरित करती थी। उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम में लोगों को जागृत करने में अपने साहित्य के माध्यम से महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। उनका बचपन और यौवन ग्रामीण आँचल में व्यतीत हुआ। अपनी काव्य प्रतिभा के आधार पर गंगा तट का यह लाडला पुत्र पूरे विश्व में साहित्य के क्षेत्र में एक चेहरे के रूप में जाना जाता है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' राष्ट्रीय चेतना, स्वाभिमान, संवेदना और पौरुष के सुविख्यात राष्ट्रकवि थे। उनकी कालजयी रचनाओं में हुंकार, रश्मिरथी, कुरुक्षेत्र, उर्वशी, परशुराम की प्रतीक्षा एवं संस्कृति के चार अध्याय हैं, जिन पर उन्हें साहित्य अकादमी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन और भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। वह भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति, भारत सरकार के प्रथम हिन्दी सलाहाकार और राज्य सभा के सदस्य रहे हैं। उन्होंने शिक्षा, भाषा और संस्कृति के क्षेत्र में पुरे विश्व में अपना अग्रणी स्थान बनाया है। उनकी कृतियां आज भी प्रासगिंक हैं जो हमें अन्याय और शोषण के विरूद्ध संघर्ष की शक्ति प्रदान करती हैं।

मैं इस स्मारिका के सफल प्रकाशन की मंगल कामना करते हुए श्री नीरज कुमार और उनके सहयोगियों को हार्दिक बधाई देता हूँ और विश्वास करता हूँ कि यह स्मारिका निश्चित रूप से सुधी पाठकों के लिए प्रेरणा स्त्रोत बनेगी।

डा. कृष्ण चन्द रल्हाण

Phones : 01744-238026 (Off.), Fax : 238035 E-mail: registrarkuk@gmail.com

अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल
भोज (मुक्त) वि.वि.परिसर, कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.) पिन कोड - 462016
दूरभाष : 0755-2491052, मोबाइल: +91 94253 01611
अणु डाक: abvhvbpl@gmail.com, वेबस्थल: www.abvhv.org

संदर्भ: Q-2456
दिनांक: 5-8-15

डॉ. संजय पी. तिवारी
कुलसचिव

संदेश

हर्ष का विषय है कि आज हम युग प्रणेता, चेतना और न्याय के सशक्त हस्ताक्षर कवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' की कालजयी रचना हुंकार की हीरक जयंती मना रहे है। परम आदरणीय राष्ट्रकवि 'दिनकर' जी के लिए इतना कुछ कहा गया है कि मेरे पास शब्द कम पड़ रहे हैं। इतनी महान विभूति के लिए जो भी कहा जाये कम प्रतीत होता है। आपकी कलम से निकला एक-एक शब्द भारतभूमि और यहां जन्मे हम सभी के लिए एक उत्सव है।

आपकी प्रत्येक कृति चाहे वो रेणुका हो या द्वंदगीत, परशुराम की प्रतिक्षा, रश्मिरथी, हुंकार या उर्वशी ही क्यो न हो, इन सभी कृतियों ने सामाजिक सरोकारों के ज्वलंत आदोलन को पुष्ट किया। आपने सिर्फ हिंदी की सेवा की अपितु सांस्कृतिक, भाषाई और क्षेत्रीय विविधताओं से भरे हुए हमारे राष्ट्र को **"युग प्रर्वतक"** के रूप में स्थापित किया ।

मुझे यह कहते हुये गर्व हो रहा है कि 'दिनकर' जी ने मानव की शक्ति चेतना को जागृत करने वाली कविताओं से भारतीय जनमानस के दमित आक्रोश को स्वर दिया। स्वतंत्रता संग्राम में आप विद्रोही कवि कहलाए वहीं स्वतंत्र भारत में आपकी लेखनी ने प्रगतिवाद को उकेरा और राष्ट्र को नवीन दृष्टि प्रदान की।

मैं राष्ट्र कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास को आदरणीय नीरज कुमारजी को इस स्वर्णिम आयोजन के लिए साधुवाद देता हूँ निश्चित तौर पर साहित्यिक एवं सामाजिक उत्थान के लिए समर्पित आपके दो दशकों का यह प्रयास हम सभी के जीवन में ज्ञान, समर्पण और सेवा के बीज पल्लवित करता रहेगा।

(डॉ. संजय पी. तिवारी)

निवास : बी-9, हिल क्रेस्ट कॉलोनी, चूना भट्टी, भोपाल, दूरभाष निवास: 0755-2491032

गिरीश पंकज
(पूर्व सदस्य, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली)

संपादक, सद्भावना दर्पण
28, प्रथम तल, एकात्म परिसर,
रजबंधा मैदान रायपुर, छत्तीसगढ़-492001
मोबाईल: 09425212720

प्रिय भाई,

यह जानकर आत्मिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि न्यास ने अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता की परम्परा का निर्वाह करते हुए फिर एक अभिनंदनीय कदम बढ़या है। इस बार न्यास की ओर से बारह अगस्त को कालजयी राष्ट्रकवि दिनकरजी के महान साहित्यिक अवदान को रेखांकित करने के लिए एक दिवसीय 'कलम, आज उनकी जय बोल महोत्सव' का आयोजन होने जा रहा है। यह किसी से छिपा नहीं है कि हमारे प्रिय महाकवि दिनकर जी ने अपने काव्य-प्रदेय से हिन्दी साहित्य की धारा ही मोड़ दी। छायावादी कविता के दौर में साहित्य को राष्ट्रवादी काव्य-संस्पर्श दे कर नवपथ प्रशस्त किया। उनकी राष्ट्रवादी कविताएँ जब हुंकार भरती हुयी साहित्य के प्रांगण में अव्तरित होती है, तो वे पूरे युग को स्पंदित कर देती है. आज भी उनकी कविताएँ थके-हारे और टूटे मनुष्य में साहस भरती हैं और अन्याय के विरुद्ध जूझने की नवशक्ति प्रदान करती हैं। यहाँ मुझे यह बताते हुए गर्वानुभूति हो रही है कि साहित्य की दुनिया में मेरा पदार्पण दिनकर जी की राष्ट्रवादी और विद्रोही कविताओं के पाठ के कारण ही संभव हुआ, इसलिए वे मेरे पहले साहित्यिक गुरु भी हैं।

'हुंकार' जैसी अग्निधर्मा कविता के पचहत्तर वर्ष पूर्ण होने की सुखद सूचना हिंदी साहित्य के सजग पाठकों और दिनकर जी के अनुरागियों को रोमांचित कर रही है. और यह सुन्दर निर्णय है कि इस अवसर पर न्यास की ओर से विविध कार्यक्रम भी होने जा रहे है तथा दिनकरजी पर केंद्रित स्मारिका 'कलम, आज उनकी जय बोल' का प्रकाशन भी हो रहा है। यह स्मारिका राष्ट्रकवि का पुनर्स्मरण करने की दिशा में अभिनव पहल है। न्यास की यह स्मारिका हुंकार की हीरक जयंती को स्मरणीय बनाने में सहायक सिद्ध होगी। और इसकी सामग्री नयी पीढ़ी को दिनकर जी के विभिन्न पहलुओं से परिचित करने में सहायक भी होगी।

मैं स्मारिका के लिए हृदय की अतल गहराइयों के साथ अपनी हार्दिक शुभकामनाएं व्यक्त करता हूँ. इस साहित्यिक-यज्ञ में मैं भी उपस्थित हो कर दिनकर जी के साहित्यिक ताप का अनुभव करूंगा।

गिरीश पंकज

Karan Singh Tanwar
Vice Chairman, NDMC
Former MLA, Delhi Legislative Assembly

सत्यमेव जयते

NEW DELHI MUNICIPAL COUNCIL
3rd Floor, Palika Kendra, Sansad Marg,
New Delhi-110001
Tel.: (O) 23360065, 23363011(Telefax)
Mobile : 9810996000
E-mail : tanwar_ks@yahoo.in

संदेश

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हुई है कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की कालजयी कृति 'हुंकार' की 75वीं हीरक जयंती के सुअवसर पर **"कलम, आज उनकी जय बोल"** का लोकार्पण किया जा रहा है। आजादी की लड़ाई में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की अपनी एक अलग पहचान है जिन्होंने देश हित में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि उपरोक्त स्मारिका जनहित में जारी होकर समाज के उत्थान एवं विकास में अपनी अहम् भूमिका अदा करेगी। स्मारिका के सफल प्रकाशन हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनायें।

(करण सिंह तँवर)

श्री नीरज कुमार,
अध्यक्ष,
राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास,
206, द्वितीय तल, विराट भवन,
कॉमर्शियल कॉम्पलेक्स,
डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली– 110009

Res. : CB-77A, Ring Road, Naraina, New Delhi-110028 Ph.: 011-25778787 Fax : 25778484

Pawan Kumar Sharma, IAS
Additional Commissioner
East Delhi Municipal
Corporation

EAST DELHI MUNICIPAL CORPORATION
Room No.102, 1st Floor, Udyog Sadan,
Patparganj Industrial Area,
New Delhi-110092.
Phone:011-22144140

Dated: 17/7/2015.

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत हर्ष हुआ कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास द्वारा दिनांक 12 अगस्त 2015 को राष्ट्रकवि दिनकर की 75वीं जयंती के सुअवसर पर **"कलम, आज उनकी जय बोल महोत्सव"** का आयोजन किया जा रहा है।

रामधारी सिंह दिनकर हिन्दी साहित्य की आधुनिक काव्यधारा के एक प्रतिनिधि कवि रहे हैं, जिन्होंने अपनी कृतियों में राष्ट्रीय चेतना, स्वाभिमान और संवेदना का अलंकारिक चित्रण किया है। दिनकर जी की रचना **'भारतीय संस्कृति के चार अध्याय'** से मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ हूं। उन्होंने इस ग्रन्थ में भारतीय समाज के बारे में लिखा है कि "रंग की दृष्टि से संसार में तीन प्रकार के लोग हैं - गोरे, काले और पीले। भारतीय जनता में इन तीनों रंगों के प्रतिनिधि मौजूद हैं और रंगों की दृष्टि से भारतीय मानवता, विश्व मानवता का अदभुत प्रतीक मानी जा सकती है"। उन्होंने इसी रचना में द्रविड़ एवं वैदिक संस्कृति से आरंभ कर आधुनिक हिन्दू संस्कृति के विकास के विभिन्न आयामों के बारे में विस्तृत रूप से विवेचना की है तथा साथ ही साथ हिन्दू संस्कृति पर गैर हिंदू संस्कृतियों जैसे इस्लाम संस्कृति एवं पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव का उल्लेख भी किया है। आधुनिक भारत में समाज के उत्थान के लिए चलाए जा रहे विभिन्न आंदोलनों एवं उनके प्रणेताओं के जीवन एवं योगदान का भी सराहनीय वर्णन उन्होंने किया है।

मुझे खुशी है कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर स्मृति न्यास साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक उत्थान के लिए विभिन्न साहित्यिक कार्यक्रमों एवं महोत्सवों के माध्यम से समाज में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने की दिशा में एक सराहनीय कार्य कर रहा है। संपादक मंडल द्वारा राष्ट्रकवि 'दिनकर' जी से संबंधित महोत्सव में प्रकाशित होने वाली स्मारिका में संदेश लिखने का सुअवसर प्रदान किए जाने पर मैं अपने आपको गौरवान्वित महसूस कर रहा हूं और इसके लिए मैं उन्हें हृदय से धन्यवाद देता हूं तथा मैं इस अवसर पर इस महोत्सव के भव्य आयोजन तथा स्मारिका के सफल प्रकाशन की कामना करता हूं।

भवदीय,

पवन शर्मा

(पवन कुमार शर्मा)

श्री नीरज कुमार,
अध्यक्ष,
रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास,
206, द्वितीय तल, विराट भवन,
कॉमर्सियल कॉम्प्लेक्स,डॉ. मुखर्जी नगर,
दिल्ली-110009

R. P. Singh
Advocate High Court

201, Kedia Chambers, 2nd Floor, Opp. Shantinath Shopping Centre,
S. V. Road, Malad (W), Mumbai- 400 064
Tel. (O) : 2888 3101 Fax : 2888 5427 Email : rpsingh52@yahoo.com

Ref. No. : _____

Date : 30 जुलाई 2015

प्रतिष्ठा में,

आदरणीय नीरज जी,

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास, दिनकर जी की कालजयी कृति **'हुंकार'** की हीरक जयंती के अवसर पर **''कलम, आज उनकी जय बोल''** महोत्सव का आयोजन 12 अगस्त 2015 को दिल्ली में किया जा रहा है। इस महोत्सव में न्यास के द्वारा **स्मारिका** का प्रकाशन भी किया जा रहा है। ऐसे सारस्वत कार्यक्रम में सहभागी होने का अपने अवसर दिया यह मेरे लिये गौरव की बात है।

हिंदी जगत में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' को एक प्राणवान ओजस्वी, युगद्रष्टा कवि के रूप में जो ख्याति मिली, उसकी पृष्ठभूमि में उनकी कवि प्रतिभा तो थी ही, उनके गहन चिंतन मनन और अध्ययन का एक समृद्ध ज्ञानकोष भी था।

ऐसे भव्य ऐतिहासिक महोत्सव पर आप को एवं आप की संस्था को हार्दिक बधाई। इस आयोजन की शानदार, अविस्मरणीय सफलता हेतु मेरी मंगल शुभकामनाएँ स्वीकृति हों।

आपका शुभाकांक्षी,

आर. पी. सिंह, अधिवक्ता
उच्च न्यायालय, मुंबई

संपादकीय

सुनूँ क्या सिन्धु! मैं गर्जन तुम्हारा? स्वयं युग-धर्म का हुंकार हूँ मैं,
कठिन निर्घोष हूँ भीषण अशनि का, प्रलय-गाण्डीव की टंकार हूँ मैं।

राष्ट्रकवि दिनकर राष्ट्रीयधारा के उन कवियों में से हैं जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में साहित्य को माध्यम बनाकर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। दिनकर का साहित्य संसार उनके व्यक्तित्व की छाया है, जहाँ राष्ट्रप्रेम की प्रवाहमयी धारा का उद्वेग है, जहाँ अपनी संस्कृति के प्रति सम्मान की भावना का विस्तार है। दिनकर अपने युग के देश-प्रेम एवं राष्ट्रीयता के प्रतिनिधि कवि है, उनकी भाषा में ओज और भावों में क्रान्ति की ज्वाला तथा शैली में प्रवाह है। दिनकर जी की कविता में विवेकानंद का तेज, महर्षि दयानन्द की सी निडरता एवं कबीर की सी सुधार भावना एवं स्वच्छन्दता विद्यमान है, इसलिए इनको हिंदी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि के रूप में जाना जाता है।

'छीनता हो स्वत्व कोई, और तू, त्याग तप से काम ले, यह पाप है,
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे, बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है'।

हिंदी काव्य जगत में कविवर दिनकर का एक महत्वपूर्ण स्थान है। दिनकर एक ही साथ सुकुमार एवं पौरुष भावों के उद्गाता, विश्वव्यापी राष्ट्रीयता के अनन्य उपासक तथा युवा मानव में कसमसाती क्रान्ति को तीव्र स्वर देने वाले कवि के रूप में हमारे सम्मुख हैं। भारतेन्दु के कंठ से प्रवाहित होने वाले राष्ट्रीय कविता की सरिता दिनकर के कंठ में तरुणाई यौवन एवं जवानी प्राप्त कर लेती है। देश की विपन्नावस्था, कृषकों की आर्त पुकार और दीन-हीन भारतीयों का रूदन इनके काव्य में मुखर हो उठते हैं। कवि ने अन्याय, अत्याचार, राजनीतिक दासता और आर्थिक शोषण के विरुद्ध सशक्त स्वर में विद्रोह का शंखनाद किया है। वे उन प्रश्नों को तलाशते हैं जो सामाजिक विकास और राष्ट्र की उन्नति में बाधक बनते हैं। दिनकर अपनी रचनाओं के लिए कथानक या तो प्राचीन संस्कृति से लेते हैं या फिर सामयिक घटनाक्रमों एवं परिस्थितियों से। जातीय व्यवस्था की वैचारिक अकुलाहट ने राष्ट्रकवि के भीतर आक्रोश का रूप ले लिया। जिसने उनके सम्पूर्ण साहित्य को प्रभावित किया है। 'रश्मिरथी' ऐसी ही सामाजिक समस्या के समाधान के अनुसंधान का प्रयास है, जहाँ कर्ण शोषितों, दलितों और उपेक्षितों का प्रतिनिधित्व करता है।

'मस्तक ऊँचा किये, जाति का नाम लिए चलते हो।
पर, अधर्ममय शोषण के बल से सुख में पलते हो।

दिनकर जी हिंदी साहित्य के अकेले ऐसे कवि हैं, जिन्होंने संपूर्ण राष्ट्रीय काव्य परम्परा को भाव और भाषा की दृष्टि से सरलता, सुबोधता, सरसता और सुस्पष्टता के साथ ओजपूर्ण तेजस्विता प्रदान की है। दिनकर की पहचान हिंदी साहित्य जगत में राष्ट्रीय चेतना के कवि के रूप में होती है। एक ऐसे कवि के रूप में, जिसकी तलवार युद्धकाल में देशवासियों, सिपाहियों के हृदय में पौरुष का संचार कर राष्ट्र को नई तरंगों से स्फूर्त करती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की मोह-भंग की स्थिति को भी दिनकर ने झेला है, बदले परिदृश्य में पूंजीवादी और किसानी के बीच की खाई से वे व्यथित हैं और इस पूंजीवादी व्यवस्था के तहत अपनी सामाजिक असमानता उनसे यह कहलवा देती है-

'श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक-ठिठुर, जाड़ों की रात बिलाते हैं,
युवती के लज्जा-वसन बेच जब ब्याज चुकाये जाते हैं,
मालिक जब तेल-फुलेलों पर पानी-सा द्रव्य बहाते है;

सभ्यता दिनकर जी के चिन्तन का महत्वपूर्ण विषय रहा है। 'संस्कृति के चार अध्याय' दिनकर जी का अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सुप्रसिद्ध शोधपूर्ण ग्रंथ है। इसमें भारतीय संस्कृति के विकास को चार अध्याय में बाँटकर उसकी एक सामाजिक प्रतिभा प्रस्तुत की गई है। दिनकर जी के अनुसार भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषताएँ हैं आध्यात्मिकता, दया, प्रेम, उदारता और सहिष्णुता आदि। अपने इन्हीं गुणों के कारण वह अनेक प्रकार की उथल-पुथल के पश्चात् आज भी पूर्णतया जीवंत हैं और सम्पूर्ण विश्व का नेतृत्व करने में सक्षम हैं। दिनकर जी की कालजयी कृतियों में 'कुरूक्षेत्र', 'रसवन्ती', 'सामधेनी', 'उर्वशी', 'परशुराम की प्रतीक्षा' एवं 'हुंकार'।

न्यास ऐसे अतुलनीय कलमकार के विचारों, ओज, गर्जन-तर्जन एवं हुंकार को जनमानस तक फिर से पहुँचाने के लिए प्रतिबद्ध है। न्यास विगत 20 वर्षों से राष्ट्रकवि दिनकर के सपनों को साकार कर सबल, आत्मनिर्भर एवं समृद्ध भारत के निर्माण में अनवरत योगदान दे रहा है। न्यास देश में एकता उदारता की अलख जगाए रखने हेतु राष्ट्र की मुख्यधारा से कदम से कदम मिला कर चल रहा है। सदियों से चली आ रही भारतीय संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखने हेतु न्यास सम्पूर्ण भारत वर्ष में कला, शिक्षा एवं संस्कृति के संगम को आयोजित करता आ रहा है।

12 अगस्त, 2015
विक्रम संवत् 2072
श्रावण कृष्णपक्ष, त्रयोदशी

इस श्रृंखला में न्यास द्वारा **दिनकर जन्मशताब्दी समारोह** नई दिल्ली, **पुस्तक मेला** रामलीला मैदान, नई दिल्ली, **गातांजलि महोत्सव** नई दिल्ली, **भारतीय शिक्षा-संस्कृति महोत्सव** गया, **पुस्तक मेला** नालंदा, **सूर्य महोत्सव** नालंदा, **पुस्तक-संस्कृति महोत्सव**, दिल्ली, **कविगुरु महोत्सव** शांतिनिकेतन, **मुंशी प्रेमचन्द महोत्सव** दिल्ली, **पुस्तक संस्कृति महोत्सव** मुंबई, **भारत महोत्सव** अहमदाबाद एवं **भारतीय शिक्षा-संस्कृति महोत्सव** खेतड़ी में आयोजित किये गये।

पुस्तक संस्कृति को जन-जन तक पहुँचाने के लिए न्यास ने 'संस्कृति से संवाद', 'हुंकार हूँ मैं', 'समर शेष है', 'पुस्तक संस्कृति विशेषांक', 'स्वामी विवेकानन्द का भारत' स्मारिकाओं को प्रकाशित कर पाठकों के बीच वितरित किया।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की **कालजयी कृति 'हुंकार' की हीरक जयंती** के सुअवसर पर न्यास द्वारा नई दिल्ली के फिक्की सभागार में 12 अगस्त, 2015 को **कलम, आज उनकी जय बोल महोत्सव** का आयोजन किया जा रहा है। यह महोत्सव न्यास के अन्तहीन सांस्कृतिक यात्रा का एक पड़ाव है। इस महोत्सव में **कलम, आज उनकी जय बोल स्मारिका** का लोकार्पण करते हुये हमें हर्ष हो रहा है। स्मारिका हेतु रचनात्मक सहयोग करने के लिये मैं सभी रचनाकारों का आभारी हूँ। महोत्सव की सफलता के लिये मैं संजीव कुमार जी, सदस्य हिन्दी सलाहकार, संसदीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार का भी आभारी हूँ। स्मारिका के प्रकाशन से जो जुड़े सभी सहयोगियों, सलाहकारों को कोटिशः धन्यवाद देता हूँ।

आशा है कि देशवासी राष्ट्रनिर्माण के इस महायज्ञ में न्यास द्वारा की जा रही रचनात्मक कोशिशों को समर्थन प्रदान कर दिनकर जी के सपनों को साकार करने में सहभागी बनेंगे।

नीरज कुमार

अनुक्रम

1. **सृजनकर्म में औपनिवेशिक दासता से मुक्ति की ध्वनि** 45-56
   - *कृष्णदत्त पालीवाल*
2. **क्रांति का कवि** 57-60
   - *रामवृक्ष बेनीपुरी*
3. **क्रोध, करुणा और सौन्दर्य के कवि** 61-64
   - *डॉ. नामवर सिंह*
4. **रश्मिरथी** 65-67
   - *अभय कुमार सिंह*
5. **सामाजिक न्याय के कवि दिनकर** 68-70
   - *प्रो. रमा शंकर दूबे*
6. **कुरुक्षेत्रः एक युद्ध काव्य** 71-74
   - *रामदरश मिश्र*
7. **राष्ट्रीय चेतना के कवि दिनकर** 75-77
   - *डॉ. सुभाषचन्द्र राय*
8. **देवता शायद दरवाजे पर आ गये हैं** 78-81
   - *अरविन्द कुमार सिंह*
9. **मॉरीशस : हिन्द महासागर में छोटा हिन्दुस्तान** 86-87
   - *डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर'*
10. **दिनकर** 88-89
    - *प्रभाकर माचवे*
11. **यादें जो भुलाए न भूलें** 90-92
    - *डॉ. निशा राय*
12. **कालजयी कविः दिनकर** 93-94
    - *छोटे नारायण शर्मा*
13. **दिनकरः बहुआयामी कवि** 95-99
    - *प्रभाकर श्रोत्रिय*
14. **समय के आइने में दिनकर** 100-103
    - *प्रो. नृपेन्द्र प्रसाद वर्मा*
15. **क्रांतिधर्मा कवि दिनकर** 104-105
    - *प्रो. अवध किशोर राय*
16. **जन-जागरण के अग्रदूतः रामधारी सिंह 'दिनकर'** 106-107
    - *राकेश कुमार झा*
17. **मेरे प्रिय कवि** 108-111
    - *जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी*
18. **राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर'** 112-114
    - *रेणु बाला सिन्हा*
19. **साकार, दिव्य, गौरव विराटः दिनकर** 115-119
    - *प्रो. दिलीप सिंह*
20. **संस्कृति के चार अध्यायः एक विशद पड़ताल भारतीय संस्कृति की** 120-125
    - *पंकज सुबीर*
21. **कविवर! किसको नमन करूँ मैं** 126
    - *डॉ. विजय राम रतन सिंह*
22. **दिनकरः राष्ट्रीयता एवं ओजस्विता के कवि** 127-130
    - *डॉ. नीलिमा प्रसाद*
23. **युग द्रष्टा दिनकरः कर्मठ मनुष्य का पथ संन्यास नहीं है** 131-136
    - *डॉ. संजय पंकज*
24. **दलित चेतना एवं शौर्य की कृतिः रश्मिरथी** 137-139
    - *राजेश कुमार 'माँझी'*
25. **दिनकर काव्य और युग - चेतना** 140-143
    - *डॉ. नीलम महतो*
26. **काव्य नायक राष्ट्रकवि 'दिनकर'** 144
    - *रामजी प्रसाद सिंह*
27. **रामधारी सिंह 'दिनकर' की कालजयी काव्य-कृति 'हुंकार'** 145-146
    - *डॉ. बाबूराम*
28. **राष्ट्रकवि दिनकर का कर्ण** 147-151
    - *डॉ. आशा तिवारी ओझा*
29. **प्रभा-पुंज की जय हो** 152
    - *रामसकल विद्यार्थी*
30. **ओज, क्रांति और मूल्यबोध के कवि 'दिनकर'** 153-157
    - *डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश'*
31. **राष्ट्रकवि 'दिनकर'** 158-160
    - *डॉ. कुमार विमल*
32. **कुरुक्षेत्रः हिन्दी का प्रथम युद्ध-काव्य** 161-167
    - *प्रो. गोपेश्वर सिंह*
33. **लोकभाषा का स्वरूप** 168-170
    - *अभय कुमार सिंह*
33. **मेरे प्रेरक दिनकर जी** 171
    - *पद्मा सचदेव*
34. **आर्य-समाज** 172-177
    - *रामधारी सिंह 'दिनकर'*
35. **दिनकर के पत्र** 181-188
36. **साहित्य, संस्कृति और समाज की त्रिवेणी अर्थात् 'दिनकर' स्मृति न्यास** 189-192
    - *डॉ. रतन कुमार पाण्डेय*

Qyk dh D;k ckr\ ckl dh gfj;kyh ij ejrk gA
vjh nc] rj pyr txrh dk vknj djrk gA
fdlh ykHk lbl NkM n] ;g tx ,lk LFkku ugh(
vkj ckr D;k\ cg/kk e pkgrk efDr ojnku ughA

रामधारी सिंह दिनकर

^^mÙkj e tc ,d ukn Hkh
mBk ugh lkxj l
mBh v/kh j /k/kd ik#"k dh
vkx jke d 'kj l
fl/k ng /kj ^=kfg&=kfg*
djrk vk fxjk 'kj.k e
pj.k i t] nkl rk xg.k dh
c/kk e< cU/ku e**

& jke/kkjh fl g fnudj

l tude e vkifuof'kd nkl rk l efDr dh èofu

– *कृष्णदत्त पालीवाल*

रामधारी सिंह 'दिनकर' के सम्पूर्ण सृजन और चिंतन की उपेक्षा हिंदी आलोचना के कोढ़ में सबसे बड़ा खाज कहा जा सकता है। प्रश्न है, यह खाज ठीक कैसे हो? यह खाज भी ठीक हो सकता है जबकि उनके रचनाकर्म का सद्भाव से पुनः पाठ हो। उनके सम्पूर्ण पाठ या टैक्स्ट को समाज, राजनीति, इतिहास और स्मृति के संदर्भों में भाषित करने की जरूरत है। इस भाष्य या व्याख्या-पुनर्व्याख्या में इस संकल्प के साथ पहल करनी होगी कि उनके पाठ पर किसी वाद या विचारधारा का धूल-धुआं हावी न हो सके। यह इसलिए जरूरी है कि दिनकर 'वादों' का अतिक्रमण करने वाले कवि हैं और विचारधाराओं की अंधी प्रतिबद्धता में उनका भरोसा कभी नहीं रहा।

यह विचार भूलने के विरुद्ध है कि दिनकर आधुनिक भारतीय राजनीतिक-सांस्कृतिक नवजागरण और स्वाधीनता आंदोलन के आंतरिक लय से 'निष्पत्ति' पाने वाले कवि हैं, चिंतक हैं, आलोचक हैं और हैं सांस्कृतिक इतिहासकार। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें 'स्वच्छंद धारा' के प्रवाह का रचनाकार भर कहा था। 'प्रणभंग', 'रेणुका' और 'हुंकार' काव्य संग्रहों की रचनाओं को परखते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुंच गए थे कि दिनकर की रचनाएं बच्चन, एक भारतीय आत्मा नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान आदि कवियों की भांति छायावाद के अंतर्गत नहीं आती हैं। युग की मनोभूमि एक-सी होने पर भी सबकी अलग-अलग विशेषता है इसलिए इन कवियों को आलोचकों ने 'उत्तर छायावाद', 'समानांतर छायावाद' और 'छायावाद का शेषांश' नाम दिया है। कुछ भी नाम दिया हो, इस तरह के असार्थक नामों से यह भ्रम फैलने की गुंजाइश बराबर रही है कि इन सभी का रचना-कर्म और चिंतन-कर्म छायावाद के रचनाकारों की तुलना में हल्का है।

दिनकर के 'पाठ' का किसी भी तरह से तोड़-मरोड़कर कुपाठ कीजिए, रचना-सहचन को आप इस ध्वन्यर्थ की महिमा से वंचित नहीं कर सकते हैं कि वे देशभक्ति भाव से भरे उत्सर्ग-भाव के आकाशधर्मा रचनाकार हैं। उनमें भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी की परम्परा का रक्त बोलता है। मराठी के केशवसुत और तमिल के सुब्रह्मण्य भारती की तरह दिनकर में देशभक्ति

रस की स्थायी भाव-विभाव से सम्पन्न मनोभूमिका का 'अरमान' सूर्य की तरह चमकता-दमकता है। हाय री विडंबना ! हिन्दी की आधुनिक आलोचना ने देशभक्तिपरक रचना-कर्म को उच्छल भावुकता की सतही कविता कहकर ठुकरा दिया है। इस ठुकराने के पीछे हिन्दी के उन आलोचकों की साजिश है जो विदेशी विचारधाराओं के प्रचारक या 'कपट मुनि' रहे हैं। ये आलोचक देशभक्ति के नाम से ऐसे बिदकते-भड़कते हैं—जैसे पागल पानी से डरता है। वे भूल जाते हैं कि आलोचना-कर्म रचना-कर्म के लिए 'धाई' या 'मिडवाइफ' की भूमिका रखता है जो रचनाकार को पालकर बड़ा करता है। उसके अर्थ-संदर्भों को पुष्ट करता है। वह रचना पर अपनी विचारधारा लादकर उसे भ्रष्ट या विकृत नहीं करता।

सच बात यह है कि दिनकर का सृजन एक ऐसा अनोखा दस्तावेज है कि उसमें स्मृतियों, संस्कारों, जीवन-लयों, अंतर्ध्वनियों का वृंदवादन निरंतर बहुवचनात्मक अनुगूंजों के साथ मौजूद है। नर्मदा की शत-शत धाराओं की भांति उसमें जीवन के अनेक प्रवाह एक साथ प्रवाहित हैं। इन प्रवाहों में भारतीय इतिहास के प्रतीकों-मिथकों से न जाने कितने गहन विचार संवाद हैं, वाद-विवाद हैं, संशय है, द्वंद्व हैं, तनाव हैं। काव्यात्मकता में उजली वक्तृत्व कला और बेहद संवेदनशीलता साहित्य के पाठक के मर्म को छू लेती है।

कैसी गज़ब त्रासदी है कि दिनकर के ज्यादातर आलोचक उन्हें महान देशभक्ति का रचनाकार कहने से डरते हैं जबकि दिनकर का पूरा सृजन-चिंतन इस देश के किसान, गांव, नदी-वृक्ष के प्रति समर्पित है। दिनकर को पढ़ते हुए हमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन स्मृति में झूलता मिलता है— 'यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो अपने देश के मनुष्य, पशु-पक्षी, लता-गुल्म, पेड़, पत्ते, कण, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा; सबको वह चाह-भरी दृष्टि से देखेगा, सबकी सुध करके विदेश में आंसू बहाएगा। जो यह भी नहीं जानते कि कोयल किस चिड़िया का नाम है—वे यदि दस बने-ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का पता बताकर देश-प्रेम का दावा करें तो उनसे पूछना चाहिए कि भाइयों, बिना परिचय का यह प्रेम कैसा?'

देखिए न, दिनकर प्रकृति-प्रेम के साथ देश-प्रेम में रम गए। हृदय से इस देश की सभ्यता, संस्कृति, परम्परा, इतिहास से प्रेम किया। इसी प्रेम का सच्चा स्वरूप 'संस्कृति के चार अध्याय' पुस्तक में दिखाई देता है। ध्यान रखना होगा कि दिनकर का देश-प्रेम न तो पश्चिमी पागलपन का नस्लवाद है न घृणा पर केन्द्रित राष्ट्रवाद। पराधीन भारत में भारतीय जनता के शोषण और तबाही का यथार्थ है। वह अंग्रेजी उपनिवेशवाद-साम्राज्यवाद के प्रति आक्रोश से उपजा देश-प्रेम है। क्रूर साम्राज्यवादी व्यवस्था में घुटते हुए युवक का विद्रोह है।

विजयदेव नारायण साही ने 'लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस' लेख में सत्याग्रह युग की मनोभूमिका का विश्लेषण करते हुए पाया कि दिनकर, बच्चन, माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन का सृजन एक खास अर्थ में जवानी की कविता है। बहुप्रचलित शब्दावली में कहें तो, अंगारों पर चलने वाले आम आदमी (जन साधारण) की कविता है जो हंसते-हंसते देश पर प्राणों का उत्सर्ग कर देता है। छायावाद और नई कविता के बीच में जनसाधारण की जो राह निकलती है उस राह पर दिनकर हैं, बच्चन हैं, माखनलाल चतुर्वेदी हैं, भगवतीचरण वर्मा हैं, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' हैं, सुभ्रदाकुमारी चौहान हैं। बहुत बड़ा कवि समाज है—प्राणों को हथेली पर उछालने की प्रेरणा देने वाला कवि समाज। साही जी ने लिखा है—'बच्चन, दिनकर, भगवतीचरण वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन आदि सभी एक खास अर्थ में 'जवानी' के कवि हैं। यह एक विशिष्ट-सी बात है। जवान तो अपने समय में प्रेमचंद, प्रसाद, निराला, पंत सभी रहे होंगे और मेरा अनुमान है कि मैथिलीशरण गुप्त भी— लेकिन इनमें से कोई भी खास अर्थ में जवानी का कवि कभी नहीं रहा। इस अर्थ में यूरोपीय रोमांटिसिज्म भी खास तौर से जवानी का काव्य बनकर नहीं आया। यह सही है कि हिन्दुस्तान एक क्रांति की अवस्था से गुजर रहा था और देश-भर में गांधीवाद, मार्क्सवाद का द्वन्द्व भी चल रहा था। लेकिन खुद मार्क्स के लेखन में विशेषत: जवानी का क्रान्ति से कोई रिश्ता हो, ऐसा नहीं लगता।'

दिनकर द्वंद्व के कवि हैं लेकिन यूरोपीय स्वच्छंदतावाद के अनुकर्ता तो कतई नहीं है। उनमें तो कालिदास, भवभूति की स्वच्छंद धारा का सहज वेग है। आप चाहें

तो इस वेग को भारतीय जीवन की कालिदासीय लय का नाम भी दे सकते हैं। यही लय देशभक्ति की रंगत लेकर भारतीय मुक्ति संग्राम के दिनों में कवि-अरमान बनी है। इसी अर्थ में देशभक्ति दिनकर के लिए न कोरी भावुकता है न कोरा आवेग, न कोरा काव्यालंकार। सच्चे अर्थों में वह उनकी काव्यानुभूति का केन्द्रीय सिद्धान्त है।

निर्मल वर्मा ने 'आदि, अंत और आरम्भ' पुस्तक के प्रथम निबंध 'मेरे लिए भारतीय होने का अर्थ' में लिखा है— 'स्वतंत्रता को मिले पचास वर्ष गुजर गए हैं। मैं क्या सोचता हूँ? लोग पूछते हैं, परिचर्चाएं होती हैं, जश्न मनाए जाते हैं, लेकिन फिर भी लगता है जैसे हाथ से कुछ छूट गया है, कोई भरा-पूरा प्रतीक, जिसको हम उस जमीन, जमीन के टुकड़े के साथ संपृक्त कर सकें, जिसे देश की संज्ञा दी जाती है, क्या मैं उसे प्यार करता हूँ? क्या देश के एक टुकड़े से प्यार किया जा सकता है जिसका अपना आकाश है, समय है, अतीत है, जहाँ जीते हुए लोग ही नहीं, मृतात्माएँ भी बसती हैं? देशभक्ति, देश-प्रेम क्या यह सिर्फ थोथे शब्द हैं, जिन्हें हमारे आधुनिक बुद्धिजीवी मुंह पर लाते हुए झिझकते हैं जैसे वे कोई अपशब्द हों, सिर्फ एक सतही, सस्ती भावुकता और कुछ नहीं? कौन स्वतंत्र होगा? हिकारत से पूछते हैं; गरीब, अमीर, छोटे-बड़े कौन? और यदि कोई उत्तर में कहे—मैं और तुम नहीं—वह जो हमारे बीच में है, हमें बांधता हुआ, शताब्दियों से हमें हम बनाता हुआ, खुद अदृश्य होते हुए भी हमें एक परिदृश्य में अंकित करता हुआ—क्या है यह? यह अनाम भावना ही गहरा राग है—देशभक्ति है।'

आधुनिक बुद्धिजीवी का एक अर्थ है—पश्चिम का नक्काल रीढ़िविहीन, भारतीय को धिक्कारता हुआ, देश-प्रेमी को 'भारत व्याकुल' कहकर उसका उपहास करता हुआ, लोक-लय से अपरिचित मूढ़गति। इन्हीं मूढ़मतियों की कृपा का फल है कि देशभक्ति को हिकारत की नजर से देखने की हवा चल पड़ी है। ये लोग भूमंडलीकरण (ग्लोबलाइजेशन) के 'मॉडल' को हथियाने की उछल-कूद में हैं। इन्हें पता नहीं है कि 'भावनाएं भी घटनाएं होती हैं'। देश-प्रेम ऐसी ही घटना है—इन्हीं घटनाओं ने मुक्ति-संग्राम के दौरान दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन आदि रचनाकारों को देश-प्रेम से प्रेरित सृजन-प्रकाश दिया है।

दिनकर का देश के प्रति लगाव उनके इतिहास-प्रेम में अंकित है। शिव-हिमालय, गंगा, चित्तौड़, राम, कृष्ण, अर्जुन, धर्मराज आदि की भावना में विस्तार से मौजूद है। इसलिए दिनकर के लिए देश-प्रेम का अर्थ है—देश की संस्कृति को समग्रता में धारण करना। इस संस्कृति में स्मृति को पूरी जगह है।

दिनकर की रचनाओं का टेक्स्ट पढ़ते हुए हमें समझना पड़ेगा कि वे निरंतर 'देश' के 'जन' की चिंताओं-यातनाओं से हृदय-संवाद स्थापित करने वाले रचनाकार हैं। उनमें छायावाद का एकांत व्यक्तिवाद नहीं है। उनकी देशभक्ति को प्रकृति और संस्कृति ने गढ़ा है। साथ ही इस गढ़ने में राष्ट्र की सेक्युलर और संकीर्ण अवधारणाओं की जन्मकुण्डली नहीं है। यह तो वह देश-प्रेम का उदात्त भाव है जिसे काका साहब कालेलकर इतिहास-स्मृति-संस्कृति से उत्पन्न देशभक्ति रस का नाम देते रहे हैं। यदि आज आपको रस शब्द पर आपत्ति हो तो इसे देश-प्रेम-सौंदर्य का नाम दे सकते हैं, क्योंकि भारतीय संस्कृति में रामायण, महाभारत, पौराणिक कथाओं के मिथक, इतिहास के प्रतीक नवीन अर्थवत्ता पाते रहे हैं। शायद ही किसी संस्कृति को कवियों ने इतना निर्मित किया हो जितना भारतीय संस्कृति को।

रमेशचन्द्र शाह ने कहीं कहा है कि हमारी संस्कृति के मूल में कवि हैं और इस कवि-कर्म का गहरा सम्बन्ध देश-प्रेम से, संस्कृति और परम्परा से जुड़ा रहा है। जो लोग भारत-वंदना गीतों में सांप्रदायिकता सूंघ लेते हैं, उनकी मन:विकृति में देश से जुड़ी स्मृतियों-वंदनाओं का कोई अर्थ नहीं। वे तो राष्ट्रवाद के कुत्सित पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हैं। वे नई सबाल्टर्न व्याख्याओं में खपते हैं। इन व्याख्याओं में अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ने का कोई भाव नहीं है— कोरा तर्क कर्कश पाखंडवाद। गांधी, लोहिया, जयप्रकाश नारायण के लिए देश था—देश का आखिरी आदमी, उसकी गरीबी, असहायता, यातना, अकेलापन। इसी आदमी को दिनकर ने कविता में गाया है।

दिनकर के लिए भारतीय संस्कृति का विराट और पवित्र प्रतीक है 'हिमालय'। वे इसी हिमालय पर कविता लिखते हैं और उससे सहस्र धाराओं को फूटते देखते हैं। भारतीय

संस्कृति का बहुवचन हिमालय के प्रतीकों में अनेक छवियों-संदर्भों-मिथकों-रूपकों को धारण किए हुए है। अंग्रेजों के आने के बाद भारतीय संस्कृति की यह प्रवाहमान धारा क्षत-विक्षत हुई–चोटिल होकर गिर पड़ी है–लेकिन मरी नहीं है। अभी भी इसके स्मृति अवशेष एक सामान्य भारतीय की चेतना में जीवंत है–जबकि इस बार का यूरोपीय आक्रमण और उपभोक्तावादी बाज़ारवाद की संस्कृति उसे पूरी तरह नष्ट-भ्रष्ट करने पर आमदा है। मीडिया क्रान्ति के संकट ने हमारी स्मृति के नष्ट होने का खतरा बढ़ा दिया है। 'आत्म' और 'अन्य' का खंड-दर्शन भारतीय संस्कृति की अखंडता को चीरकर अलग किए दे रहा है।

प्रश्न उठता है कि छायावादी रचनाकारों तथा इन उत्तर छायावादी रचनाकारों में दिनकर, बच्चन, माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य-सृजन में फर्क क्या है? विजयदेव नारायण साही ने 'लघु मानव के बहाने' वाले लेख में इस प्रश्न का उत्तर यह कहकर दिया है कि छायावादी कवियों के अंतर्जगत में आध्यात्मिकता की गहन व्याप्ति है जबकि दिनकर, बच्चन के सृजन-चिंतन में आध्यात्मिकता का पूरी तरह निषेध है। 'क्योंकि छायावाद के बाद का न सिर्फ बहिर्जगत अध्यात्मविहीन है, बल्कि अंतर्जगत भी आध्यात्मिक नहीं है। नए कवियों में से बहुतों ने काफी दूर तक अंतर्मन के महाद्वीप या महासागर में कोलंबस जैसी अन्वेषण यात्राएं की हैं, कभी-कभी छायावादियों से ज्यादा भी, लेकिन हिन्दुस्तान के इतिहास में पहली बार यह घटित हुआ कि भीतर बैठने पर आत्मा के दर्शन नहीं हुए। मिला कुछ और ही। इस आध्यात्मिक मुद्रा का विनाश किसने किया? पहले पापियों में आज के नए कवि या नए कहानीकार या नए उपन्यासकार नहीं आएंगे। जड़ खोदने का काम तो दिनकर, बच्चन, भगवतीचरण वर्मा आदि ने ही शुरू किया था। अज्ञेय और उनके साथ या बाद वालों ने तो सिर्फ मट्ठा डाला है।'

साही जी को ध्यान है कि वस्तुत: मेटाफिजिकल तत्व तो गांधीजी ही की शैली में विद्यमान है।

सत्याग्रह युग के साहित्य के दो विशाल आच्छादन हैं–गांधी और रवीन्द्रनाथ। आरम्भ के दिनकर तो गांधी से दूर रहे लेकिन सन् 1940 के बाद के दिनकर गांधी-लय में समाते चले गए। केवल दिनकर ने अपने छात्र-धर्म दर्शन को बचाया। बाकी सब विवेकानन्द, तिलक, गांधी, जयप्रकाश नारायण, इकबाल और लारेंस को अर्पित करते गए। अंतत: वे 'हारे को हरिनाम' ही हो गए।

ऐसा क्यों हुआ? इस प्रश्न का उत्तर दिनकर के जीवन-संग्राम में खोजा जा सकता है।

दिनकर के रचनाकार-व्यक्तित्व का निर्माण भारतीय संग्राम की लपटों से हुआ। बीसवीं शताब्दी का भारतीय सांस्कृतिक-राजनीतिक नव जागरण दिनकर की मनोभूमि को बनाता है। इनका जन्म 23 सितम्बर, 1908 में बिहार के मुंगेर जिले के सिमरिया गांव में गरीब परिवार में हुआ। अब उनका गांव बेगूसराय जिले में पड़ता है। पिता का नाम रवि सिंह। इसलिए रामधारी सिंह ने अपना उपनाम रखा–'दिनकर'। दिनकर ने गांव की पाठशाला में अक्षर-ज्ञान पाया। सरसों के तेल वाले दीये का प्रकाश–*टिमटिम दीपक के प्रकाश में पढ़ते निज पोथी शिशु गण*। छप्पर वाला गांव। दिनकर पढ़ने में तेज। हिन्दी में सर्वाधिक अंक पाने पर पांचवीं कक्षा में रामचरितमानस और सूरसागर से पुरस्कृत। गरीबी ऐसी की पैरों में जूते न चप्पल, इस पर भी 13-14 वर्ष की उम्र में विवाह। 19-20 वर्ष की उम्र में मैट्रिक पास किया। भूदेव पदक पाया। 1932 में बी॰ए॰ आनर्स इतिहास में किया। विपन्नता ऐसी कि आगे पढ़ने की बात सोचना गुनाह। पूरा गांव गरीबी से असहाय। इस पूरे परिवेश का प्रभाव दिनकर के रचना-कर्म का स्थायीभाव बना। खेती करने वाले किसान भूख से व्याकुल। देश-भर में गांधी के स्वाधीनता-आंदोलन की लपट। बारह वर्ष की उम्र में दिनकर ने गांधी के प्रथम दर्शन किए। पटना कालेज में जाते ही गांधी का आंदोलन और नजदीक आ गया। 1928 में साइमन कमीशन आया। पूरा देश क्रोध से फूट-फूट पड़ा। लाला लाजपत राय पर अंग्रेजों ने लाठियां बरसाई तो दिनकर का युवा मन व्यथा से भर गया। दिनकर ने लिखा–

कलम उठी कविता लिखने को,
वक्षस्थल में ज्वार उठा रे
सहसा नाम पकड़ कायर का
पश्चिम पवन पुकार उठा रे
देखा शून्य कुंवर का गए है–
झांसी की वह शान नहीं है
दुर्गादास प्रताप बली का प्यारा राजस्थान नहीं है
जलती नहीं चिता जौहर की,
मुट्ठी में बलिदान नहीं है।

संयोगवश नरसिंह दास के संपादकत्व में 'छात्र सहोदर' पत्र निकला। इसी पत्र में दिनकर की पहली कविता 1925 में छपी। फिर दिनकर ने वल्लभ भाई पटेल के किसान-सत्याग्रह पर दस गीत लिखे, नाम दिया–विजय संदेश। भ्रमवश लोग इसे 'बारदोली विजय' कहते रहे। कुछ समय बाद वे *योगी* तथा *हिमालय* पत्र से जुड़े रहे।

सरकार का दमन-चक्र कम न था। भयवश दिनकर ने 'युवक पत्र' में अमिताभ नाम से कविताएं लिखीं। इतना ही नहीं, जतिनदास की शहादत पर उनकी कविता छपी। लेकिन 1930 में पहला काव्य-संग्रह छपा–'प्रणभंग'। हर तरफ छायावाद की हवा। इस हवा ने 'रेणुका' की 'फूल', 'कोयल', 'निर्झरिणी' जैसी कविताओं को प्रभावित किया। लेकिन शीघ्र ही दिनकर ने छायावाद के काव्य-मुहावरे से मुक्ति पा ली और वे देश-विदेश के इतिहास अध्ययन में सक्रिय हुए। फ्रांस की राज्य क्रांति, अमेरिका का स्वतंत्रता-संग्राम, मार्क्स, लेनिन और सुभाष तथा जयप्रकाश नारायण की ओर झुकते गए।

सन् 1933 में '*नई दिल्ली*' तथा '*हिमालय*' कविता लिखने पर उनकी धूम मची। लोग गा उठे '*मेरी जननी के हिमकिरीट*' का गान। इतिहासकार काशी प्रसाद जायसवाल ने दिनकर को पलकों पर उठा लिया और उन्हें 'मौन त्याग का सिंहनाद' नाम तक दे डाला। कभी गांधी, कभी चन्द्रशेखर आज़ाद, कभी भगत सिंह, कभी गणेशशंकर विद्यार्थी, कभी रामप्रसाद बिस्मिल, कभी सुभाष, दिनकर की मनोभूमिका का 'नया पाठ' रचने लगे। गांधीवाद नहीं, क्रांतिवाद चाहिए–'रे रोक युधिष्ठिर को न यहां' की आवाज ने 'पर फिरा हमें गांडीव, गदा लौटा दे अर्जुन-भीम वीर' की प्रार्थना की। इस प्रार्थना ने 'हुंकार', 'कुरुक्षेत्र' तथा 'रश्मिरथी' में विचार ज्वालाओं की निष्पत्ति की। इसी बीच हेडमास्टरी, सब-रजिस्ट्रारी कर डाली और छपरा कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता से सरकारी कोप के भाजक बने। सन 1935 के कलकत्ता कवि-सम्मेलन में महादेवी वर्मा, भगवतीचरण वर्मा से मिले। बनारसीदास चतुर्वेदी के विशाल भारत और अज्ञेय से सम्पर्क बढ़ा। सन् 1940 में गांधी को लेकर गाया–'ओ द्विधाग्रस्त शार्दूल बोल'।

दिनकर का काव्य-टोन ब्रिटिश साम्राज्यवादी विरोधी हैं। इसी टोन में 'हुंकार' (1939), 'रसवन्ती', 'द्वंद्वगीत' (1940) 'सामधेनी' का प्रकाशन। 1941 में 'कलिंग विजय' कविता का सृजन और गांधी-विचार दर्शन का तेज काव्यानुभूति में गहराया और गहराया अंग्रेज साम्राज्यवाद-विरोध का संकट। नौकरी से परेशान दिनकर नौकरी छोड़ दें तो परिवार जिएगा कैसे? इसी बीच दिनकर का तबादला युद्ध-प्रचार विभाग में कर दिया गया। सन् 42 का 'अंग्रेजों, भारत छोड़ो' आंदोलन और गांधी से कम्युनिस्टों की नाराजगी। अकेले डटे गांधी को देखकर दिनकर को नया दृष्टिकोण मिला। युद्ध और शांति, गांधी और मार्क्स, द्वितीय विश्वयुद्ध, जयप्रकाश नारायण का विद्रोही तेवर–इन सबकी अभिव्यक्ति का तनाव-क्षेत्र बना कुरुक्षेत्र। फलत: 1941 से 1946 तक मनोदशा का काव्य है - 'कुरुक्षेत्र'।

'कुरुक्षेत्र' के छपते ही दिनकर को बच्चन की तरह बेजोड़ लोकप्रियता प्राप्त हुई। 'कुरुक्षेत्र' में दिनकर एक खास कला के साथ भीष्म के प्रतिरूप बनकर सामने आए। कहना न होगा दिनकर का अपना चिंतन और काव्य-दर्शन कुरुक्षेत्र के भीष्म में समाया हुआ है–क्षात्र-धर्म के सौंदर्य के साथ। 'प्यारे स्वदेश के हित अंगार मांगने वाले' दिनकर तनाव और द्वंद्व में झूलते रहे हैं। आधुनिक युग की सर्वाधिक केन्द्रीय समस्या - युद्ध पर विचार मंथन। महाभारत का आधार लेने पर भी कुरुक्षेत्र विचारपरक प्रबंध काव्य है। अन्याय-यातना के विरुद्ध नई पीढ़ी को नई प्रेरणा देने वाली शक्तिधारा ने प्रश्नाकुलज मुद्रा में कहा–

पापी कौन मनुज से उसका न्याय चुराने वाला?
या कि न्याय छीनते पुरुष का सीस उड़ाने वाला?
.....
छीनता हो स्वत्व कोई और तू
त्याग-तप से काम ले यह पाप है।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो।
.....

अत्याचार सहन करने का कुफल यही होता है
पौरुष का आतंक मनुज कोमल होकर खोता है।
.....
शूर धर्म है अभय दहकते अंगारों पर चलना
शूर धर्म है शोणित असि पर धरकर पांव मचलना
शूर धर्म कहते हैं छाती तान तीर खाने को
शूर धर्म कहते हैं हस हलाहल पी जाने को।

सामाजिक अन्याय-अनीति के खिलाफ नई पीढ़ी को अस्त्र उठाने का संदेश। भाग्यवाद-पलायनवाद- निराशावाद का खंडन करते हुए गीता के कर्म-सौंदर्य की महत्व प्रतिष्ठा। गांधी के अहिंसा दर्शन का खंडन। संसार में शान्ति की स्थापना के लिए समानता की स्थापना। युद्ध का परिणाम है विनाश। भीष्म ने धर्मराज से कहा है–

चुराता न्याय जो रण को बुलाता भी वही है
युधिष्ठिर स्वत्व की आराधना पातक नहीं है।

युद्ध के परिणाम से हताश धर्मराज ने भीष्म के समक्ष यह विचार व्यक्त किया–

हाय पितामह महाभारत विफल हुआ
चौंक उठे धर्मराज व्याकुल अधीर-से।

धर्मराज का आत्माधिकार यह समझने में असमर्थ रहा है कि युद्ध नैतिक होता है या अनैतिक। किन्तु मानव करे क्या?

जानता हूँ, लड़ना पड़ा था हो विवश, किन्तु
लोहू सनी जीत मुझे दीखती अशुद्ध है
ध्वंसजन्य सुख या कि साश्रु दुख शांतिजन्य
ज्ञात नहीं, कौन बात नीति के विरुद्ध है?

भीष्म ने युद्ध की तुलना तूफान से की है तथा एक प्रकार से डार्विन के विकासवाद का समर्थन नहीं किया है या फिर कहीं-कहीं समर्थन किया है साम्यवाद का। युद्ध को बुलाने का दायित्व किस पर है? दिनकर का उत्तर है–सत्ता-शक्ति धारण करने वालों पर, अनाचारियों-अन्यायियों पर है; शोषितों, वंचितों, दलितों-उपेक्षितों पर नहीं।

'कुरुक्षेत्र' के चौथे सर्ग में भीष्म की आंतरिक दुविधा का तनाव है। पांचवें सर्ग में धर्मराज द्वारा किए गए राजसूय-यज्ञ के कारणों पर विचार तथा पश्चात्ताप। किन्तु इस पश्चात्ताप के द्वारा विज्ञान-युद्ध पर वैचारिक टिप्पणियां हैं। प्रकृति पर मनुष्य की विजय–जिसमें प्राण-देवता चीत्कार कर रहे हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों में–जापान में हिरोशिमा-नागासाकी के ऊपर अमेरिका द्वारा बम विस्फोट। अणु-युद्ध का अपार ध्वंस। दिनकर ने इस वैज्ञानिक युद्ध के प्रति विरोध प्रकट किया है–

सावधान मनुष्य यदि विज्ञान है तलवार
तो इसे दे फेंक तजकर मोह, स्मृति के पार
हो चुका है सिद्ध, है तू शिशु अभी नादान
फूल, कांटों की नहीं कुछ भी तुझे पहचान ।

जाहिर है कि हमारे समय की न सुलझने वाली समस्या है–विज्ञान का युद्ध। इस विकराल समस्या को सुलझाने का कोई समाधान कुरुक्षेत्र में नहीं है। सातवें सर्ग में आस्था का–मानव की विजय यात्रा का उद्घोष है। संन्यास जीवन की पराजय है और कर्म में सक्रियता जीवन के प्रति विश्वास। इस दृष्टि से दिनकर निवृत्ति के नहीं, प्रवृत्ति के कवि हैं।

'कुरुक्षेत्र' के बाद दिनकर के 'धूप-छांह' (1946), 'सामधेनी', 'बापू,' फिर 'इतिहास के आंसू', 'धूप और धुआं', 'मिर्च का मजा' जैसे काव्य संग्रह आए। गांधी की हत्या पर दिनकर ने अद्भुत शोकगीत लिखा–

पकड़ो वे दोनों चरण दासता
जिनके सेवन से छूटी
पकड़ो वे दोनों पग
जिनसे आजादी की गंगा फूटी।

गांधी की मृत्यु से एक युग का अंत हो गया–एक चिंतनधारा का अंत। आगे की राजनीति में हिंसा, आतंक, भाई-भतीजावाद, जातिवाद, धर्मवाद का संकेत है। भ्रष्ट नेताओं पर दिनकर की टिप्पणी–

जितने हरामजादे थे सरकार हो गए
टोपी पहन-पहन के नंबरदार हो गए।

सन् 1950 में संविधान लागू होते ही अंधेरा घिरने लगा। आजादी का उल्लास उजाले के उल्लू लील गए। 26 जनवरी, 1950 को 'जनतंत्र का जन्म' शीर्षक प्रसिद्ध कविता में कहा–

सदियों की ठंडी-बुझी राख सुगबुगा उठी
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है।
दो राह, समय के रथ का घर्घर नाद सुनो
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।

दिनकर की इस कविता का ऐतिहासिक महत्व है और इसके साथ जुड़ी है वह स्मृति कि आपातकाल के दिनों में इस कविता से लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने नई पीढ़ी में अनुपम जागरण का शंखनाद फूंका है।

दिनकर जी 1952 में बिहार शिक्षा सेवा की प्रोफेसरी छोड़कर राज्यसभा के सदस्य चुने जाने पर दिल्ली आए। मुगलों की दिल्ली, अंग्रेजों की दिल्ली, कांग्रेस शासन की दिल्ली की मानसिकता का उनके भीतर नया बहुलार्थक भाष्य निर्मित हुआ। भोगी-विलासी नेता जनता के कष्टों से बेखबर। सत्ता-सुख में निमग्न। गांव की दरिद्रता और दिल्ली की चमक-दमक दोनों से मथकर दिनकर ने 1954 में कविता लिखी–'भारत का यह रेशमी नगर'। पीड़ा भरे हृदय ने कहा–

भारत धूलों से भरा, आंसुओं से गीला
भारत है अब तक भी विपत्ति के घेरे में।
दिल्ली में तो खूब ज्योति की चहल-पहल
पर भटक रहा है सारा देश अंधेरे में।
चल रहे ग्राम कुंजों में पछिया के झकोर
दिल्ली, लेकिन ले रही लहर पुरवाई में।
है विकल देश सारा अभाव के तापों से
दिल्ली सुख से सोई है नरम रजाई में।

यह 'भारत का यह रेशमी नगर' उस समय नेहरू-युग झेल रहा था। नेहरू-युग से 'मोहभंग' और इस 'मोहभंग' से उपजी पीड़ा ने दिनकर को बेचैन कर रखा था। यही पीड़ा धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' व्यक्त करता है और यही अंधकार मुक्तिबोध की कविता, 'अंधेरे में' में पसरा हुआ है। यह नई कविता का युग है–घायल आत्मनिर्वासन की व्यथा-कथा का समय।

दरअसल, दिनकर ने एक संकलन को नाम ही दिया है–दिल्ली। इस संग्रह में दिल्ली पर चार कविताएं हैं– 1. नई दिल्ली के प्रति, 2. दिल्ली और मॉस्को, 3. हम की पुकार, 4. भारत का यह रेशमी नगर। पहली कविता–'नई दिल्ली के प्रति' 1933 में रची गई थी किन्तु पृष्ठभूमि 1929 की है। इसी वर्ष नई दिल्ली में प्रवेशोत्सव हुआ। इसी वर्ष 1928 में भगत सिंह पकड़े गए और लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास हुआ। सन् 1930 में गांधीजी का सत्याग्रह आंदोलन उठा और देश में दमनचक्र का जोर बढ़ गया। उत्सव और दमन-इसी कथ्यात्मक संवेदना का आधार बनाती है– 'नई दिल्ली के प्रति' कविता। दिनकर आजादी के बाद की दिल्ली को विलासिनी नायिका मानते थे–उसमें कर्मठता का अभाव और भोग की तड़प है। क्या हालत है कि जनता के कष्ट दिल्ली को बेचैन नहीं करते। 'गांवों में वज्र गिरे या बाढ़ आए, मगर दिल्ली के आराम का पारा चढ़ता-उतरता नहीं, वह ज्यों का त्यों स्थित है। इस स्थिति से जो क्षोभ उठता है, वही इन कविताओं का मूलभाव है।'

दिल्ली पर लिखी इन चारों कविताओं को एक साथ पढ़ने पर पाठक पाता है कि दिनकर गांव की वेदना-व्यथा-यातना-ताप व्यक्त करने वाले जनसाधारण के कवि हैं। 'नई दिल्ली के प्रति' कविता का 'पाठ' यह अर्थ-व्यंजकता लिए हुए है कि 1929 के भारत में कितनी तबाही थी। कवि के शब्दों में व्यथा के बिंबों से साक्षात्कार कीजिए–

डाल-डाल पर छेड़ रही कोयल मर्सिया तराना
और तुझे सूझा, इस दम ही उत्सव हाय मनाना।
हम धोते हैं घाव इधर सतलज के शीतल जल से
उधर तुझे आता है इन पर नमक हाय! छिड़काना।
महल कहां? बस हमें सहारा
केवल फूल-बांस, तृणदल का।
अन्न नहीं, अवलंब प्राण को
गम, आंसू या गंगाजल का।

भारतीय जनता की तबाही के ऐसे ही करुण चित्र दिनकर से पहले रामनरेश त्रिपाठी ने पथिक काव्य में व्यक्त किए थे। त्रिपाठी जी ने लिखा था–

खाते हैं गम और आंसुओं से ही प्यास बुझाते
लेकर आयु विविध रोगों की हैं दिन-रात बिताते।
फटे-पुराने चिथड़ों से ही ढकें किसी विधि तन हैं
कैसे सिएं सुई-धागे से भी, नितांत निर्धन हैं।

कहना न होगा कि भारतेन्दु के 'भारत दुर्दशा' का विस्तार ही रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन, भगवतीचरण वर्मा और दिनकर के काव्य में मिलता है। भारतीय निर्धनता के इस समाज-शास्त्र, अर्थशास्त्र पर कम विचार हुआ है। हमारा ध्यान इस ओर भी जाना चाहिए कि अंग्रेज-राज ने इस देश को किस तरह से बर्बाद किया था और इस बर्बादी को आजाद भारत की सरकार ने सुधारा क्यों नहीं? क्यों अंधेरा और गहरा हुआ? गांव की बंद गलियों में खड़े बच्चे 'भारत भाग्य विधाता' के भरोसे कहीं के नहीं रहे। दिल्ली आज भी 'वैभव की रानी' है और 'अनाचार, अपमान, व्यंग्य की चुभती हुई कहानी दिल्ली' बनी हुई है इस स्थिति का अर्थ आजादी के पहले और बाद की दिल्ली को समझा जाना चाहिए।

दिनकर का बिहार से दिल्ली आना सर्जनात्मकता की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने सब रजिस्ट्रार रहते हुए, मौलवी रखकर, इकबाल की प्रमुख रचनाएं पढ़ीं। उनमें रंगत आई। दिल्ली आकर नए सिरे से नीत्से, बर्ट्रेंड रसेल, टी॰एस॰ इलियट, डी॰एच॰ लारेंस आदि को जमकर पढ़ा-समझा। इस समझ का गहरा प्रभाव 'नीलकुसुम' काव्य-संग्रह की कविताओं पर दिखाई देता है। रचनात्मक उत्कर्ष की दृष्टि से नील कुसुम की कविताओं की काव्य-मुद्रा में जीवन की पौ फटती मिलती है। कवि का 'अरमान' अब 'संकल्प' में बदल गया है और एक ध्वनि उठ रही है–

हो जहां कहीं भी नील कुसुम की फुलवारी
मैं एक फूल तो किसी तरह ले आऊँगा।

'नीलकुसुम' से भारत-दुर्गा की पूजा में निराला की 'राम की शक्ति पूजा' का एक नया युग-संदर्भ जुड़ जाता है। कवि ने प्रकृति से संवाद किया है और चांद-तारों से गहरी दोस्ती। 'कवि और चांद' का वार्तालाप हुआ मनु-पुत्र की विजय यात्रा में विश्वास के साथ और कहा–

मनु नहीं, मनु-पुत्र है यह सामने जिसकी
कल्पना की नोक में भी धार होती है।
बाण ही होते विचारों के नहीं केवल
स्वप्न के भी हाथ में तलवार होती है।

यहाँ कृष्ण झूमते हुए कालिया नाग के फन पर बांसुरी बजा रहे हैं और कह रहे हैं–

विषधारी मत डोल कि मेरा आसन बहुत बड़ा है।

यह वह समय है जब नीम के पत्ते (1954), सूरज का ब्याह (1955), चक्रवाल (1956), सीप और शंख (1957) जैसे काव्य-संग्रह आए। इस काल में रश्मिरथी (1952) के दिनकर की दलित-चेतना ने उर्वशी की ओर उन्मुखता व्यक्त की। रश्मिरथी यदि कर्म के माध्यम से दलित-चेतना का अनोखा दस्तावेज है तो उर्वशी प्रणय-काव्य की मुकुट-मणि। कवि की समाधिस्थ: चेतना का लीला-कमल। सन 1961 में उर्वशी का प्रकाशन हुआ और 1962 में चीनी आक्रमण। दिनकर ने दायित्वबोध के साथ 'परशुराम की प्रतीक्षा' का सृजन किया। युद्ध-काव्य का वैचारिक दृश्य यहाँ कुरुक्षेत्र का नया भाष्य लेकर काव्यात्मकता में अंगारे बनकर प्रकट हुआ। पूरी नई पीढ़ी की मानसिकता पर दिनकर देश-प्रेम की प्रेरणा बनकर छा गए।

दु:ख इस बात का है कि दिनकर और बच्चन ने छायावादी काव्य-भाषा के तिलिस्म को तोड़कर जो नई बोलचाल की काव्य-भाषा से काव्यात्मकता या सर्जनात्मकता का दोहन किया–उसका मूल्य हिन्दी आलोचना में आंका तक नहीं गया। नई कविता को नई काव्यभाषा दिनकर, बच्चन और माखनलाल चतुर्वेदी से मिली तथा बोध मिला अज्ञेय, मुक्तिबोध, भवानी प्रसाद मिश्र और सर्वेश्वर तथा रघुवीर सहाय से। इस तरह दिनकर और बच्चन का सृजन छायावाद और नई कविता के बीच एक जीवंत कड़ी है।

दिनकर के चिंतन पर विवेकानंद, तिलक, गांधी, नीत्से, रसेल, इलियट, लारेंस, इकबाल, अंबेडकर, जयप्रकाश नारायण का प्रभाव पड़ा है। वे शंकराचार्य की निवृत्तिमूलक परंपरा के विरोध में खड़े विवेकानंद को समर्पित हैं। उन्होंने विदेशी कविताओं का अनुवाद 'सीपी और शंख' नाम से तथा डी॰एल॰ लारेंस की कविताओं का अनुवाद 'आत्मा की आंखें' नाम से किया है। किन्तु उन पर विदेशी प्रभाव सतही है–भिदा हुआ प्रभाव तो मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी का ही है।

कैसे भुलाया जा सकता है हिन्दी के विद्वानों का वह 'महाभारत' जो हिन्दी आलोचना में उर्वशी को लेकर हुआ। समकालीन रचना-समय में मूल्यों का ऐसा उपद्रव! उपद्रव से उत्पन्न कोलाहल कुहराम का पता–1964 की कल्पना के जनवरी अंक से चलता है। 'अपूर्व' घटना यह घटी कि नई-पुरानी पीढ़ियों के कवि-आलोचक एक साथ विचार कलह में सक्रिय दिखाई दिए। कल्पना में प्रकाशित उर्वशी पर केन्द्रित समीक्षाओं, अन्यत्र प्रकाशित समीक्षाओं, प्रबुद्ध साहित्य-सहचरों के प्रकाशित पत्रों से यह ध्वनि फूट-फट पड़ी कि हमारी आलोचना के पास न तो सुविचारित प्रतिमान है, न कृति-केन्द्रित आलोचना का नया व्याकरण। कृति की उत्कृष्टता का निर्णय करने वाले साहित्यिक प्रतिमान खोटे और बेहद खट्टे। कल्पना में प्रकाशित भगवतशरण उपाध्याय के समीक्षात्मक लेख (उर्वशी पर केन्द्रित) पर ग॰मा॰ मुक्तिबोध को कहना पड़ा कि 'यदि सावधानी से भीतर से बाहर की यात्रा भी कर लेते तो उनकी आलोचना में कमजोरियां न आ पातीं।'

इस कृति पर बहस उलटी क्यों हुई? मार्क्सवादियों की विचार शक्ति को लकवा क्यों मार गया? कहां मर गए सामाजिक प्रतिमान? इस तरह के प्रश्नों पर रघुवीर सहाय ने कहा कि 'उस रचना को काव्य नहीं, इतिहास का ग्रंथ मानकर उसका मूल्य आंका जाना बिल्कुल अनर्गल बात है।' इस तरह काव्य की भूमि से काव्य की सर्जनात्मक समीक्षा हुई ही नहीं। पुरानी, निरर्थक, खानेदार, ठप्पेदार आलोचना से 'उर्वशी' की दुर्गति हुई। दुर्गति का एक बड़ा कारण साहित्येतर मूल्यों को जोर-जबर्दस्ती से कृति की छाती पर ठोंक देना भी रहा। अज्ञेय जी ने कहा कि उपाध्याय जी का लेख उर्वशी को लेकर छपने लायक नहीं था। लेकिन क्या हो? इस लेख पर ग॰मा॰ मुक्तिबोध रीझ गए और उसे 'अत्यन्त उपयोगी' घोषित किया। इस तरह एक ओर हो गए अज्ञेयवाद आलोचक और दूसरी ओर हो गए मुक्तिबोध-समर्थक आलोचक। अज्ञेय के साथ है कुंवर नारायण तो मुक्तिबोध के साथ हैं–रामस्वरूप चतुर्वेदी, लक्ष्मीकांत वर्मा। फलत: वैचारिक प्रतिबद्धता की बधिया बैठ गई।

'उर्वशी' जैसी महत्वपूर्ण काव्य-कृति ने चले आते हुए प्रतिमानों की पोल खोल दी। पाठकों ने यह विश्वास दृढ़ता से प्रस्तुत किया कि कामायनी के बाद छायावादी काव्य की सर्वाधिक महत्वकृति है–उर्वशी। ग॰मा॰ मुक्तिबोध को 'उर्वशी' का रति-रणकामी भोंपूवाद शर्मनाक प्रतीत हुआ। किन्तु रामविलास शर्मा 'उर्वशी' पर मुग्ध हो गए। अपने रसज्ञ-रंजन भाव से उन्होंने माना कि 'दिनकर जी उदात्त भावनाओं के कवि हैं। उनके स्वरों में ढलकर 'उर्वशी' की प्राचीन कथा सहज ही रीतिकालीन गार-परम्परा से ऊपर उठ गई है। निराला जी के बाद मुझे किसी वर्तमान कवि की रचना में ऐसा मेघमंद्र स्वर सुनने को नहीं मिला जैसा दिनकर की उर्वशी में। इस काव्य में जीवन सम्बन्धी ऐसे अनेक प्रश्न प्रस्तुत किए गए हैं जिन्हें वर्तमान युग का कवि ही प्रस्तुत कर सकता था। 'उर्वशी' में नारी-सौंदर्य के अभिनन्दन के अतिरिक्त मातृत्व की प्रतिष्ठा भी है। आज के कुंठावादी मरु प्रदेश में आस्था के ये स्वर मुझे अच्छे लगते हैं–

चिंतन कर यह जान कि तेरे क्षण-क्षण की चिंता से
दूर-दूर तक के भविष्य का मनुज जन्म लेता है।
उठा चरण यह सोच कि तेर पद के निक्षेपों की
आगामी युग के कानों में ध्वनियां पहुंच रही हैं।

प्रणय-काव्य की भूमि पर उर्वशी भिनभिनाती भावुकता की रचना नहीं है। उसमें ओज की विलक्षण दीप्ति है। काव्यत्व की अद्‌भुत महिमा का स्पर्श है और शंकाकुल बौद्धिक तर्क-प्रधान आधुनिकता की लौ-लपट। नेमिचंद्र जैन, प्रभाकर माचवे कहते ही रह गऐ कि कुरुक्षेत्र की तुलना में उर्वशी बहुत कमजोर कृति है, जबकि दिनकर की ये दोनों महान कृतियां अपनी कथ्यात्मक संवेदना में कहीं से भी तुलनीय नहीं है और दोनों ही कथ्य में एक-दूसरे के विपरीत। उर्वशी वर्तमान मानव की प्रणय गाथा है और 'कुरुक्षेत्र' युद्ध की समस्या से वैचारिक मुठभेड़। उर्वशी की काव्य-भाषा के 'वागाडंबर' पर क्षुब्ध रहे हैं मुक्तिबोध–

'पुरुरवा और उर्वशी वागाडंबर द्वारा, शब्द-सुख द्वारा रति-सुख का पुन: पुन: बोध करते-से, सांस्कृतिक ध्वनियों और प्रतिध्वनियों का निनाद करते हैं, मानों पुरुरवा और 'उर्वशी' के रतिकक्ष में भोंपू लगे हों, जो शहर और बाजार से रतिकक्ष के आंडबरपूर्ण कामात्मक संताप प्रसारण-विस्तारण कर रहे हों। इस तरह आयास सिद्ध भाषा ने उर्वशी को जड़ बना दिया है। मूल दोष यह भी कि उर्वशी कल्पित मनोविज्ञान पर केन्द्रित कृति है।'

कुछ भी कहिए। हिन्दी पाठकों पर उर्वशी की गहरी छाप है। मैंने अपने कई मित्रों को रामचरित मानस की

तरह उर्वशी की काव्य पंक्तियां गाते-गुनगुनाते-उद्धृत करते पाया है। उर्वशी का तीसरा अंक अपनी रोमांटिक भाषा में अद्‌भुत प्रभाव लिए है। आधुनिक तर्क-प्रधान बौद्धिक मानव का प्रेम ही पुरु का प्रतीक बनकर प्रस्तुत है और उर्वशी मानव मन की अनंत-अनंत अदम्य-अपरंपार लालसा। रामविलास शर्मा और मुक्तिबोध में मूल्यबोध के स्तर पर जो विभिन्नता है–उसमें दो भिन्न मनोभूमिकाएं सक्रिय हैं। पुरुरवा के रूप में दिनकर का बिम्ब उभरता है और इस बिम्ब में आधुनिक भाव-बोध का तर्क–

मर्त्य मानव की विजय का तूर्य हूं मैं
उर्वशी! अपने समय का सूर्य हूं मैं।
अंध तम के भाल पर पावक जलाता हूं
बादलों के शीश पर स्यंदन चलाता हूं।

.....

बिद्ध हो जाता सहज बंकिम नयन के बाण से
जीत लेती रूपसी नारी उसे मुसकान से।
मैं तुम्हारे बाण का बींधा हुआ खग
वक्ष पर धर शीश मरना चाहता हूं।
मैं तुम्हारे हाथ का लीला कमल हूं
प्राण के सर में उतरना चाहता हूं।
कौन कहता है
तुम्हें मैं छोड़कर आकाश में विचरण करूंगा?

मानव को देवत्व चाहिए। यह आदर्श है। यथार्थ है देह की आग। कामनाओं की बद्धता, देह-रस का रूप-रंग-भोग। भोगानन्द का यथार्थ सच है।

उर्वशी के चरम शिखर का स्पर्श करने के बाद दिनकर के रचना-कर्म का उतार आता गया। पारिवारिक समस्याओं-तनावों-संघर्षों ने दिनकर को भीतर से तोड़ दिया। नेहरू युग में सत्ता की राजनीति ने भी दिनकर की 'मानसिकता' का पुराना विद्रोही तेवर खो दिया। दिनकर सत्ता के गलियारों में कोयल और कवित्व (1960) खोजते रहे और उसमें मिला क्या–मृति तिलक (1964)। जब तक आत्मा की आंखें (1964) खुलीं, सब कुछ मटियामेट हो चुका था। इसी थकान-परस्ती से हारे को हरिनाम (1970) काव्य-संग्रह की कविताओं का सृजन हुआ। हारे को हरिनाम की कविताओं को तुलसीदास की विनय पत्रिका का आधुनिक संस्करण ही कहा जा सकता है। अपनी व्यथा में घुलते वे तिरुपति बालाजी के दर्शन को गए। फिर उन्हें छोड़कर लौटे नहीं। 24 अप्रैल 1974 को दिनकर ने यह संसार को छोड़ दिया। इस विदाई में रश्मिरथी का 'पाठ' उठकर बोला–

कौरव दल का कर तेज हरण
त्यों गिरे भीष्म आलोक वरण।

हिन्दी आलोचना में दिनकर की सर्जनात्मकता का भीष्म-संग्राम अभी अभाषित पड़ा है। इस अभाषित को भाषित करने की, 'डी कंस्ट्रस्ट' करने की जरूरत है। इस अर्थ मीमांसा से इस रचना-कर्म का बहुवचनात्मक संसार खुलेगा अवश्य। साथ ही हिन्दी आलोचना का कोढ़ भरा दाग भी धोया जा सकेगा।

आज यह बात भूलने की नहीं है कि दिनकर पद्य लेखक से कम समर्थ गद्य लेखक नहीं हैं। उन्होंने बड़े धड़ल्ले से आलोचना-कर्म किया है। उनकी उल्लेखनीय आलोचना पुस्तकें कम नहीं हैं, जैसे–मिट्‌टी की ओर (1946), अर्धनारीश्वर (1952), काव्य की भूमिका (1958), पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त (1958), वेणुवन (1958), तथा शुद्ध कविता की खोज (1966)।

भारतीय नवजागरण का सत्याग्रह युग दिनकर की मनोभूमिका को निर्मित करता है। इसी मनोभूमिका से वे पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त के सृजन-कर्म की व्याख्या करते हैं। इन आलोचनाओं के भीतर से गुजरने पर ही पाठक जान पाता है कि दिनकर के दो काव्य गुरु हैं–मैथिलीशरण गुप्त और रामनरेश त्रिपाठी। दिनकर अपने पूरे संदर्भ में द्विवेदी युग के बीर बालक हैं और मैथिलीशरण गुप्त की खड़ी बोली की उंगली पकड़कर उन्होंने पैदल चलना सीखा है। इस तरह दिनकर को अज्ञेय का गुरु-भाई मानना चाहिए। दोनों के काव्य-गुरु का नाम है मैथिलीशरण गुप्त, वे मैथिलीशरण गुप्त जिन्हें प्रायः हिन्दुत्ववादी कहकर कोसा जाता रहा।

गुप्त जी ही क्यों, इधर ऐसी ही दुर्गति भारतेन्दु और प्रसाद की भी हो रही है। ओर तो और, दिनकर को भी बख्शा नहीं जा रहा है। जबकि दिनकर और बच्चन दोनों अपने समय के प्रतिद्वंद्वी रचनाकार हैं। हिन्दी की बीसवीं

शताब्दी का प्रकाश और अंधकार दोनों के सृजन और चिंतन में पूरे साक्ष्यों के साथ 'उपस्थित' है।

दिनकर के गद्य का विस्तार देखना हो तो हमें चित्तौड़ का साका (1949), रेती के फूल (1954), हमारी सांस्कृतिक एकता (1954), भारत की सांस्कृतिक कहानी (1955), संस्कृति के चार अध्याय (1956), उजली आग (1956), देश-विदेश (1957), राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता (1958) तथा धर्म, नैतिकता और विज्ञान जैसी उनकी पुस्तकों को अंतर्यात्रा करनी चाहिए।

भारतीय सांस्कृतिक इतिहासकार दिनकर ने अपार श्रम और अध्ययन से पुनर्लेखन किया है। इस पुनर्लेखन का नाम है–संस्कृति के चार अध्याय। यहां इतनी बड़ी चुनौती दिनकर ने झेली है कि अवाक रह जाना पड़ता है। इनके साथ दिनकर की अन्य गद्य रचनाओं को मिलाकर पढ़ना चाहिए ताकि 'विजन' में व्यापकता की सिद्धि प्राप्त हो। वट-पीपल (1961), साहित्यमुखी (1968), राष्ट्रभाषा आन्दोलन और गांधीजी (1968), हे राम (1969), संस्मरण और श्रद्धांजलियां, मेरी यात्राएं (1970), भारतीय एकता (1970), विवाह की मुसीबतें (1974), दिनकर के पत्र (संक॰ फूलफगर) तथा शेष-निःशेष (1985) आदि।

दिनकर के पद्य-गद्य दोनों की ताकत है–भारतीय संस्कृति की संवेदना का गहन अर्थ-विस्तार। बीसवीं शताब्दी का भारत दिनकर में कई कोणों और मोड़ों के साथ न जाने कितनी अर्थ-व्यंजनाओं के साथ बोला है। उनके चिंतन में विवेकानंद, तिलक, गांधी, जयप्रकाश नारायण और अंबेडकर एक साथ बोलते मिलते हैं। उन्हें मार्क्स भी प्यारे हैं और साम्यवादी पद्धति भी। पद्धति कोई भी हो, दीन-हीन, शोषित-वंचित उपेक्षित, दलित सुखी हो सकें–यही उनका मूल चिंतन स्वर है। उनका चिंतन भाग्यवाद विरोधी, साम्राज्यवाद-विरोधी, उपनिवेशवाद-विरोधी है। सामंतवाद और पूंजीवाद की विलास क्रीड़ा का यहां रस-रंजनवादी दर्शन नहीं है।

दिनकर के प्रतीक-पुंज में राम, कृष्ण, भीष्म, युधिष्ठिर, कर्ण, द्रोणाचार्य, गौतम, महावीर, अशोक, चन्द्रगुप्त, राणा प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, बंदा वीर, लक्ष्मीबाई, टीपू सुल्तान, अशफाक, सुभाष चन्द्र बोस, भगत सिंह, जयप्रकाश नारायण, नालंदा, पाटलिपुत्र, हिमालय, गंगा, जमुना, गंडकी, सतलुज आदि की गौरव गाथा का इतिहास है। हमारी जातीय स्मृति और जातीय अवचेतन का पूरा समाज-शास्त्र, इतिहास, परम्परा, मिथक इनमें घनीभूत होकर अर्थ-संदर्भ पाते हैं। भारत की युवा पीढ़ी को दिनकर प्रेरणा का 'पाठ' पढ़ाते हैं–देशभक्ति का अर्थ खोलते हैं। अज्ञेय जी ने स्मृति लेखा में दिनकर जी को 'समय सूर्य' कहकर याद किया है–'हुंकार के साथ उसने अपने उदय का उद्‌घोष किया था। उर्वशी में उसने मानो अपने को अपने समय का सूर्य पहचाना था। हारे को हरिनाम के साथ वह अस्ताचल की ढलान को रक्ताभ करता हुआ ओट हो गया।'

हिन्दी का दुर्भाग्य यह है कि साहित्यकार को 'सम्मान देने की प्रथा लगभग उठ गई है।' पर 'राष्ट्रकवि' हिन्दी ने दो ही जने–स्व॰ मैथिलीशरण गुप्त और रामधारी सिंह दिनकर। राष्ट्रीय कवि–राष्ट्रीयता के कवि और भी रहे। पर राष्ट्रकवि का विरुद किसी ओर के साथ जोड़ने की बात हिन्दी-पाठी जनता को नहीं सूझी। ऐसा क्यों हुआ?

आसान उत्तर तो यही होगा कि दोनों राष्ट्रीयता के भी और राष्ट्र के विराट रूप के भी गायक रहे। जो विद्वान भारत भारती को हिन्दू-संवेदना की कृति मानते हैं, वे गुप्त जी के स्वाधीन राष्ट्र को पहचानते नहीं हैं गुप्त जी धर्मनिरपेक्षता के वाहक, आधुनिक चेतना से सम्पन्न कवि है। दिनकर जी संस्कृति की मिश्रता को उजागर करते रहे–उसकी संग्राहकता को नहीं। कहना होगा कि दिनकर का साहित्य-संस्कृति चिंतन हिन्दी साहित्य की एक मूल्यवान उपलब्धि है।

भारतीय चिंतनधारा का उपनिवेशवाद से नव उपनिवेशवाद में प्रवेश क्या हुआ–'अपनी जड़ों की ओर लौटने' का अरमान प्रबल हो गया। लेकिन अंग्रेजी भाषा का साम्राज्यवाद हिन्दी संस्कृति पर और गहरा होता गया। संस्कृति के इस अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने हमारी दृष्टि को धुंधला बना दिया और संवेदनाओं को कुंद। हमारी सांस्कृतिक, राजनीतिक परिधि पर विदेशी नियंत्रण हटा नहीं और आजादी के बाद हम कटोरा लेकर घूमने वाले बनते गए। यह स्थिति दिनकर को तकलीफ देती है।

तीसरी दुनिया की अर्थ-व्यवस्था पर यूरोप का नियंत्रण स्वाधीन चिंतन को पनपने ही नहीं देता। न भारतीय संस्कृति-कला-साहित्य को। न औपनिवेशक मानसिक गुलामी से मुक्ति ही मिल पा रही है। हिन्दी प्रदेशों में आजादी के बाद वैचारिक दरिद्रता बढ़ी है। और पश्चिमी नकल का पागलपन। शिक्षा, भाषा, साहित्य, धर्म, दर्शन, राजनीति, मीडिया के सभी क्षेत्रों में नव साम्राज्यवाद, उत्तर-औद्योगिक समाज की संस्कृति ने पूरा वर्चस्व स्थापित कर लिया है।

दिनकर का सृजन और चिंतन इस वर्चस्ववाद के विरुद्ध अपनी भुजा उठाता रहा है–इस उठती हुई भुजा का अर्थ हमें समझना चाहिए। समझना चाहिए कि स्वाधीन चिंतन की संस्कृति ही स्वाधीन मनुष्य को जन्म दे सकती है। उपनिवेशवाद-साम्राज्यवाद के दैत्य को मारे बिना हमारा चिंतन स्वाधीन नहीं हो सकता।

आज इस दृष्टि से दिनकर के सृजन-चिंतन पर 'विमर्श' करने की जरूरत है। हिन्दी आलोचना में दिनकर की उपेक्षा से निबटने का समय आ गया है।

श्रद्धांजलि

दिनकर साहित्य के सजग प्रहरी एवं महत्वपूर्ण हस्ताक्षर कृष्णदत्त पालीवाल जी ने राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास के अभिभावक के रूप में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अभियानों को हमेशा अपना रचनात्मक सहयोग प्रदान किया। आज उनकी दैहिक अनुपस्थिति से न्यास परिवार दु:खी है। न्यास परिवार उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

Økfr dk dfo

– ***रामवृक्ष बेनीपुरी***

राष्ट्रीय कविता की जो परम्परा भारतेन्दु से प्रारम्भ हुई, उसकी परिणति हुई है दिनकर में।

जबकि चारों ओर अंधकार ही अंधकार था, दरबार के विषाक्त वायुमण्डल ने बेचारी कविता को बहू-बेटियों के नग्न-सौन्दर्य-वर्णन की बेहयाई मात्र बना रखा था, दूज के चाँद की तरह, एक पतली-सी प्रकाश-रेखा पश्चिम क्षितिज पर दीख पड़ी। पहली बार लोगों ने सुना : '*आवहु सब मिलि के रोवहु भारत-भाई*'। 'भारत-दुर्दशा' पर प्रकट की गई इस रुदन-ध्वनि का उत्तर दिया भारत पर अपनी जवानी और जिन्दगी कुर्बान कर देने वाली महारानी लक्ष्मीबाई की प्यारी झाँसी के एक चिरगाँव ने। चिरगाँव ने अपनी पूरी 'भारती' को ही भारत के नाम पर उत्सर्ग करके आकांक्षा की –'भगवान, भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती'। निस्संदेह, उसकी भारती गूँजी, समूचे हिन्दी-भारत में गूँजी। नर्मदा-तट की एक कुटी में जलती हुई साधाना की धुनी की लपटों में ज्वार आया। रुदन-क्रन्दन, गूँज-गायन नहीं, एक ललकार देश के तरुणों के प्रति, जिसकी टेक थी: बलिदान, बलिदान। बलिदान भी कैसा?

सफलता पाई अथवा नहीं,
उन्हें क्या ज्ञात? दे चुके प्राण।
विश्व को चाहिए उच्च विचार?
नहीं, केवल अपना बलिदान।

भारतीय आत्मा का यह आह्वान और देश में सचमुच बलिदानों का एक ताँता लग गया। सूलियों की सेज, उछलती लाशें। माँ की बलिवेदी लाल हो रही थी। इस लाल वेदी से एक लाल देवी का आविर्भाव हुआ। क्या आपकी आँखें उसे देख पाती हैं? यदि वैसे आप देख नहीं पाते, तो दिनकर के प्रकाश में देखें उसे।

जो पश्चिमी क्षितिज पर शांत-स्निग्ध इन्दु था, वह पूरब में दिनकर होकर अभी-अभी उगा है। उसके प्रकाश में अरुणिमा है, तरुणाई की सूचना, या उस देवी की प्रतिच्छाया?

हमारे क्रान्ति-युग का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व कविता में इस समय, दिनकर कर रहा है। क्रान्तिवादी को जिन-जिन हृदय-मन्थनों से गुजरना होता है, दिनकर की कविता उनकी सच्ची तस्वीर रखती है। क्रान्तिकारी के पास भी दिल होता है। लेकिन, वह करे तो क्या? उसी समय उसके कानों में कुछ दूसरी ही रागिनी बज उठती है, उसकी आँखें कुछ दूसरे ही दृश्य देखने लगती हैं:

रणित विषम रागिनी मरण की
आज विकट हिंसा-उत्सव में,
दबे हुए अभिशाप मनुज के
लगे उदित होने फिर भव में;
शोणित से रँग रही शुभ्र पट
संस्कृति निठुर लिये करवालें,
जला रही निज सिंह-पौर पर
दलित-दीन की अस्थि-मशालें।

और उसे मालूम होता है, कोई शक्ति उसे बुला रही है - जगा रही है। यह कौन? यह तो वही है। वह झिझक उठता है:

यह कैसा आह्वान!
समय-असमय का तनिक न ध्यान।
तुम्हारी भरी सृष्टि के बीच
एक क्या तरल अग्नि ही पेय?
सुधा-मधु का अक्षय भण्डार
एक मेरे ही हेतु अदेय?
उठो, सुन उठूँ, हुई क्या देवि,
नींद भी अनुचर का अपराध?
मरो, सुन मरूँ, नहीं क्या शेष
अभी दो-दिन जीने की साध?

दूसरे ही क्षण, वह प्रकृतिस्थ होता है। अरे, उसका जीवन तो समर्पित है। उस पर उसका क्या अधिकार? और, माना वह गरज उठता है-

फेंकता हूँ लो, तोड़-मरोड़
अरी निष्ठुरे! बीन के तार,
उठा चाँदी का उज्ज्वल शंख
फूँकता हूँ भैरव-हुंकार।
नहीं जीते-जी सकता देख
विश्व पे झुका तुम्हारा भाल,
वेदना-मधु का भी कर पान
आज उगलूँगा गरल कराल।

गरल, गरल, गरल! क्रांतिकारी की जिन्दगी में अमृत का स्थान कहाँ? और, हिन्दुस्तान की क्रांति आज जो नया रूप ले रही है, उससे भी वह अपरिचित नहीं। मालूम होता है, मानो अब तो उसकी कविता की वही प्रमुख प्रेरक है:

जेठ हो कि हो पूस, हमारे
कृषकों को आराम नहीं है,
छुटे बैल से संग, कभी
जीवन में ऐसा याम नहीं है।
मुख में जीभ, शक्ति भुज में,
जीवन में सुख का नाम नहीं है,
वसन कहाँ? सूखी रोटी भी
मिलती दोनों शाम नहीं है।

यही नहीं, वह उस दिन नई दिल्ली को देखकर भी कह उठा था:

आहें उठीं दीन कृषकों की,
मजदूरों की तड़प, पुकारें;
अरी, गरीबों के लहू पर,
खड़ी हुई तेरी दीवार!

नई दिल्ली को उसने एक नवीन विशेषण भी दिया है -*कृषक मेध की रानी दिल्ली।*

कभी हमारे राजे अश्वमेघ करते; नई दिल्ली कृषक मेध करती है, वह उसकी रानी है।

सबसे बढ़कर हमारे आज के समाज में स्त्रियों की नग्नता और बच्चों की भूख-ये दो चीजें ऐसी हैं, जो दिनकर के भावुक हृदय को क्रान्ति के लिए सबसे अधिक प्रेरित करती हैं। 'हाहाकार' में बच्चों की भूख और दूध के लिए उनकी चिल्लाहट का उसने ऐसा वर्णन किया है, जो पत्थर के दिल को भी पिघला सकता है -

कब्र-कब्र में अबुध बालकों
की भूखी हड्डी रोती है,
'दूध-दूध की कदम-कदम पर,
सारी रात सदा होती है।
'दूध दूध ओ वत्स, मन्दिरों में
बहरे पाषाण यहीं हैं!
'दूध-दूध', तारे, बोलो इन
बच्चों के भगवान कहाँ हैं।

भगवान बहरे हों, तारे न बोलें - लेकिन, कवि चुप बैठने वाला नहीं। वह कहता है:

हटो व्योम के मेघ, पंथ से
स्वर्ग लूटने हम आते हैं,
'दूध-दूध' ओ वत्स, तुम्हारा
दूध खोजने हम जाते हैं।

मालूम होता है, दिनकर ने क्रांति को निकट से देखा है और उसने उसे एक अच्छा-सा नाम भी दे दिया है - *विपथगा*। इस विपथगा को कवि ने भारतीय रूप दिया है। यह सिर पर छत्र-मुकुट रखती है; कुमारी है, तो भी सिन्दूर लगाती है; आँखों में अंजन देती है और रंगीन चीर पहनकर नाचती है। लेकिन, इसके मुकुट, सिन्दूर, अंजन और चीर, सब असाधारण हैं। कैसे? ऐसे:

मेरे मस्तक का छत्र-मुकुट
बसु-काल-सर्पिणी के शत फन;
मुक्त चिर-कुमारिका के ललाट
पर नित्य नवीन रुधिर-चन्दन;
आँजा करती हूँ चिता-धूम का
दृग में अंधा-तिमिर अंजन;
संहार-लपट का चीर पहन
नाचा करती मैं छूम छनन।
और नाचना शुरू किया कि एक अजीब दृश्य -
पायल की पहली झमक,
सृष्टि में कोलाहल छा जाता है;
पड़ते जिस ओर चरण मेरे,
भूगोल उधार दब जाता है।

'भूगोल उधार दब जाता है' - आप इसे अत्युक्ति कहेंगे; लेकिन दुनिया का इतिहास इसका साक्षी है। विश्व-साहित्य में क्रान्ति पर जितनी कविताएँ हैं, 'दिनकर' की 'विपथगा' उनमें से किसी के भी समकक्ष आदर का स्थान पाने की योग्यता रखती है।

क्रान्ति-सम्बन्धी उनकी दूसरी कविता 'दिगम्बरि' भी हिन्दी-संसार में जोड़ नहीं रखती। मालूम होता है, कवि आँखों देखी, कानों सुनी बात कह रहा है-

धरातल को हिला गूँजा धरणि में राग कोई,
तलातल से उभरती आ रही है आग कोई,
दिशा के बंध से झंझा विकल है छूटने को,
धारा के वक्ष से आकुल हलाहल फूटने को।

और, इस क्रान्ति के वाहन कौन होंगे? युवक ही तो? अतः, 'दिनकर' एक मौका भी ऐसा नहीं जाने देता, जब वह इन युवकों से दो-दो बातें न कर ले। कभी वह उन्हें उलाहना देता है-

खेल रहे हिलमिल घाटी
में कौन शिखर का ध्यान करे?
ऐसा वीर कहाँ कि
शैल-रुह फूलों का मधु-पान करे?

कभी उन्हें वह चेतावनी देता है-

लेना अनल-किरीट भाल पर
ओ आशिक होने वाले,
कालकूट पहले पी लेना,
सुधा-बीज बोने वाले।

दोस्तो, याद रखो:

धरकर चरण विजितशृंगों पर
झंडा वही उड़ाते हैं,
अपनी ही उँगली पर जो
खंजर की जंग छुड़ाते हैं।
पड़ी समय से होड़,
खींच मत तलवों से काँटे रुककर,
फूँक-फूँक चलती न
जवानी चोटों से बचकर, झुककर।

उन्हें 'जय-यात्रा' के लिए उत्तेजित करते हुए, मानो, आखिरी बार कवि कहे देता है-

चल यौवन उद्दाम;
चल, चल बिना विराम,
विजय-मरण, दो घाट,
समर के बीच कहाँ विश्राम?

अन्त में एक बात। जब मैंने राष्ट्रीय कविता के विकास के सिलसिले में भारतेन्दु, मैथिलीशरण, भारतीय आत्मा और दिनकर को लिया है, तो इसका मतलब यह नहीं कि इनके अतिरिक्त किसी ने देशमाता के चरणों पर अपनी श्रद्धांजलि चढ़ाई नहीं।

ये तो 'मील के पत्थर' मात्र हैं– खास दूरी के सूचक। बीच में और भी कितनी ही प्रणम्य, नमस्य, देव-मूर्तियाँ हैं; किन्तु बीच में ही। 'दिनकर' के आगे का मैदान अभी उसी का है। यह मेरा आज का दावा है। कल की बात मैं नहीं कहता।

नहीं, यह कहना गुस्ताखी होगी–अक्षम्य अपराध होगा।

कलम और तलवार

– दिनकर

दो में से क्या तुम्हे चाहिए, कलम या कि तलवार?
मन में ऊँचे भाव कि तन में शक्ति अजेय, अपार?
अन्ध कक्ष में बैठ रचागे ऊँचे, मीठे गान?
या तलवार पकड़ जीतोगे बाहर जा मैदान?

जला ज्ञान का दीप सिर्फ फैलाओगे उजियाली?
अथवा उठा कृपाण करोगे घर की भी रखवाली?

कलम देश की बड़ी शक्ति है भाव जगानेवाली,
दिल ही नहीं दिमागों में भी आग लगानेवाली,
पैदा करती कलम विचारों के जलते अंगारे,
और प्रज्वलित-प्राण देश क्या कभी मरेगा मारे?

तहू गर्म रखने को रक्खो मन में ज्वलित विचार,
हिंस्र जीव से बचने को चाहिए किन्तु, तलवार।

एक भेद है और, जहाँ निर्भय होते नर-नारी,
कलम उगलती आग, जहाँ अक्षर बनते चिनगारी।
जहाँ मनुष्यों के भीतर हरदम जलते हैं शोले,
बाँहों में बिजली होती, होते दिमाग में गोले।

जहाँ लोग पालते लहू में हालाहल की धार,
क्या चिन्ता यदि वहाँ हाथ में हुई नहीं तलवार?

Øk/k] d#.kk vkj lkUn; d dfo

– डॉ. नामवर सिंह

दिनकर की वाणी में ही दिनकर के बारे में कहा जा सकता है। विद्यापति के बाद छह सौ वर्षों तक यह भूमि किसी महाकवि की प्रतीक्षा करती रही और वह दूसरा महाकवि दिनकर के रूप में इसे मिला। दिनकर निराला के समान ओज और ऊर्जा के शायद भारतवर्ष में सबसे बड़े कवि थे। दिनकर में सात्विक, क्रोध, कोमल करुणा और सौंदर्य की अनूठी पहचान थी। 'हारे को हरिनाम' में दिनकर तुलसी की तरह शायद बीसवीं सदी की विनय-पत्रिका लिखते हैं। दिनकर जी की अनेक छवियाँ हैं। एक छवि प्रतिमा के रूप में स्थापित हुई है। उसके कलाकार के विषय में अवश्य कहना चाहूँगा और दिनकर जी की एक कविता के साथ कहूँगा। उनकी एक कविता है– शबनम की जंजीर और उस कविता की चार पंक्तियाँ–

भर सको अगर तो प्रतिमा में चेतना भरो
यदि नहीं निमंत्रण दो जीवन के दानी को
विभ्राट, महाबल जहाँ थके से दीख रहे
आगे आने दो वहाँ क्षीण बल प्राणी को।

विभ्राट महाबल से आतंकित होने वाले दिनकर जी नहीं थे। इस प्रतिमा में चेतना कौन भरेगा? और उन्होंने कहा आने दो उसे जो क्षीण बल प्राणी हैं और क्षीण बल प्राणी कौन? दिनकर जी की नजर में सपनों के तो सारथी क्षीणबल होते हैं। जो सपनों का सारथी होता है वही क्षीणबल हुआ करता है। कलाकार और कवि उसी जाति के हैं जो सपनों के सारथी हुआ करते हैं। मुझे देखकर खुशी हुई, उस क्षीणबल कलाकार ने जिसे मैं दिनकर के सपनों के सारथियों में से एक मानता हूँ। उसने प्रतिमा बनायी जो महाकवि के गौरव एवं आकांक्षा के अनुरूप ही हुआ है। दिनकर के संदर्भ में निराला का नाम कई बार लिया गया है। नाम सुनते ही निराला के गीत की पंक्ति याद आयी–बादलों में घिर अपर दिनकर रहे। यह शृंगार का गीत है जिस संदर्भ में बात आयी। मुझे लगा दिनकर के बारे में जितना लिखा गया है और आज जितनी चर्चा हुई है ओज का, ऊर्जा का हुंकार का। गर्जन-तर्जन के कवि के रूप में दिनकर को लोग अधिक जानते हैं। और दिनकर ने जितना गर्जन-तर्जन किया उससे ज्यादा उनके बारे में गर्जन-तर्जन हुआ है। मुझे लगता है कि वह जो दूसरा दिनकर है छिप गया है-बादलों में घिर अपर दिनकर रहे। दिनकर जी को सूर्य

कहते समय हम भूल जाते हैं कि सूर्य का एक ही रंग नहीं होता है। रोशनी भी होती है। उस प्रकाश के, उस आलोक के अनेक रंग होते हैं। बल्कि धरती पर जितने रंग दिखाई पड़ते हैं वे सारे के सारे रंग, रंग बिरंगे पुष्प सूरज की रोशनी से ही हैं। सूरज न होतो उतने रंग धरती पर नहीं होंगे। इसलिए दिनकर का केवल एक रंग है, एक रस है, एक स्वर है- ये कहके अच्छा तो लगता है। शायद नौजवान लोगों को, उत्साही लोगों को और नेता लोगों को बहुत काम आते हैं। जनता को भड़काने के लिए। लेकिन कई सत्य है। दिनकर की कविता याद दिलाता हूँ- नेता, नेता, नेता। बहुत पहले लिखी गयी कविता, जब घोटाले वगैरह नहीं हुआ करते थे इतने। कम-कम हुआ करते थे। मैं जानना चाहता हूँ व्यंग्य के बारे में जो आज के दौर में बहुत सार्थक है और गर्जन का युग नहीं है यह। कविता है-

नेता नेता नेता
नेता का अब नाम नहीं ले
अंधेपन से काम नहीं ले
हवा देश की बदल गयी है
चाँद और सूरज
ये भी अब
छिपकर नोट जमा करते हैं
और जानता नहीं अभागे
मंदिर का देवता चोर बाजारी में पकड़ा जाता है
अपना हाथ घिनायेगा तू
उठ मंदिर के दरवाजों से
जोर लगा खेतों में अपने
नेता नहीं भुजा करती है
सत्य सदा जीवन के सपने
पूजे अगर खेत के ढेले
तो सचमुच कुछ पा जायेगा
भीख या कि वरदान माँगता
पड़ा रहा तो पछतायेगा
इन ढेलों को तोड़
भाग्य इनसे तेरा जागने वाला है
नेताओं का मोह मूढ़
केवल तुझको ठगने वाला है।

इसलिए दिनकर को जब हम याद करें तो देखें और इसलिए जरूरी है कि वीर रस का काव्य रचने वाला आदमी कभी-कभी एक सुपरमैन या महामानव के इंतजार में रहता है। ब्रेख्त के नाटक में एक कविता है। चेला गाता है-

अभागा है वह देश
जहाँ हीरो नहीं
गैलीलियो चुपके से कहता है-
अभागा है वह देश
जिसे हीरो की तलाश है।

इसलिए देश में अगर एक नेता हो जाए तो सब ठीक हो जायेगा, यह वो मनोवृत्ति है जो देखने पर निरामिष मालूम होती है, निरापद मालूम होती है, जिसके शिकार साधारण आदमी होते हैं जो अनुशासन में सबसे पहले मारे जाते हैं। ऐसे दौर में दिनकर जी बड़ी अच्छी तरह से इस सच्चाई को पहचानने लगे थे। लेकिन मित्रो, मैं फिर, मेरी रुचि में जो अपर दिनकर हैं वो ये हैं। दिनकर ने बड़े दुख के साथ एक कविता लिखी है जिस पर आप लोगों का ध्यान गया होगा। उनकी कविता है-

भूले भी न मेरी विपदाएँ थाहते हैं दोस्त
केवल पुरानी कविताएँ चाहते हैं दोस्त
दोस्त और खासकर औरतें।

ज्यादातर मैं देखता हूँ दिनकर जी पर चर्चा करते हुए हुंकार से, कुरुक्षेत्र से, दिल्ली वगैरह से कविताएँ कोट की जाती हैं। अंतिम दिनों में भी लोग दिनकर जी से यही कविताएं चाहते थे। और बहुत दुखी होकर लिखा होगा- मेरी पुरानी कविताएँ ही चाहते हैं दोस्त। दोस्त और खासकर औरतें। क्षमा कीजियेगा। औरतों के प्रति इतना बुरा भाव था नहीं दिनकर का। लेकिन पहली पंक्ति महत्वपूर्ण है- भले से भी मेरी विपदाएं न थाहते हैं दोस्त। दिनकर की उन विपदाओं को थाह कर देखें तो देखें कि दिनकर कहाँ से जाकर बोलते हैं। इस कविता में लगभग सत्तर के आसपास जहाँ स्वयं दिनकर पहले के काव्यशास्त्र को खारिज करते हैं, तिरस्कृत करते हैं-

कविता न गर्जन न सूक्ति है
कवि का न घोष
न तो वाणी स्वर चिंतकों की
चौके हुए आदमी की उक्ति है
कविता न पूर्ति है, न माँग है
सीढ़ियाँ नहीं है कि हरेक पाँव सीधा करे
लॉजिक नहीं है, ये छलाँग है
अर्थ नहीं, काव्य शब्द योग है
वासना का कीर्तन नहीं है खुद वासना है
रागों का वह कागजी बखान नहीं, भोग है
तंतुओं के जाल शब्द को जो कहीं बांधते हों
सारे बंधनों के तार तोड़ दो
अर्थ से बचो कि अर्थ बेड़ी है परंपरा की
अर्थ को दबाने से ही शब्द बड़ा होता है
निश्चित अनिश्चित का संगम जहाँ है शून्य
कविता का सद्म निरावलंब खड़ा होता है।

ये दिनकर एक नया काव्यशास्त्र लिख रहे थे।

दिनकर के बाद में जिंदगी के अनुभवों तजुर्बों से सिमरिया की जिंदगी और रेशमी शहर दिल्ली की जिंदगी देखी। उस परिपक्व कौम में पहुँचकर वे सोच रहे हैं। मुझे याद है दिनकर जी ने सबसे पहले जो पुस्तक छियासठ-सरसठ में पहली बार मुझे दी थी वह 'शुद्ध कविता की खोज' नाम की पुस्तक थी। दिनकर जी ने दूसरी पुस्तक देहावसान से कुछ ही महीने पूर्व 'हारे को हरिनाम' मुझे दी। अपने हस्ताक्षर से मुझे दो ही पुस्तकें दीं। क्यों महाकवि ने किया ऐसा मुझे नहीं मालूम। वह दिनकर मुझे कहीं अधिक गहरे और महत्वपूर्ण लगते हैं। दिनकर जिस मंजिल पर पहुँचे थे, जहाँ पहुँचे थे वहाँ तक लोग आज भी याद नहीं करते। इसलिए कहा कि दिनकर को तब मैं बड़े कवियों में नाम लेता हूँ। मैंने विद्यापति के बाद यूँ ही उनका नाम नहीं लिया। विद्यापति रूपरस के कवि नहीं थे खाली। विद्यापति में 'हारे को हरिनाम' वाली जो स्त्रोत की भक्ति की भूमि होती है उस पर पहुँचे हैं कवि दिनकर। और नचारियाँ उनकी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इसलिए मैं आज उस दिनकर को ही याद दिलाना चाहता हूँ। मैं ये नहीं कहता कि वही दिनकर दिनकर हैं लेकिन पूर्ववर्ती इलियट से परवर्ती इलियट अधिक बड़ा कवि है। दिनकर जी के प्रसंग में दिनकर जी की एक कविता है। स्वयं अपने बारे में हर महाकवि लिखता है। जैसे निराला का संपूर्ण काव्य उनकी आत्मकथा है। निराला ने 'तुलसीदास' नाम का खंडकाव्य लिखा। तुलसीदास काव्य के नायक तुलसीदास नहीं हैं, वे निराला हैं। 'राम की शक्ति पूजा' के राम राम नहीं है, वे निराला हैं। सरोज स्मृति तो स्वयं है ही। अनेक गीतों में दिनकर हैं। दिनकर बाहरी जीवन में क्या थे, राज्य सभा के सदस्य थे, सरकारी नौकरी की, प्रोफेसर रहे। वाइस चांसलर रहे। सद्गृहस्थ रहे। पारिवारिक जिंदगी की उनकी बहुत बड़ी दुनिया थी। लेकिन दिनकर का जो आत्मस्वरूप था वो व्यक्तित्व दिनकर के काव्य में है। और उतनी ही गहराई से दिनकर आत्म-विश्लेषण करते हैं और निर्ममता से भी। अब एक बात पर विचार कर समाप्त करना चाहूँगा। उर्वशी दिनकर की प्रतिभा का शीर्ष है। जैसे प्रसाद ने अपनी सारी प्रतिभा 'कामायनी' में निचोड़कर रखी थी, दिनकर ने अपनी संपूर्ण प्रतिभा एवं काव्यशक्ति 'उर्वशी' में प्रदर्शित की। उर्वशी की छवि गढ़ते वक्त पुरूरवा की व्यथा कथा और पुरूरवा की कामनाओं की अपार लालसा को एक कविता में दिनकर ने कहा वह्नि का रसकोष बोलो कौन लेगा? आग का रसकोष और बेचैन रसकोष। आग के बदले मुझे संतोष बोलो कौन देगा। उर्वशी को पढ़ने के लिए केवल शृंगार की, संभोग की छवियों और चित्रों में भटकने की जरूरत नहीं। जो भटक गया वह भटक गया। इसलिए अग्नि का जो बेचैन रसकोष है उसके पीछे एक गहरा चिंतन है। बड़ा कवि गंभीर दर्शन के बिना नहीं हो सकता। तुलसी इसलिए बड़े थे। कबीर इसलिए बड़े थे। छायावादियों में प्रसाद और निराला इसलिए बड़े थे क्योंकि बड़े चिंतक थे। उसी 'उर्वशी' में वह पंक्ति है जिसकी ओर ध्यान पहली बार प्रगतिशील आलोचक डॉ॰ रामविलास शर्मा का गया। उर्वशी की पंक्ति है-

चिंतन कर यह जान कि
तेरी क्षण क्षण की चिंता से
दूर-दूर तक के भविष्य का मनुज जन्म लेता है।

इससे चिंतन के भीतर से भविष्य की सभ्यता, भविष्य के मनुष्य के बारे में दिनकर सोचते हैं। चाहे वह उर्वशी ही क्यों न हो उसमें आगामी युग की प्रतिमा, आगामी मनुष्य की प्रतिमा एवं छवियां गढ़ी गयी हैं। और यह प्रतिमा गहन चिंतन के बिना नहीं गढ़ी जाती है। शब्दों के आडम्बर और वाग्जाल से नहीं गढ़ी जा सकती। बाद के दिनों की कविताएँ आप देखें। विज्ञान और टेक्नोलाजी की सीमाएँ क्या हैं। और पर्यावरण पर आजकल बड़ी चर्चा हो रही है और देखता हूँ कि इस चिंता में

मेधा पाटकर, बाबा आम्टे और सुंदर लाल बहुगुणा जैसे लोग डूबे हैं। दिनकर का परवर्ती काव्य। 'लोहे के पेड़ हरे होंगे' इस भावी सभ्यता पर है जो विज्ञान और टेक्नोलोजी की है। जिसके लिए हम लोग मरे जा रहे हैं। नयी सभ्यता और नये इंसान का निर्माण करेंगे। दिनकर जी इस भारत का सपना उस दौर में देख रहे थे। मित्रों! उस सबके अपने-अपने दिनकर थे और दिनकर महासागर के समान थे। यहाँ उनके सुपुत्र केदारनाथ सिंह मौजूद हैं। उनसे निवेदन करूँगा, कुछ ऐसी व्यवस्था करें। सबकी रचनावलियाँ छप गयीं। और प्रकाशक तैयार हैं। दिनकर समग्र एक बार छपकर आ जायें तब पता चलेगा दिनकर सचमुच क्या हैं। दिनकर अतीत के देवता नहीं हैं। भविष्य के निर्माता हैं।

(दिनकर व्याख्यान से उद्धृत)

"कालजयी कलम"

– विजय राम रतन सिंह

कहता कौन कलम में ताकत
होती पैनी धार नहीं
होता युद्ध नहीं है इससे
होता घातक वार नहीं

कहता कौन कलम करती है
अद्भुत चमत्कार नहीं
गूंजती नहीं आवाजें इसकी
जाती अंबर पार नहीं

कहता कौन कलम के भीतर
छिपा हुआ अंगार नहीं है
ढहता नहीं दुर्ग अनीति का
होता जल कर क्षार नहीं है

कहता कौन सृष्टि के अंकुर
फूटते इसके डार नहीं
लगते नहीं फूल संस्कृति के
बनते सभ्यता के हार नहीं

कहता कौन कलम छिटकाती
क्रांति की चिन्गार नहीं
भरती नहीं जोश मुर्दो में
करती बम-बौछार नहीं

करती काम कलम जो सच है
करती वो तलवार नहीं
बिना बहाए रक्त एक बूंद
जीतती जंग हर बार नहीं?

कहता कौन कलम करती है
रूढ़ियों पर प्रहार नहीं
आततायियों का युग से
करती आयी संहार नहीं

कहता कौन कलम से खुलती
नये सृजन के द्वार नहीं
साहित्य कला विज्ञान को मिलता
कल्पना का आधार नहीं?

कहता कौन कलम करती है
भावों का संचार नहीं
लाती नहीं भूचाल है मन में
भरती ओजस्वी विचार नहीं

मगर कलम है वही कालजयी
लेती शब्द उधार नहीं
करती नहीं मुखालफत भय से
सच से सौदा व्यापार नहीं

jf'ejFkh

– *अभय कुमार सिंह*

'दिनकर' प्रकृति के कवि हैं। वही प्रकृति, जो सतत् प्रवाहमान है, सनातन है। जहाँ एक ओर प्रकृति सनातन है, वहीं वह नित्य क्षणभंगुर भी। यह एक विरोधाभास है। किन्तु, जिस जीवन को हम सहज तौर पर जी रहे हैं, और जिसे अनुभूत कर रहे हैं, वह स्वयं में दो विपरीत, विरोधाभासी तत्वों के संयोजन के अंदर फैली पड़ी है। यह अकारण नहीं है, कि 'दिनकर' के काव्य में प्रकृति का यही द्वंद्व सर्वत्र व्याप्त है। तब, हम ऐसा कह सकते हैं कि 'दिनकर' जीवन के द्वंद्व के कवि हैं। उन्होंने स्वयं ही ऐसा कहा है-

'अमृत-गीत तुम रचो कलानिधि
बुनो कल्पना की जाली,
तिमिर-ज्योति के महासमर का,
मैं चारण, मैं वैताली।'

'दिनकर' 'तिमिर-ज्योति' के महासमर के ऐसे चारण कवि हैं, जिनकी कविताओं के शब्द, अर्थ का संवहन कम, और भाव का संवहन ज्यादा करती है। और, भाव वही हैं, जो अपने मूल स्वरूप में 'काल' और 'दिशा' के उद्गम तक जाते हैं। तभी उनके काव्य का स्वरूप सार्वभौम सत्य को धारण करती दिखाई पड़ती है, जहाँ एक व्यक्ति की उन अंतस्थ संवेदनाओं को छूती है जिसमें सनातनता की कम्पन हैं। 'उर्वशी' में उन्होंने कहा है-

'कहाँ देश हम नहीं व्योम में, जिसके गूँज रहे हैं
कौन कल्प हम नहीं तैरते हैं, जिसके सागर में
महाशून्य का उत्स, हमारे मन का भी उद्गम है
बहती है प्रेरणा, काल के आदि-मूल को छूकर'।

यदि शब्द प्राण के मूल को अनुकम्पित कर पाए तो उससे स्फूर्त्त भाव शुद्ध आनंद की ओर ले जाते हैं। 'दिनकर' की कविताएँ प्राण के अंदर कम्पन पैदा करती हैं।

'रश्मिरथी' मूलत: कर्ण का जीवन-चरित है, जिसमें कथा का आधार, युगीन संदर्भ में भाव और विचार को व्यक्त करने के लिए व्यवहृत किया गया है। कर्ण वैसे भी महाभारत के महारथियों में एक है, जो दुर्योधन के पक्ष में होने के बावजूद लोगों

द्वारा सराहा जाता रहा है। लोग इस बात को नहीं देखते कि कर्ण असत्य के साथ रहा है, बल्कि, इस बात को सराहते हैं कि कर्ण का अपना व्यक्तित्व और चरित्र इतना उदात्त है कि, सत्य और असत्य से इतर, अपनी एक अलग पहचान रखता है। लेकिन, ऐसा कैसे संभव हो सकता है। बहुधा लोग चरित्र नायक और उसे साथ देने वाले के साथ खड़े दिखाई देते हैं, क्योंकि अंततः सत्यासत्य की इस लड़ाई में असत्य की हार होती है और सत्य की पुनर्स्थापना। गीता के सार स्वरूप, भगवान ने भी, धर्म की पुनर्स्थापना और अधर्म के नाश को समर्थन दिया है। फिर, भगवान के इस उद्घोष के बाद भी, और गीता में प्रतिपादित इस अमर धारणा के बाद भी, कर्ण का चरित्र सबसे अलग करके क्यों आँका गया है। संभवतः इसका कारण दिनकर, प्रकृति के तटस्थ तत्वों के अंदर ढूँढते हैं। जहाँ प्रकृति का दानमयी होना, उसका वास्तविक स्वभाव है और उसे चलायमान किए रखने का उपादान भी।

कर्ण के जीवन के वे कौन-से मूल्य हैं, जिन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोग, एक नायक के रूप में पसन्द करते आए हैं। कर्ण असत्य के साथ खड़ा है, इस बात की शिकायत कृष्ण स्वयं करते हैं। कर्ण भी इस बात को स्वीकारता है कि दुर्योधन ने उसी के बल के आस पर लड़ाई करने की ठान रखी है। कृष्ण की यह उक्ति कि-

'तू साथ न उसका छोड़ेगा
वह क्यों रण से मुख मोड़ेगा'

कर्ण के ऊपर एक आरोप ही तो है कि व नीति समर्थित और न्याय-संगत व्यवस्था-स्थापन के साथ खड़ा नहीं है, कि वह अन्याय के पक्ष में है और धर्म-विरूद्ध आचरण को समर्थन दे रहा है। कर्ण इसे नकारता भी नहीं है -

'सच है, मेरी है आस उसे, मुझपर अटूट विश्वास उसे,
हाँ, सच है मेरे ही बल पर, ठाना है उसने महासमर।
पर, मैं कैसा पापी हूँगा, दुर्योधन को धोखा दूँगा।

कर्ण दुर्योधन के प्रति इस मित्र-भाव को लिए समर्पित खड़ा है, जिसके पीछे उसके मन में कृतज्ञता है। जब रंगभूमि में, पांडव अपने रण-कौशल के प्रदर्शन पर वाह-वाही बटोर रहे थे, तभी किसी कोने में सुबका एक वीर भी खड़ा था, जिसे अपनी वीरता पर भरोसा तो था, परन्तु उसे प्रदर्शित करने का अवसर नहीं। क्योंकि, रंगभूमि में हिस्सा लेने का पैमाना वीरता न था। वहाँ सिर्फ राजा और राजकुमार ही भाग ले सकते थे। उस व्यवस्था में प्रतिभा के लिए कोई जगह नहीं थी। परन्तु, जब उसने आगे बढ़कर अर्जुन को ललकारा तो सभा के ऊपर अचानक एक सन्नाटा-सा छा गया। गुरु कृपाचार्य के ऊपर राजधर्म के प्रतिष्ठा को बचाने की, वहीं गुरु द्रोणाचार्य के ऊपर अर्जुन के निष्कंटक राह बनाए रखने की चुनौती आ पड़ी थी। जब, कृपाचार्य ने कर्ण से यह कहा-

क्षत्रिय है, यह राजपुत्र है, यों ही नहीं लड़ेगा,
जिस-तिस से हाथापाई में कैसे कूद पड़ेगा?
अर्जुन से लड़ना हो तो मत गहो सभा में मौन,
नाम-धाम कुछ कहो,
बताओ कि तुम जाति हो कौन?

उस समय भी नागरिकों के बीच, संभवतः राजधर्म व्यवस्था, असत्य को समर्थित करती दिखाई पड़ी होगी। तत्क्षण दुर्योधन का प्रगट होना, कर्ण को अंग देश का राजा घोषित करना और रंग-भूमि में अपने रण-कौशल को दिखाने का मौका दिलाना - अकस्मात् कर्ण के ऊपर कृतज्ञता का भार डाल देता है। कर्ण की यह उक्ति-

'भरी सभा के बीच आज तूने जो मान दिया है,
पहले-पहल मुझे जीवन में जो उत्थान दिया है,
उऋण भला होऊँगा उससे चुका कौन-सा दाम।
कृपा करें दिनमान कि आऊँ तेरे कोई काम'

कृतज्ञता से उत्पन्न वह मित्रता का भाव था-

'वीर बन्धु! हम हुए आज से एक प्राण दो देह'।

कर्ण ने अपने जीवन के अंत तक मित्रता के इस व्रत को निभाया था। किन्तु, कितना कठिन मूल्य देकर! जब, घटोत्कच को मारने के लिए एकघ्नी का संधान करता है। उस एकघ्नी का जिसे 'कवच और कुंडल' गँवाकर पाया था। वह एकघ्नी जो उसके जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति का अंतिम अमोघ था। तब भी, दुर्योधन के आर्त्त पुकार पर, मित्र-धर्म को निभाते, एकघ्नी का प्रयोग किया। कर्ण का 'मित्र-धर्म', तब जीवन-संग्राम में खड़े उस हर एक वीर का धर्म बन जाता है

'मित्रता बड़ा अनमोल रतन,
कब इसे तोल सकता है धन?
धरती की तो है क्या बिसात?
आ जाए अगर वैकुंठ हाथ,
उसको भी न्योछावर कर दूँ
कुरुपति के चरणों पर धर दूँ।

फिर उस मित्र-धर्म के रास्ते से डिगनेवाला कौन होगा - एक कायर, एक लोभी, एक डरपोक; एक वीर नहीं, क्योंकि उसकी अभिलाषा धन जोगने की नहीं, सुख की नहीं, छाँव की नहीं। जिसका चरित्र उस गरुड़ की तरह है जो पौरुष और वीरता का अप्रतिम प्राकृतिक उदाहरण है-

''प्रासादों के कनकाभ शिखर, होते कबूतरों के ही घर,
महलों में गरुड़ न होता है, कंचन पर कभी न सोता है।
बसता वह कहीं पहाड़ों में, शैलों की फटी दरारों में
.....
वे ही फणिबंध छुड़ाते हैं, धरती का हृदय जुड़ाते हैं।''

वही गरुड़, जो प्रकृति की डरावनी शक्तियों के बीच जीवन का आनंद लेता है, उनके साथ सहज है। जो झंझावातों को ऊँची उड़ान भरने को अनुकूल पाता हो, जो प्रपातों की भयकारी ध्वनियों के बीच पानी पीता हो, जिसका सेज पहाड़ की कंदराएँ हों और जिसका भोजन विषधर भुजंग हो।

किन्तु, वही पौरुष धरती को 'फंणि-बंध' से मुक्त कराती है। साँपों ने धरती को जिस पाश में, अहिपाश में, बाँध रखा था, उसे भला गरुड़ के और कौन काट सकता था।

कर्ण के चारित्रिक वैशिष्ट्य में गरुड़ के पौरुष-दर्शन, उसे सत्य और असत्य के विवेचन से अलग खड़ा कर देता है। कर्ण का व्रत, या तो दान-व्रती का, जो सहज प्रकृति-धर्म से अनुप्राणित है; या उसका मित्र धर्म जो पौरुष के संबल पर खड़ा है - अनायास सभी जनों को एक आदर्श पुरुष का दर्शन दिलाता है। उसके अभाग और विपत्ति में, लोग स्वयं के जीवन के अभाव, संघर्ष, अपमान और भेदभाव को टटोलते हैं, वहीं उसकी वीरता में अपने मनोबल को उठाकर चलने का सहारा भी पाते हैं।

परशुराम ने जिस कर्ण को छली कहा, लोग उसे समय और परिस्थिति के कैनवास पर कदापि अनुचित नहीं मानते। परशुराम के स्वयं के मन का संशय, उनके द्वारा कर्ण की वीरता की अतिशय सराहना; कर्ण के चरित्र को छली होने के कलंक से बेदाग़ बाहर कर लेता है।

कुन्ती के साथ कर्ण के संवाद पाठक-दर्शक को एक ऐसे द्वंद्वगत स्थिति में लाकर खड़ा कर देता है - जहाँ दोनों ही अपनी जगह सही दिखाई पड़ते हैं।

कृष्ण से संवाद में कर्ण एक ऐसे वियुत योद्धा के रूप में प्रस्तुत है, जो संकल्पवान है - दृढ़ संकल्पवान, जिसे भगवान - समर्थित धर्म और न्याय की परवाह नहीं, न ही पांडवों के ज्येष्ठ के रूप में भारतवर्ष के राजपद की लालसा है।

तब ऐसा लगता है, कर्ण एक व्यक्ति नहीं, एक चरित्र नहीं बल्कि, एक प्रकाशमय-पुंज है जिसमें सर्वोच्च मानवता के प्रबल गुणों की किरणें संघटित है।

हर कथा सुनने वाले और पढ़ने वाले को उनमें से एक किरण स्वयं से मिलता दिखाई पड़ता है। तब कर्ण एक चरित्र नहीं, किरण-पुंज है और कथावाचक उसका एक अवयव। तब, सत्य और असत्य के पड़ताल करने का होश किसे बच जाता है।

कर्ण, सामाजिक व्यवस्था में अवसर की समानता न मिल पाने वाले लोगों के सामासिक दर्द और घुटन को अभिव्यक्ति देनेवाला चरित्र बन जाता है। 'दिनकर' का यह उद्घोष उस पीड़ा की 'मैग्ना-कार्टा' की तरह लगता है जो कर्ण की पृष्ठभूमि से निकलती तो है - लेकिन उनमें वर्तमान के लिये भी नई आशाएँ हैं -

'जय हो', जग में जले जहाँ भी, नमन पुनीत अनल को,
जिस नर में भी बसे, हमारा नमन तेज को, बल को।

संपर्क:
आयकर आयुक्त, कोच्चि, केरल।

I Kekftd U;k; d dfo fnudj

– प्रो. रमा शंकर दूबे

आधुनिक भारत की ऐतिहासिक भव्यता में चार चाँद लगाने में बिहार की भूमि सदा से उर्वर रही है। आधुनिक हिन्दी काव्याकाश के अलौकिक मार्तण्ड की भाँति अपनी रश्मियों से मानवता को आलोकित करने वाले राष्ट्रकवि दिनकर इसी नैसर्गिक भूमि के कमल कोमल कमनीय कुसुम क्रोड़ में लालित-पालित हुए। बिहार प्रदेश की अंग भूमि ने डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' के रूप में एक ऐसा कवि हृदय दिया जिनकी उच्च कोटि की राष्ट्रीय भावना में आजादी के दिवानों में अप्रतिम दिवानगी भरने की अदम्य शक्ति थी। दिनकर जी की कविताओं में निर्जीवों में भी जान फूँक देने की क्षमता थी। राष्ट्रीयता की रक्षा के लिए युधिष्ठिर की तरह धर्मवीर के बदले धुरंधर धनुर्धारी अर्जुन और अग्रज गदाधारी भीम की आवश्यकता केवल डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' को ही नजर आई। अंग के आँगन में अवस्थित भागलपुर विश्वविद्यालय (सम्प्रति तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय) का यह सौभाग्य है कि उसके पल्लवन, पुष्पन एवं प्रस्फुटन की अवस्था में राष्ट्रकवि दिनकर का नेतृत्व कुलपति के रूप में प्राप्त हुआ था। मैं अपने आप को अत्यन्त भाग्यशाली मानता हूँ कि दिनकर जी की राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत इस विश्वविद्यालय में सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ। मैं दिनकर जी की राष्ट्रीय भावना एवं उनकी काव्य शैली में निहित सामाजिक समरसता की धार से जनमानस में चेतना संचरण करने का कायल हूँ। राष्ट्रकवि की संज्ञा का विभूषण दिनकर जी के साथ-साथ संपूर्ण अंग-क्षेत्र की आलौकिक आभा में अभिवृद्धि कर रहा है।

बीसवीं सदी के मध्य तक हिन्दी में माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर' तथा गोपाल सिंह नेपाली आदि ऐसे अनेक कवि हुए जिनकी देशभक्तिपूर्ण कविताओं की धूम मची हुई थी। परन्तु, राष्ट्रकवि के रूप में मैथिलीशरण गुप्त और रामधारी सिंह 'दिनकर' को ही प्रसिद्धि मिली। उस समय गुप्तजी की 'भारत-भारती' का प्रकाशन हो चुका था जिसमें राष्ट्र का स्वाभिमान बोल रहा था। भारत की गौरव-गरिमा और इसकी सांस्कृतिक परम्पराओं और हिन्दू के जातीय उत्थान 'भारत-भारती' का मूल स्वर था जिसका प्रभाव दिनकर पर भी पड़ा था तथा उनमें राष्ट्रीय भावना का तीव्र उन्मेष हुआ था। परन्तु, उनकी राष्ट्रीयता गुप्त जी की राष्ट्रीयता से भिन्न थी। वे राष्ट्र-भक्ति आन्दोलन की सफलता के लिए हिन्दू-जातीय उत्थान की बात न कर

देश में दुख-दैन्य परिस्थितियों में जीने वाले समाज के दबे-कुचले, शोषित-पीड़ित उन निर्धन किसानों-मजदूरों की जीवन-दशा और उनके उत्थान की बात कर रहे थे जो सामाजिक न्याय से वंचित तथा मुख्यधारा से अलग थे। भारत को ब्रितानी दासता से मुक्ति दिलाने के साथ-साथ निम्न जाति में जन्म लेने की विडम्बना का फल भोग रहे समाज के वंचित लोगों में दिनकर स्वाभिमान जगा रहे थे। 'रश्मिरथी' जैसी कृति के सृजन के पीछे दिनकर का यही उद्देश्य था। उनका यह काव्य महाभारत के कथांश की पुनरावृत्ति मात्र नहीं अपितु सामाजिक न्याय का दस्तावेज है। तभी तो दिनकर कहते हैं-

किसी वृंत पर खिले विपिन में, पर नमस्य है फूल।
सुधी खोजते नहीं गुणों का आदि शक्ति का मूल।।

समाज के ऐसे दलित, वंचित लोगों की चिंता और उनमें अन्तर्निहित गुणों को सम्मान दिलाने की पक्षधरता का उदय संभवत: सबसे पहले दिनकर की कविताओं में ही हुआ था जब वे उनकी हीनता की ग्रंथि को तोड़ अपने गुणों को नि:संकोच जग के समक्ष जाहिर करने के लिए प्रेरित कर रहे थे-

हीन मूल की ओर देख जग गलत कहे या ठीक,
वीर खींच कर ही रखते हैं इतिहासों में लीक।

सामाजिक न्याय और दलित चेतना की कृति रश्मिरथी में कर्ण के चरित्र के माध्यम से दिनकर ने अपने विचारोत्तेजक सामाजिक न्याय की भावना को स्पष्ट कर दिया है। उनकी इस दृष्टि पर विचार करते हुए यह मान लेने में कोई असंगति नहीं होगी कि मध्यकाल में कबीर के बाद आधुनिक हिन्दी कविता में सामाजिक न्याय और दलित चेतना की बात करने वाले कवियों में दिनकर का प्रथम पंक्ति में प्रथम स्थान है।

उस समय समाज में वर्ण और जाति-भेद चरम पर था जिसके फलस्वरूप समाज का एक बड़ा तबका राष्ट्र की मुख्यधारा से पृथक था। उस समय के भारतीय समाज में व्यक्ति की पहचान गुणों से नहीं उसकी जन्मना या पालना से होती थी। निम्न जाति में पलने-बढ़ने के कारण महाभारत के उदात्त चरित्र कर्ण और मध्यकाल के संत कवि कबीर को यह सामाजिक दंश झेलना पड़ा था। दिनकर कर्ण और कुंती-संवाद के जरिये भारतीय समाजशास्त्र के उस सच को 'रश्मिरथी' में इस प्रकार दर्शाते हैं-

मैं नाम-गोत्र से हीन, दीन, खोटा हूँ,
सारथीपुत्र हूँ, मनुज बड़ा छोटा हूँ।
ठकुरानी! क्या लेकर तुम मुझे करोगी?
मल को पवित्र गोद में कहाँ धरोगी?

दिनकर सामाजिक और आर्थिक समानता में ही देश की एकता और समृद्धि को देखते हैं। इतिहास के विद्यार्थी होने के फलस्वरूप उन्होंने देश के उत्थान-पतन के गणित को सूक्ष्मतापूर्वक देखा था। सामाजिक और आर्थिक विषमताग्रस्त समाज कभी भी विकास की मंजिल तय नहीं कर पाता है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' में अपनी समतामूलक इसी सामाजिक विचारधारा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

जब तक है यह वैषम्य समाज सड़ेगा,
किस तरह एक होकर यह देश लड़ेगा।

इतना ही नहीं देश की दुर्बलता के पीछे विषमता की यही काली छाया मंडरा रही है। विज्ञान के जोर पर भारत मंगल ग्रह पर तो पहुँच गया, अंतरिक्ष में बस्तियाँ बसाने की बात सोच ली परन्तु 67 वर्ष की आजादी को पूरी कर लेने के बाद भी भारत की आंतरिक विश्रृंखलता सुसंगठित नहीं हो पायी है। तटस्थ होकर जब अपनी इस दुर्बलता को देखता हूँ तो दिनकर की कही गई बातें हमें केवल उपदेश नहीं अन्दर से झकझोर देती हैं-

सब से पहले यह दुरित-मूल काटो रे!
समतल पीटो, खाइयाँ-खड्ड पाटो रे!
बहुपाद बटों की शिरा-सोर छाँटो रे!
जो मिले अमृत, सबको समान बाँटो रे!
वैषम्य धोर जब तक यह शेष रहेगा,
दुर्बल का ही दुर्बल यह देश रहेगा।

दिनकर का यह राष्ट्रवाद सामाजिक न्यायमूलक राष्ट्रवाद है जिसका स्वप्न शहीद-ए-आजम भगत सिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद और क्रांतिवीर नेताजी की आँखों में तैर रहा था। एक तरफ धनतांत्रिक व्यवस्था में लोग फिजूल खर्च कर रहे हैं और दूसरी तरफ भूख से बच्चे बिलख रहे हैं तथा भारत की युवतियाँ चिथड़ों में अपनी लाज छुपाने

का प्रयत्न कर रही हैं, क्या देश की आजादी का यही मतलब था? कहाँ खो गया गाँधी का वह कथन कि 'मैं भारत में ऐसी आजादी चाहता हूँ जहाँ के लोगों की आँखों में आँसू की एक बूंद न हो।' 3 मार्च 1931 को जेल की कोठरी से भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरू के संयुक्त पत्र की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है जिसमें उन्होंने लिखा था- 'यह लड़ाई तब तक जारी रहेगी जब तक कि कुछ शक्तिशाली लोगों का जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर एकाधिकार बना रहेगा। चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूँजीपति हों, अंग्रेजी शासक अथवा भारतीय हों जिन्होंने आपस में मिलकर लूट मचा रखी है। यह उस समय तक समाप्त नहीं होगा जब तक समाज का वर्तमान ढाँचा समाप्त नहीं हो जाता। 'चन्द्रशेखर आजाद तो गरीबों को रोटी उपलब्ध कराने में अपनी जान भी सस्ती समझते थे- 'मिले तो गरीब को रोटी तो मेरी जान सस्ती है।' समतामूलक इस समाज की स्थापना के लिए दिनकर भी युद्ध जारी रखते हैं। आजादी के बाद लिखी गई उनकी 'समर शेष है' कविता इसका प्रमाण है-

ढीली करो धनुष की डोरी, तरकस का कस खोलो,
किसने कहा, युद्ध की वेला गयी, शान्ति से बोलो?
किसने कहा, और मत बेधो हृदय वह्नि के शर से?
भरो भुवन का अंग कुंकुम से, कुसुम से, केसर से?
कुंकुम? लेपूँ किसे? सुनाऊँ किसको कोमल गान?
तड़प रहा आँखों के आगे भूखा हिन्दुस्तान।

दिनकर एक ओर हिन्दुस्तान की जनता और दूसरी ओर दूध-भात का आनन्द लेते खानों को देखते हैं तो धनतांत्रिक व्यवस्था के प्रति उनका आक्रोश फूट पड़ता है। विषमतामूलक समाज का हृदय विदारक चित्र दिनकर की निम्न पंक्तियों में अवलोकनीय है-

श्वानों को मिलता दूध-भात, भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़े की रात बिताते हैं।
युवती का लज्जा-वसन बेच, जब ब्याज चुकाये जाते हैं,
मालिक जब तेल-फुलेलों पर, पानी-सा द्रव्य बहाते हैं।

दिनकर इसी आर्थिक विषमता को दूर कर समतामूलक समाज की स्थापना के पक्षधर कवि हैं। उनका मानना है कि आर्थिक विषमता को दूर किये बिना सामाजिक समानता की बात करना व्यर्थ है। दिनकर समाज की दुख-दैन्य पीड़ित जनता की दर्द भरी तस्वीर ही नहीं दिखाते हैं अपितु, स्वयं इसकी अगुवाई कर उसे सामाजिक न्याय दिलाने को उद्यत हो उठते हैं-

हटो व्योम के मेघ, पंथ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं,
'दूध-दूध' ओ वत्स! तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं।

आर्थिक विषमता की बात हो अथवा सामाजिक न्याय या दलित चेतना की - दिनकर को विस्मृत कर भारत आगे नहीं बढ़ सकता है। उनके विचारों की प्रासंगिकता तब तक बनी रहेगी जब तक देश के अंतिम व्यक्ति तक समता और न्याय की किरणें नहीं पहुँच जाती हैं। लेकिन वर्तमान परिस्थिति में समतामूलक विचारों का फैलाव आसान नहीं है। पुरानी जमींदारी और राजघरानों की प्रथाओं ने अपना रूख बदलकर आर्थिक विषमता की विष बेल को पुष्पित पल्लवित होने का भरपूर अवसर प्रदान किया है। आज भी आँकड़े बताते हैं कि पूरे देश की संपूर्ण सम्पत्ति का कितना बड़ा हिस्सा मात्र कुछ ही लागों के हाथ में है। सरकार के सारे प्रयासों के बावजूद गाँव के बहुत सारे लोगों के बदन पर साल में एक भी वस्त्र उपलब्ध नहीं हो पाता। सरकार ने अवसर की समानता के पीछे अरबों-खरबों की रकम सामाजिक न्याय के नाम पर झोंक दी है, पर सामाजिक न्याय का लाभ अभी भी सिमट कर रह गया है। हमने आजादी के बाद संविधान में समानता की जितनी बातें की थी, जिस राम राज्य का सपना हमने देखा था, धरातल पर अगर उतर गया होता तो लगता कि आजादी के दीवानों की सोच पर हम खरे उतरे हैं।

हमें आत्म मंथन करना होगा, अपनी कथनी और करनी के अन्तर को पाटना होगा। हमें अपनी विरासत में मिली हुई भारतीय संस्कृति तथा भारतीय जीवन के मूल्यों को अक्षुण्ण रखते हुए मन, वचन और कर्म से एक होकर राष्ट्रकवि दिनकर के विचारों को जन चेतना का मूल मंत्र मानते हुए सामाजिक समता का शंखनाद करना होगा। आज भी दिनकर के 'हुंकार' और 'कलम, आज उनकी जय बोल' जो अप्रमेय अजस ऊर्जा के स्रोत हैं भारतीय जनमानस में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा का संचरण करते हुए समतामूलक समाज की स्थापना हेतु संजीवनी का कार्य करेंगे।

कुलपति
तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर - 812007, बिहार

d #{k=% ,d ;) dk0;

- रामदरश मिश्र

युद्ध हमेशा से होते आए हैं और कुछ संवेदनशील व्यक्तियों को हमेशा मानवीय मूल्यों के लिए यह एक भीषण संकट के रूप में दीखता रहा है। युद्ध से सदैव एक मनीषी, एक कवि, एक मनुष्य आहत होता रहा है किन्तु अहंकार,भोग, राज्य विस्तार की लिप्सा सदा से जीभ लपलपाती हुई युद्ध के रूप में सामाजिक मूल्यों को चुनौती देती रही है और तब? तब एक भयानक युद्ध, नर-संहार, विकृतियाँ, खंडित आस्थाएँ, टूटे हुए मूल्य...। युद्ध की विभीषिका आधुनिक कालमें बढ़ गयी है। युद्ध का रूप और उसके परिणाम दोनों हीअत्यंत भयानक और विश्व-ग्रासी हो गये हैं। एक ओर भौगोलिक दूरियों के घट जाने के कारण अंतरराष्ट्रीय मानसिक क्षितिज का विस्तार हुआ है दूसरी ओर एक का संकट दूसरे का संकट भी हो गया है। दो शक्तियों की टकराहट से बार-बार युद्ध की चुनौती के स्फुलिंग उड़ते हैं और सारा विश्व भयानक विनाश के भय से थर्रा उठता है। थोड़े ही वर्षों के अंतराल से विश्व के पटल पर दो-दो महायुद्धों का उतर आना कितना भयावह रहा। तीसरे विश्वयुद्ध की आशंका भी रह-रहकर कौंध उठती है। एक ओर बहुत-से देश विश्व-परिवार की कल्पना करते हैं,दूसरी ओर कुछ अपनी राष्ट्रीय सीमाओं के विस्तार में लगे हुएहैं। इस षड्यंत्र में पूँजीवादी और साम्यवाद दोनों ही देश शामिल हैं, शेष देश अपनी सीमाओं की सुरक्षा में अपनी राष्ट्रीय संपत्ति का अधिकांश झोंक रहे हैं। राष्ट्रीयता जहाँ एक अंधोनुमाद को जन्म दे रही है वहीं अंतरराष्ट्रीयता एक नये प्रकाश-मार्ग की खोज कर रही है। इससे मूल्यों में अद्भुत टकराहट उत्पन्न हो गयी है। राष्ट्रीयता की पुन:परीक्षा करते हुए प्रबुद्ध लोग उसे अंतरराष्ट्रीय मानव-चेतना से संलग्न करना चाहते हैं। विज्ञान की नयी खोजें जहाँ एक ओर मानव-शक्ति की नयी संभावनाएँ उद्घाटित कर रही हैं वहीं अणु बम और परमाणु बम का निर्माण कर मानव-मात्र के विनाश की एक छोटी-सी भूमिका है। इसीलिए आधुनिक काल में प्राय: विश्व की सभी भाषाओं में युद्ध-संबंधी कविताएँ लिखी गयी हैं। किंतु इन कविताओं ने द्धसस्ती राजनीतिक कविताओं को छोड़कर एक राष्ट्रीय उन्माद में आकर युद्ध को प्रोत्साहित करने के स्थान पर एक मानवीय स्तर पर युद्ध के प्रश्नों पर विचार किया है-उसकी अनिवार्य स्थितियों, द्वन्द्वों और परिणितियों के बीच से गुजरती हुई मानव यातना की अनुभूति उभरी है। इस चिन्तन और अनुभूति को कवियों ने मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री, मानवतावादी सत्यों के आलोक में विकसित

अनेक जीवन-प्रश्नों और मानव-कल्पनाओं से संदर्भित किया है। यह सच है कि युद्ध सदा मानव-समाज को यातना, टूटन और अंधकार प्रदान करता है, इसलिए यह मानव-मूल्यों की दृष्टि से गर्हित है और मानव-मूल्यों में आस्था रखने वाला हर विवेकशील प्राणी युद्ध की अनिवार्यता को बार-बार टालने का प्रयत्न करता है और युद्ध होने के बाद भी विजयोल्लास से उन्मत्त होने के स्थान पर एक पीड़ा, एक विषाद और आत्म-ग्लानि से भर जाता है। फिर भी युद्ध होते हैं। क्योंकि किन्हीं परिस्थितियों में वे अनिवार्य हो उठते हैं। जहाँ अंधकार प्रकाश को निगलने के लिए बार-बार मुँह फाड़ता हो, वहाँ आखिर विकल्प क्या बचता है? और ऐसे अवसरों पर मानवता की ओर से लड़ा गया युद्ध मानव-मूल्य के सौंदर्य से दीप्त होता है। वास्तव में मूल्य एक जटिल वस्तु है उसकी परख परिस्थितियों की सापेक्षता में ही की जा सकती है। जो गुण एक व्यक्ति के लिए मूल्य हो सकते हैं वे ही समाज के लिए दोष और कमजोरी भी। 'कुरुक्षेत्र' में आत्मग्लानि में डूबे युधिष्ठिर से भीष्म पितामह कहते हैं कि तप, त्याग, क्षमा, शांति एक व्यक्ति के लिए भूषण तो हो सकते हैं, किन्तु उस समाज के लिए नहीं जिसकी स्वाधीनता, अधिकार और स्वाभिमान को ग्रसने के लिए एक दूसरा समाज ललकारता हो। 'कुरुक्षेत्र' एक काव्यात्मक गीता है जिसमें आध्यात्मिक चिंतन के स्थान पर आधुनिक जीवन के प्रश्नों का चिन्तन है। युद्ध की समस्या को लेकर लिखे गये प्रबंध काव्यों में 'कुरुक्षेत्र' का बहुत ऊँचा स्थान है। कवि ने युद्ध को निन्द्य बताते हुए भी आधुनिक परिवेश में उसके जटिल रूप को, उसके संक्रांत मूल्य को उभारा है। प्रश्न इतना ही नहीं है कि युद्ध निन्द्य है, उससे बड़ा प्रश्न यह है कि निन्द्य वस्तु बार-बार इतनी अनिवार्य क्यों हो उठती है और युद्ध के रूप में इतिहास की एक बहुत बड़ी चुनौती क्यों बार-बार शांतिप्रिय लोगों को स्वीकार करनी पड़ती है? क्यों उन्हें ऐसा लगता है कि एक विशेष सामाजिक या मानवीय संदर्भ में युद्ध शांति की अपेक्षा अधिक मूल्यवान हो जाता है? इस ओर या उस ओर खड़ा होकर एक विशेष प्रकार के निर्णय की साफ-साफ घोषणा करना आसान है किन्तु मानव-निर्यात और विषम सामाजिक परिस्थितियों से गुजरता हुआ सत्य अपने को न जाने कितने आवर्तों में लिपटा हुआ पाता है और आज की कविता इसी सत्य के गहन और संक्रांत स्वरूप को उद्घाटित करना जितना प्रांसगिक मानती है उतना उसके किसी काल्पनिक निर्णय का स्वप्न चित्रित करना नहीं। उत्तर भले न मिल पाता हो, प्रश्न और प्रश्न तो करना ही है। 'कुरुक्षेत्र' में भी वास्तव में कोई उत्तर नहीं है, युद्ध का कोई समाधान नहीं है। जहाँ समाधान खोजने का प्रयास है वहाँ कवि केवल स्वप्न-द्रष्टा रह गया है-अर्थात ऐसा हो तो ऐसा होगा और आओ हम उस दिन की आशा से मुँह न मोड़ें। किन्तु कुरुक्षेत्र की शक्ति उसकी यह आशा नहीं है, उत्तर का काल्पनिक नियोजन नहीं बल्कि वह द्वन्द्व-ग्रस्त प्रश्न है जो धर्मराज और भीष्म के माध्यम से उसके भीतर से गुजरता है। शांति काम्य है, युद्ध निषिद्ध है किन्तु युद्ध के लिए अनिवार्य परिस्थितियाँ उत्तरदायी होती हैं। जब अनुनय हार जाता है तब प्रतिरोध आवश्यक होता है। इस अवस्था में विनय, शांति, क्षमा, मूल्य न रह कर पाप बन जाते हैं- सामाजिक पाप। सच बात तो यह है कि विनय, क्षमा, त्याग उसी को शोभते हैं जिसमें पौरुष हो, आँच हो। अत: विशेष परिस्थितियों में युद्ध प्रकृति और समाज का धार्म बन जाता है। सामाजिक युद्ध का उत्तरदायी व्यक्ति नहीं होता। इसलिए अपने को युद्ध का उत्तरदायी मान लेना गलत ढंग से एक ऐतिहासिक निर्णय को अपने ऊपर ओढ़ना होता है। किन्तु युद्ध की अनिवार्यता को स्वीकार कर लेने मात्र से प्रश्नों का अंत नहीं होता। युद्ध शुरू होने पर मूल्य ऐसे उलझ जाते हैं कि रावण और कौरवों के असंख्य अधर्म प्रहारों के साथ राम और पांडवों को भी कुछ न कुछ अधर्म प्रहार करने ही पड़ते हैं। धर्म जहाँ थोड़ा सा स्खलित हुआ, वह सरकता और उलझता हुआ चला जाता है और धर्मयुद्ध शुरू करने वाला इस अधार्मिकता के लिए कहीं न कहीं विवश हो जाता है और अपनी इस विवशता और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न अधार्मिकता का बोध उसे निरंतर पीड़ित करता है। अर्थात वह एक ही साथ एक युद्ध बाहर लड़ता है, एक भीतर। एक और भीषण नर-संहार करता है। दूसरी ओर उसे लगता है कि वही अनेक लोगों के रूप में अनेक बार मर रहा है। युयुत्सा और मानवीय करुणा का एक भयानक द्वन्द्व उसे कसता चला जाता है और विजय के पश्चात भी वह उल्लास नहीं, पश्चात्ताप भोगता है, साम्राज्य नहीं, सामने बिछा हुआ श्मशान पाता है। युद्धेत्तर समाज के सारे विघटन, विकलांग जीवन, श्रीहीनता, छटपटाहट, आदि को उदास

आँखों से देखता है और विजयश्री उसके सामने उपेक्षित सी खड़ी रहती है। कुरुक्षेत्र के 'धर्मराज' इसी प्रकार के एक संवेदनशील योद्धा के मूर्त्तरूप हैं जो आत्मग्लानि के अतिरेक में अपने को ही युद्ध का उत्तरदायी मानकर भीष्म के सामने विलाप करते हैं। वास्तव में हमारा काव्य अब तक यह सोचने का आदी रहा है कि विपक्षी का मरना और है और स्वपक्षी का मरना और है। पक्ष के लोगों का मरना दुखदायी है और विपक्ष के लोगों का मरना सुखदायी। आज का काव्य पूरे युद्ध को एक मानवीय धरातल पर लेता है, मरता चाहे कोई हो, एक मानव मरता है, उसका दर्द हमारा दर्द है, उसका खून हमारा खून है,उसकी मृत्यु जैसे हमारी मृत्यु है। इतना होने पर भी यह अनिवार्य तो है ही, नहीं तो उसे हम मारते क्यों? 'धर्मराज' इसी प्रकार युद्ध की यातना को एक विराट मानवीय धरातल पर देखते हैं। किन्तु एक संवेदनशील विजेता आत्मग्लानि की अवस्था में उसी प्रकार असंतुलित होकर उपने को उत्तरदायी मानकर स्वयं को पीड़ित करने लगता है जिस प्रकार एक क्रूर विजेता अपने को विजयी मानकर असीम क्रूर उल्लास का अनुभव करता है। इसलिए भावुकता से अतिक्रांत ध मराज अपने समस्त पीड़ित रूप में युद्ध के केवल एक पक्ष को व्यक्त कर पाते हैं, युद्ध का जो जटिल प्रश्न है उसे बौद्धिक स्तर पर सामने रखने में वे असफल रहते हैं। यह काम करते हैं भीष्म। इस प्रकार 'कुरुक्षेत्र' धर्मराज और भीष्म के माध्यम से युद्ध के मूल्य और निर्यात की अलग-अलग धाराओं में बँट जाता है। धर्मराज मूलत: युद्ध के मानवीय मूल्य का प्रश्न उठाते हैं, और भीष्म नियति का। इस क्रम में धर्मराज व्यक्तिवादी ढंग से अपने को युद्ध का उत्तरदायी मान कर शांति, क्षमा त्याग, प्रेम आदि मानवीय मूल्यों को विनाशक मानते हैं। और यह कहना चाहते हैं कि युद्ध चाहे जिस रूप में हो वह मानवता का संहारक है और अपना सब कुछ खोकर भी मानवीय मूल्यों के पक्षधारों को युद्ध नहीं करना चाहिए। भीष्म सामाजिक चेतना के प्रतीक हैं, उनमें भावुकता के स्थान पर तटस्थ चिंतन है, इसलिए वे युद्ध की नियति की परीक्षा करते हुए कहना चाहते हैं कि समाज में जब तक विषमताएँ हैं, जब तक दो वर्गों के सुखों और सुविधाओं में आकाश पाताल का अंतर है, तब तक युद्ध की संभावना मिटायी नहीं जा सकती। भीष्म के माध्यम से कवि ने आज के समाज के वैषम्य, विसंगति और भयानक विरूपता को उद्घाटित किया है। शांति तो सबसे बड़ी अशक्ति है समाज की, क्योंकि शोषक औरों का खून चूस कर उनसे कहता है शांत रहो। यह शांति बड़ी ही मानवघातिनी है। इसलिए युद्ध का समाधान एक ही तरीके से हो सकता है। समाज में साम्य स्थापित कर दो या तो भेड़ियों के दाँत दे दो। भीष्म स्वप्न देखते हैं कि धर्मराज जैसे लोग यदि हैं तो एक दिन अवश्य आयेगा, जब सच्चे अर्थों में शांति स्थापित होगी। 'कुरुक्षेत्र' केवल युद्ध काव्य नहीं है, युद्ध के प्रश्न के बहाने भीष्म ने आज के सामाजिक जीवन के अनेक प्रश्नों को, अनेक सत्यों को छुआ है। कवि ने मानववाद के स्वर को मुखर करते हुए उपेक्षितों के प्रति प्रेम और सहानुभूति तो व्यक्त की ही है उनके अधिकारों का जोरदार समर्थन भी किया है। इसलिए यह मानववाद केवल करुणा बन कर ही नहीं चुक जाता, वह साम्यवाद की स्थापना का स्वर ऊँचा करता है। अद्वैतवाद भी समता का समर्थक है किन्तु वह अंतर्मुख व्यावहारिक नहीं। इसलिए कवि मार्क्सवादी दृष्टिकोण से समता स्थापित करना चाहता है। ऐतिहासिक वातावरण के सत्य-निर्वाह के कारण मार्क्सवाद का कहीं नाम नहीं लिया है। वह बार-बार भीष्म के माध्यम से भाग्यवाद का विरोध और कर्मवाद का समर्थन करता है। कवि ने अपने युग की चेतना को पहचाना है, इतना ही नहीं, अपने विवेक से उसके मंगल-अमंगलकारी स्वरूप की ओर इंगित भी किया है। कवि ने मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और मानवतावाद के आलोक में अनेक जीवन-प्रश्नों और मूल्यों को युद्ध और शांति के मुख्य प्रश्न के संदर्भ में आंकलित किया है। मानव का बड़प्पन आज स्वत: निर्णीत नहीं है। उसमें पाप और पुण्य की धूप-छाया जटिल रूप में बुनी हुई होती है। और सच बात तो यह है कि पाप की एक निरपेक्ष व्याख्या करना भी कठिन है। जहाँ आधुनिक काल ने समाजवाद, मानववाद जैसा मानव मंगलकारी व्यावहारिक दर्शन दिया, मनोविज्ञान जैसी मानव-पारखी-दृष्टि, वहाँ उसने बुद्धिवाद का अतिरेक तथा भौतिक सुखों की असीम स्पृहा देकर युद्धों का भयानक तनावपूर्ण वातावरण बना दिया। इसलिए दिनकर ने बुद्धिवाद का विरोध किया है। किन्तु यह अद्भुत विसंगति है कि समाजवाद का समर्थन करने वाला कवि बुद्धि का ही विरोध करने लगता है अर्थात वह बुद्धि को एक विशेष प्रकार के राजनीतिक छल-छद्म में ही

सीमित कर देता है। 'कुरुक्षेत्र' निस्संदेह हिन्दी का एक विशिष्ट ही नहीं, समृद्ध प्रबंध काव्य है। यह एक विचार-प्रधान प्रबंध काव्य है, जिसमें कवि ने महाभारत का एक प्रसंग लेकर आधुनिक जीवन के सन्दर्भ में कुछ बुनियादी प्रश्नों पर विचार किया है। कवि ने कहा है, 'कुरुक्षेत्र में एक साधारण मनुष्य का शंकाकुल हृदय ही है जो मस्तिष्क के स्तर पर चढ़ कर बोलता रहा है।' जाहिर है कि कवि वर्तमान परिस्थितियों में साधारण मनुष्य की भाँति शंकाकुल है, उसके भीतर संकल्प-विकल्प का द्वन्द्व है और साथ ही अनेक प्रश्न संक्रांत रूप में उभरते हैं जो हृदय को अपने ढंग से प्रतिक्रियायित करते हैं और दोनों की प्रतिक्रियाएँ टकराती हुई उलझ जाती हैं। कवि का शंकाकुल हृदय युधिष्ठिर के माध्यम से और मस्तिष्क भीष्म के माध्यम से व्यक्त हुआ है। प्रबंध में ये दो अलग-अलग पात्र दोनों स्थितियों के संकल्पों-विकल्पों से गुजरते तो कविता का द्वन्द्व, हृदय और मस्तिष्क का संघर्ष कुछ और होता, उसका प्रभाव और भी गहरा और संक्रांत होता, यहाँ तो वह साफ-साफ दो पात्रों में बँट गया है, दोनों ही पात्र विकल्प के परे हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि कुरुक्षेत्र में भाव और चिंतन का गुंफन है। इस विचार प्रधान प्रबंध काव्य में चरित्र, वस्तु, प्रकृति आदि के क्रमिक विकास और वैविध्य का अभाव होना स्वाभाविक है किन्तु चिंतन और संवाद के क्रम में अनेक जीवन संदर्भ उभर कर कविता को एकरस बनाये रखने से बचाते हैं। प्रश्न हो सकता है कि चिंतन मात्र क्या कविता हो सकता है, नहीं किन्तु कुरुक्षेत्र का चिंतन हार्दिक आवेगों, जीवन्त जीवन-संदर्भों और अनेक मार्मिक स्मृति-चित्रों से जुड़ा होने के कारण अपना एक अलग ही प्रभाव छोड़ता है। यों रसवादी पाठकों के लिए धर्मराज का अंतर्मंथन तो स्पष्ट रूप से कविता प्रतीत होगा ही, चिंतनशील भीष्म के भावुक क्षणों का बार-बार घेराव भी उन्हें घेरेगा किन्तु ये सब मिलकर शेष वस्तु को भी काव्य का ही रूप देते हैं। चिन्तन अपनी प्रकृति में गतिशील, संक्रांत और नवीन है, उपदेश या आत्मचिंता के रूप में न होकर संवादात्मक है तथा जीवंत ताजे बिम्बों के जरिये मूर्त हुआ है। इसलिए उसमें लयात्मकता और काव्यात्मकता है। कवि ने धर्मराज और भीष्म की मन:स्थितियों के अनुसार ही सरल जटिल बिम्बों की रचना की है।

आर-38, वाणी विहार,
उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059

vkjrh fy; r fdl <<rk g ej[k]
efUnjk] jkt iklknk e] rg[kkuk e\
nork dgh lMdk ij feVVh rkM jg]
nork feyx [krk e] [kfygkuk eA
QkoM vkj gy jkt n.M cuu dk g
/kljrk lku Jxkj l tkrh g]
nk jkg] le; d jFk dk ?k?kj ukn lquk]
flgklu [kkyh djk fd turk vkrh gA

jk"Vª; pruk d dfo fnudj

– डॉ. सुभाषचन्द्र राय

भूत को अवगाह कर वर्तमान के निर्माण और भविष्य की मंत्रणा वह कवि ही कर सकता है जो 'काल का चारण' हो, जिसमें समय को निचोड़ कर युगधर्म की ऐसी निर्झरणी को प्रवाहित करने की क्षमता हो जिसमें रूढ़ हो चुकी तात्कालिक परिस्थितियों के समूल नाश का 'हुंकार' हो, जिसमें 'परशुराम' सी गहराई, धैर्य, गति और व्यापकता हो। दिनकर युगधर्म के शीर्ष पर बैठे ऐसे ही कवि हैं जिन्होंने ऐश्वर्य रूपी शशि को निचोड़ कर अपने काव्य की मंगल सरिता को जनमानस के बीच प्रवाहित किया।

गांधीवादी दिनकर के लिए 'अहिंसा परमोधर्म: सदैव आदर्श रहा पर अहिंसा का कायराना अंदाज उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। यही कारण है कि उनके काव्य में ओजत्व और पौरुष के स्वर सदैव विराजमान रहे हैं। स्वतंत्रतापूर्व उन्होंने रेणुका, हुंकार, सामधेनी, 'कुरुक्षेत्र' में इसकी भरपूर उपस्थिति दिखलाई है। स्वाधीनता के लिये कभी उन्होंने लिखा था–

"दो आदेश फूँक दूँ शृंगी, उठे प्रभाती राग महान,
तीनों काल ध्वनित हो स्वर में, जागे सुप्त भुवन के प्राण
गत विभूति, भावी की आशा ले युगधर्म पुकार उठे,
सिंहों की घन अंध गुहा में जागृति ही हुंकार उठे।"

स्वतंत्रता उनकी कविता की आवाज है। जो जाति स्वतंत्र नहीं वह जीवित होते हुए भी निष्प्राण है। इसीलिए आजादी पूर्व दिनकर में जातीय स्वतंत्रता का स्वर जहाँ ब्रिटिश हुकूमत से मुक्ति है वहीं स्वातंत्र्योत्तर यह उस मोहक स्वप्न के खंड-खंड हो जाने से उत्पन्न क्रोध की वह गूंज है जिसके लिए कभी उन्होंने गाया था–

"लेना अनल किरीट भाल पर ओ आशिक होने वाले
कालकूट पहले पी लेना, सुधा-बीज बोने वाले।"

लक्ष्मी प्राय: अपने ऐश्वर्य से सरस्वती के आराधकों को लुभाती रही है, किन्तु दिनकर कलम के उन सिपाहियों में से थे जिन्होंने अपने ईमान का सौदा कभी नहीं किया। आजादी के बाद बिहार प्रदेश कांग्रेस पार्टी की ओर से राज्यसभा के लिए निर्वाचित हुए।

कालांतर में नेहरू के अत्यंत निकट आए इसके बावजूद उन्होंने संसद में सरकार की नीतियों का खुलकर विरोध किया। 1962 में चीन आक्रमण के समय इनका विरोध संसद के भीतर और बाहर प्रकट होता रहा। दिनकर परंपरावादी कवि रहे हैं। बुद्ध, अशोक, गांधी, टैगोर जैसे महापुरुषों के विचारों को उन्होंने हृदय से आत्मसात किया था लेकिन भारतीय हुकूमत की नीतियों के कारण भारत की जो दुर्दशा हुई इसके लिए उन्होंने सरकार के प्रति क्षोभ प्रकट किया। कवि को यह एहसास होने लगा कि देश की आजादी खतरे में है। ऐसे में देश का कारुण्य मौन तोड़ना दिनकर ने आपद धर्म माना। परशुराम की प्रतीक्षा उसी की परिणति है। दिनकर ने लिखा–

"उठा खड्ग यह और किसी पर नहीं
स्वयं गांधी, गंगा, गौतम पर ही संकट है।"

'रसवन्ती' और उर्वशी का गीत गाने वाला एक बार फिर से 'काल का चारण' बन गया। दिनकर राजकवि नहीं अपितु राष्ट्रकवि हैं। अतएव जनमानस की भावनाओं को पंक्तिबद्ध करना कवि का धर्म है। दिनकर को पता है कि स्वाभिमानी और स्वावलंबी जाति ही स्वाधीनता को बचा कर रख सकती है। मजबूत राष्ट्र हमेशा सशक्त और सजग रहता है। दिनकर ने लिखा–

"जो पुरुष भूल शायक, कुठार को, असि को,
पूजता मात्र चिंतन, विचार को, मसि को,
सत्य का नहीं बहुमान किया करता है
केवल सपनों का ध्यान किया करता है।"

दिनकर ने मान-अपमान का गरल सदैव एक भाव से पिया और काव्य-अमृत का मंथन किया। सत्ता-लोलुपता और राजनीतिक नेतृत्व की निकटता के आरोपों ने हमेशा से ही उन्हें आहत किया किन्तु सरकार का नुमाइंदा होते हुए भी अपने विरोध को विराम नहीं होने दिया। एक बार दिनकर ने नेहरू से कहा था–

"जब-जब राजनीति लड़खड़ायी है
साहित्य ने उसे संभाला है"

यह सच है कि भारत सदैव अहिंसावादी देश रहा है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' और 'यत्र विश्वं भवत्येक नीड़म' का विश्व-सन्देश देने वाला रहा है। किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि संकट के समय हम शत्रुओं का कठोरतापूर्वक दमन करते रहे हैं। "अहिंसावादी का युद्ध गीत" में उन्होंने चीनी आक्रमण की प्रतिक्रिया में लिखा–

"हाय मैं लिखूं युद्ध के गीत
बंधु हो रही बड़ी अनरीत
कंठ उर अंतर के विपरीत
देशवासी जागो गांधी की
रक्षा करने को गांधी से भागो।"

इसी कविता में आगे कवि लिखते हैं–

"गिराओ बम, गोली दागो,
गांधी की रक्षा करने को गांधी से भागो।"

देश की संप्रभुता, उसकी अस्मिता एवं मान-मर्यादा को सर्वाधिक भय ऐसे चरित्र वाले नेतृत्व से है जो देवता सदृश दिखते हैं किन्तु कलम का मूल्य तो उन्होंने पहले ही तय कर लिया है। जात-पात और वंशवाद ने जैसे ही गुण का रास्ता अवरुद्ध किया देश के पतन का मार्ग प्रशस्त हुआ क्योंकि तब सत्य जानकर भी भीरूता का दामन थाम आम जन आँखें बंद कर लेता है। भारत अपने इसी भीतरघात से हारता है–

"घातक है जो देवता सदृश दिखता है
लेकिन कमरे में गलत हुक्म लिखता है
जिस पापी को गुण नहीं गोत्र प्यारा है,
समझो, उसने ही हमें यहाँ मारा है।"

अपनी ही धरा की प्यास न बुझा सकने वाले किन्तु विश्व-नेतृत्व के गुरुपद के प्यासे ऐसे ही रंगे हुए संतों की असफलता के कलंक को धोने का प्रयास है। 1962 का चीनी युद्ध जिसमें हिमालय की धवलता को रक्त रंजित करते हुए शहीदों के गर्म लहू बह निकली थी। युद्ध की आग फसलों को जला देती है। वह गरीब की झोपड़ी और अमीरों की अट्टालिकाओं में अंतर नहीं कर सकती। इसीलिए गीता के कर्म-योग का आह्वान कवि अमर शहीदों के माध्यम से करता है और देश के सभी वर्गों से चाहे वो सेठ हों या साहूकार हों या राजनेता हों सबको देशहित में खड़ा होने की ओर सहयोग करने की अपील करता है। दिनकर ने सैनिकों के जरिये इन सब तक अपना संदेश इन पंक्तियों में प्रेषित किया है–

"हम पर पापों का बोझ न डालें,
कह दो सब से, अपना दायित्व संभाले।"

यह शीर्ष नेतृत्व की असफलता का कितना बड़ा उदाहरण था कि युद्ध की इस विभीषिका में जब हमारे गौरव और अस्मिता को बचाये रखने वाले जवानों की बंदूकें लगातार गोलियाँ बरसाती रहनी चाहिए, जब उनके खून में खेतों में उगाये अनाजों के बालियों की ऊर्जा शक्ति बनकर दौड़नी चाहिए, खेत उदास हैं और कारखानें बंद क्योंकि आज हड़ताल है। दिनकर यह नहीं देख पायें–

"सीले जबान, चुपचाप काम पर जाएँ,
हम यहाँ रक्त, वे घर में स्वेद बहायें।"

यह परिस्थितियों की मांग थी केवल दिनकर तक ही सीमित कैसे रहती? तभी तो उनकी ही भांति आगे चलकर रामावतार त्यागी ने देश में चल रहे मील-मजदूरों के हड़ताल एवं सामान्य नागरिकों पर प्रहार करते हुए लिखा–

"जुलूसों और नारों से
प्रदर्शन या प्रचारों से
न कोई देश जीता है,
सभायें बंद कर, चल खेत में या कारखाने में।"

दिनकर स्पष्टवादी, निर्भीक और देशभक्त कवि हैं। जनता की भावनाओं को सहज ही कविता की भाषा में प्रेषित करने में उन्हें महारत हासिल है। अपने देश के महापुरुषों पर उन्हें गर्व है। इनका मानना है कि अर्जुन, भीम, चाणक्य, चन्द्रगुप्त और अशोक के इस देश को भला कौन समर में पराजित कर सकता है? भारत जब भी संकल्प के साथ शत्रु के समक्ष खड़ा हुआ है दुश्मन पीछे हटे हैं। दिनकर का विचार है कि–

"जो अड़े शेर उस नर से डर जाता है
है विदित व्याघ्र को व्याघ्र नहीं खाता है।"

भारत हमेशा से अपसी फूट और स्वार्थ की राजनीति के कारण कमजोर हुआ है। स्वाधीन भारत में पहले की तरह आज भी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक चुनौतियां मुंह बाएँ खड़ी हैं। राजनीति राष्ट्रनीति से हटकर सत्ता केन्द्रित हो गयी है। दृढ़ शासन के अभाव में राष्ट्रीय एकता खंडित हो रही है। चहुँओर हर स्तर पर लूट मची हुई है। दिनकर ने लिखा–

"रिपु नहीं, यही अन्याय हमें मारेगा,
अपने घर में ही फिर स्वेदश हारेगा।"

दिनकर राष्ट्रीय आन्दोलन से निकले हुए कवि थे उन्होंने अपना जीवन रामवृक्ष बेनीपुरी, गंगा शरण सिंह, जयप्रकाश नारायण, काशीप्रसाद जायसवाल और राहुल सांकृत्यायन के साहचर्य में गुजारा था। संसद सदस्य बनने के उपरांत देश के कई बड़े नेताओं से उनके संपर्क हुए। अपनी 'एनार्की' कविता में उन्होंने लोहिया के प्रति उद्‌गार व्यक्त करते हुए लिखा–

"तब कहो लोहिया महान है
एक ही तो वीर यहाँ सीना रहा तान है।"

दरअसल शांति और धर्म की रक्षा, न्याय और स्वतंत्रता की रक्षा और अस्मिता के रक्षण का बल प्रतिभा के पुरुषार्थ में तथा तलवार की धार में होती है। शंकर का तीसरा नेत्र दो नेत्रों के समान कल्याणकारी है क्योंकि वह उस ध्वंस को जन्म देता है जिससे 'निर्माण' का आरंभ होता है–

"ललकार रहा भारत को स्वयं मरण है
हम जीतेंगे यह समर, हमारा प्रण है।"

हिंदी भवन, विश्व भारती,
शांति निकेतन (बोलपुर)
वीरभूम (पश्चिम बंगाल)

nork 'kk;n njokt ij vk x; g

– *अरविन्द कुमार सिंह*

मेरी एक कविता की पंक्ति है–
स्मृतियों की फिर आयी आहट
कभी वेदना कभी मुस्कराहट।

और महान कवि जयशंकर प्रसाद जी ने अपने काव्य आँसू में लिखा है–

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति–सी छायी
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आयी

हमारे जीवन में स्मृति की महती भूमिका है। पूज्य दिनकर जी की 'पुरुषार्थ' नामक कविता उनके अंतिम काव्य संग्रह 'हारे को हरिनाम' में संकलित है, यह संपूर्ण कविता स्मृति के संदर्भ में है, उसकी कुछ पंक्तियाँ हैं–

हमारे भीतर
स्मृतियों का एक समुद्र है
जिसे मन कहते है।
अपने चिन्तन में हम स्वाधीन नहीं
स्मृतियों के गुलाम है
स्मृतियाँ जैसे चलाती है
हम वैसे ही चलते है
कभी हमें आसक्ति हो जाती है
और कभी हम क्रोध से जलते है।......
पुरुषार्थ है पल–पल
डोलते हुए मन को निस्पंद करना।
मन का महल जब साफ होगा
तुम अपने आप के
दर्शन पाओगे।

कभी कोई स्मृति इस तरह सें स्मरणीय होती है कि स्मृति पटल पर सदैव बनी रहती है। लगता है ज्यादा वक्त नहीं गुजरा है। अभी कल की ही बात हो। पूनम दी की शादी 28 जनवरी 1974 दिल्ली मे बेतहासा ठंड। प्रायः रोज ही शादी के लिए खरीदारी होती। एक दिन दिनकर जी के साथ हमलोग चाँदनी चौक गए थे। वहाँ उन्होंने मुझे दो स्वेटर खरीदकर दिए। मेरे नाप से कुछ बड़ा ताकि बढ़ती हुई उम्र या वक्त में अगले वर्ष और अगले के अगले वर्ष भी काम आ जाए। एक पीले रंग का और दूसरा नीले रंग का।

'शादी के दिन मुझे और पूनम दी दोनों बिलकुल अल्ल सुबह यमुना जी में डुबकी लगाकर नहाना था। यमुना जी का जल बेहद सर्द। फिर विधिपूर्वक भिखौनी एक विधान होता है जिसमें जिसका, यज्ञोपवीत होता है वह अपने परिचितों से भीख माँगता है। इस विधि में परिवार के लोगों और पूज्य दिनकर जी के मित्रों के यहाँ भी ले जाया गया। श्री ललित नारायण मिश्रा, श्री श्यामनंदन मिश्रा और श्री भागवत झा आजाद के यहाँ। पूनम दी का विवाह श्री सीताराम केसरी जी के पंडारा रोड स्थित निवास से हुआ। केसरी जी ने प्रायः 15–20 दिन के लिए शादी के लिए घर दे दिया। केसरी जी ने बताया कि मेरी पत्नी ने दिनकर जी को बहुत धन्यवाद दिया कि केसरी जी कभी गाँव जाने का वक्त नहीं निकाल पाते थे, कम से कम इसी बहाने इतनी लम्बी अवधि के लिए गाँव में रहे।

'मुझे बाबा के साथ अकेले यात्रा करने का दो बार अवसर मिला, या शायद ज्यादा भी। एक बार जब उन्होंने मेरा दाखिला दिल्ली के अरविन्दो मार्ग स्थित, मदर इंटरनेशनल में करवाया था। मैं और बाबा दोनों तूफान मेल से, या भरसक दिल्ली एक्सप्रेस से प्रथम श्रेणी से दिल्ली गये थे। रास्ते में गंगाजी आयीं तो उन्होंने दो सिक्के निकाले, एक सिक्का मुझे दिया और दूसरा स्वयं गंगा जी मे प्रवाहित किया। उनकी पाटलिपुत्र की गंगा कि कुछ पंक्तियाँ है–

अस्तु, आज गोधूलि–लग्न में गंगे! मन्द–मन्द बहना,
गाँवों नगरों के समीप चल कलकल स्वर से यह कहना,
'खण्डहर में सोयी लक्ष्मी का फिर कब रूप सजाओगे?
भग्न–मंदिर में कब पूजा का शंख बजाओगे?'

मैं दिल्ली में मदर इंटरनेशनल स्कूल बस से जाता। बहुत सर्दी होती। माँ और बहनों की बहुत याद आती। कभी–कभी अकेले किसी कमरे में बंद होकर चुपचाप रो लेता। मुझे बहुत होम सिकनेस थी।

हिन्दी के बहुत ही बड़े लेखक और बाद में सरस्वती के संपादक श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी ने लिखा है– अपने जीवन के 81 वर्ष में श्रीधर पाठक, महावीर प्रसाद द्विवेदी, चंद्रधर गुलेरी, रामकृष्ण मिश्र से लेकर अब तक के अनेक छोटे बड़े कवियों से हमारा परिचय हुआ। कितनों से घनिष्ठता भी हुई, किन्तु इस लम्बे अंतराल में हमें तीन ही ऐसे व्यक्ति मिले जो कवि थे ही नहीं, कवि मालूम भी होते थे। तीनों ही पौरुष की प्रतिमूर्ति थे। वे थे निराला, नवीन और दिनकर। ईश्वर ने उन्हें कवित्व के साथ–साथ शरीर, सम्पत्ति और प्रभावशाली वाणी भी दी थी। भेद यह था कि निराला अव्यावहारिक थे। स्वभाव से 'अव्यवस्थित' थे। वह उस टाइप के नमूने थे जिसे मनोविज्ञान में 'अनस्टेबल' unstable कहते हैं। नवीन अधिक व्यवहारिक थे किन्तु राजनीति में पड़ जाने के कारण अपनी ईश्वरदत्त प्रतिभा के प्रति पूरा न्याय नहीं कर सके और उनके कवित्व का परिचय अपेक्षाकृत कम लोगों को ही मिला। दिनकर में व्यवहारिकता, संयम और शिष्टता का ऐसा मधुर समन्वय था कि वे सहज ही लोगों को आकर्षित और प्रभावित कर लेते थे। वे स्थिरमति थे और कविता के प्रति उनमें एकांत निष्ठा थी। इसी निष्ठा के कारण वे हिन्दी को अपनी प्रचुर कृतियों से वैभवशाली बना सके। उनकी प्रत्येक काव्यकृति प्रकाशित होते ही चर्चा का विषय बन जाती थी और उनका सर्वत्र आदर होता था।'

'जिन लोगों ने दिनकर जी को गौर से पढ़ा है वे उनकी सर्वथा मौलिक सोच और शैली से प्रभावित रहे पंडित माखन लाल चतुर्वेदी ने लिखा था–'दिनकर ने मैथिलीशरण के आदर्श को, प्रसाद के सपनों में तुलसीदास की सरलता से लिखने का प्रयास किया है।'

स्वर्गीय पंडित किशोरीदास वाजपेयी ने लिखा है–'राष्ट्रकवि दिनकर अपने ढंग के एक ही थे। मुझे कोई अन्य कवि साहित्यकार बहुत ढूँढ़ने पर भी ऐसा दिखायी

नहीं देता जिसका नाम उनके नाम के साथ लिया जा सके। तुलसीदास के साथ सूरदास, पंत के साथ निराला, हरिऔध के साथ मैथिलीशरण गुप्त का नाम स्वत: आ जाता है, परन्तु दिनकर के साथ रखने के लिए कोई नाम नहीं मिलता।'

यह लिखने का अर्थ यह कतई नहीं पर वर्णित कवि लेखकों के प्रति मेरे मन में सम्मान नहीं है। मैथिलीशरण, निराला जी, नवीन जी, पंत जी इन सभी का अपार सम्मान तो दिनकर जी भी करते थे। संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ में इन सभी पर दिनकर जी ने बहुत ही आदर भाव से लेख लिखे हैं। यह आदरणीय को आदर देने का भाव मुझे दिनकर जी की सोच के द्वारा मिला है।

दिल्ली की सड़कों पर छड़ी लेकर बहुत तेज कदमों से वे चलते। कई बार मैं उनके साथ होता। एक आधा बार ऐसा भी हुआ कि देखा वे किनारे फुटपाथ पर बैठ गये। दरअसल अचानक ही उन्हें एंजाईना का दर्द हो जाता। दवा की एक शीशी उनके पास होती। वे एक दो गोलियाँ निकाल कर खाते और फिर थोडी देर सुस्ता कर आगे बढ़ते। 5, सफदरजंग लेन की बड़ी सी कोठी थी। अंग्रेजों के जमाने की बनी हुई। उसमें कुछ भी ऐसा नहीं था जिसमें कुछ साज सज्जा हो। चार चौकियों को मिलाकर बनाया गया एक फर्श जिसपर एक मसनद के सहारे उल्टे पड़कर दिनकर जी लिखा करते थे। मसनद उनकी छाती के नीचे होता। उस समय आज की तरह चश्मे में हलके नहीं होते थे। ज्यादा पावर यानि ज्यादा बड़ा चश्मा। और दरवाजे पर जरा-सी आहट हो तो वे मुड़कर देखते की कौन है। चश्मे से देखती हुई उनकी निगाहें मेरी स्मृति में सदैव बनी रहती है।

बचपन की कुछ यादें और हैं। एक बार राजेन्द्र नगर वाले घर में उनका रक्तचाप काफी बढ़ गया था। और उन्हीं दिनों उनको पक्षाघात भी हुआ था। मेरी माँ और बहनें बहुत चिंतित थीं। पक्षाघात दिल्ली में हुआ। प्राय: एक माह बाद वह पटना आए। सुप्रसिद्ध सांसद और हिन्दी सेवी प्रकाशवीर शास्त्री ने उन्हें किसी वैद्य से जो मेरठ में रहते थे उनसे रोग दिखाने की सलाह दी। वैद्य जी ने कुछ जड़ी-बूटियों का लेप दिया था जिससे उनकी बीमारी बहुत जल्दी चली गयी। जब बाबा पटना आए तो उन्होंने बाल मुड़ा रखा था। इससे वे कुछ ज्यादा बीमार दिखते थे। चेहरे पर होंठों के पास थोड़ी-सी वक्रता आ गयी थी, जिससे वे बीमार और थके से लग रहे थे। मेरी बहनों और माँ की आँखों मे आँसू आ गये। बाबा ने कहा रोग तो भरसक चला गया पर चिह्न छोड़ गया।

जीवन में बड़ी से बड़ी चुनौतियों को स्वीकार करने वाले कवि को भी रोग ने जकड़ लिया। किन्तु इलाज और अपने अदम्य साहस से वे इस बीमारी से निकल गये।

उन्होंने बताया कि पूनम दी के विवाह में कई बिना नाम के लिफाफे मिले जिनमें रुपये रखे थे। किसने ये रुपये दिए आज तक भी पता नहीं चल सका है। शायद बेनामी इसलिए कि यदि दिनकर जी को पता चल जाता कि रुपये किसने दिये तो वे यह रुपये नहीं लेते।

श्री मुरारी लाल त्यागी ने बताया कि जब दिनकर जी 'उर्वशी' लिख रहे थे, तब श्री त्यागी उनसे मिलने के लिए उनके साउथ एवेन्यू स्थित निवास स्थान में गये थे। दिनकर जी ने उन्हें बहुत स्नेह देते थे। दिनकर जी ने उन्हें हिदायत दी कि आप बाहर बैठें और यदि कोई मिलने आए तो मुझे बाधित नहीं करना, कह देना मैं अभी लिख रहा हूँ। इसके आधा घन्टे बाद ही अचानक पंडित नेहरू की गाड़ी आकर रुकी पंडित जी घर में प्रवेश करते ही बोले -'कहाँ हैं महाकवि? कहाँ हैं महाकवि' बोलते हुए। त्यागी जी के सामने बड़ा धर्म संकट। उन्होंने कहा-दिनकर जी कमरे मे बंद होकर लिख रहे हैं और उन्होंने कहा है कि कोई आए तो कह देना अभी लिख रहा हूँ, पर आप यदि कहें तो उन्हें सूचना दे दूँ। पंडित जी बोले -अरे उन्हें लिखने दो मैं तो ऐसे ही मिलने आ गया था।' यह वो जमाना था जब कवि और लेखक की अपार प्रतिष्ठा थी। भारतीय संसद में मैथिलीशरण गुप्त, बनारसी दास चतुर्वेदी, पृथ्वी राज कपूर, बालकृष्ण शर्मा नवीन, हरेन्द्र नाथ चटोपाध्याय, मामा वरेरकर, दिनकर जी और बाद में बच्चन जी जैसे कवि लेखक और कला क्षेत्र के लोगों से संसद सुशोभित था।

उनकी यादें बनी रहे यही ईश से कामना है, ताकि हम अँधेर से बचे रहें।

बेचैन हैं हवाएँ, सब ओर बेकली है
कोई नहीं बताता, किश्ती किधर चली है?
मँझधार है, भँवर है या पास है किनारा?
यह नाश आ रहा या सौभाग्य का किनारा?
आकाश पर अनल से लिख दे अदृष्ट मेरा,
भगवान उस तरी को भरमा न दे अँधेरा।
तम-वेधिनी किरण का संधान माँगता हूँ।
ध्रुव की कठिन घड़ी में पहचान माँगता हूँ।

उस पहचान की तलाश प्रत्येक व्यक्ति करता है, यह तलाश कभी पूरी नहीं होती, सदैव रहती है। और मुझे अनुभूति होती है, अनुभूति और आभास उनकी कविता नीरवता में -

रात ने चुप्पी साध ली है।
सपने शान्ति में समा गये हैं।
अन्त:कपाट आप-से आप
खुलने लगा है
देवता शायद दरवाजे पर आ गये हैं।

- दिनकर भवन
आर्य कुमार रोड, पटना-4

समर शेष है, जनगंगा को खुल कर लहराने दो,
शिखरों को डूबने और मुकुटों को बह जाने दो।
पथरीली, ऊँची जमीन है ? तो उसको तोड़ेंगे।
समतल पीटे बिना समर की भूमि नहीं छोड़ेंगे।
समर शेष है, चलो ज्योतियों के बरसाते तीर,
खण्ड-खण्ड हो गिरे विषमता की काली जंजीर।

-दिनकर

मर्त्य मानव की
विजय का तूर्य हूँ मैं,
उर्वशी! अपने
समय का सूर्य हूँ मैं।

रामधारी सिंह दिनकर

ekjh'kl %fgUnh egklkxj
e NkVk fgUnLrku

– डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर'

मॉरीशस वह देश है, जिसका कोई भी हिस्सा समुद्र से पन्द्रह मील से ज्यादा दूर नहीं है। मॉरीशस वह देश है, जहाँ कि राजभाषा अंग्रेजी, मगर संस्कृति की भाषा फ्रेंच है। मॉरीशस वह देश है, जहाँ के अंग्रेज अपने नौकरों से फ्रेंच में बोलते हैं। मॉरीशस वह देश है जहाँ की जनसंख्या के 67 प्रतिशत लोग भारतीय खानदान के हैं तथा जहाँ 53 प्रतिशत लोग हिन्दू है। मॉरीशस वह देश है जहाँ के आर्य समाज की स्थापना सिक्ख सिपाहियों के सहयोग से की गयी थी। मॉरीशस वह देश है, जिसकी राजधानी पोर्ट लुईस की गलियों के नाम कलकत्ता, मद्रास, हैदराबाद और बम्बई है तथा जिसके एक पूरे मोहल्ले का नाम काशी है। मॉरीशस वह देश है जहाँ बनारस भी है, गोकुल भी है और ब्रह्म स्थान भी। मॉरीशस वह देश है, जहाँ माध्यमिक स्कूलों को कॉलेज कहने का रिवाज है। मॉरीशस वह देश है जहाँ पुरोहित सरकार से वेतन पाते है। मॉरीशस वह देश है, जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तो हैं, मगर शूद्र कोई नहीं है।

विवेकानन्द का संदेश और मॉरीशस में हिन्दू समाज

मॉरीशस में हिन्दू कोई चार लाख हैं। उनमें ब्राह्मणों और क्षत्रियों की सम्मिलित संख्या लगभग चार हजार है। बाकी जो भी लोग हैं, अपने को वैश्य कहते हैं। इस मामले में मॉरीशस के हिन्दुओं ने जो सुधार किया है वह भारत के हिन्दुओं के लिए भी अनुकरणीय है। अमरीका से लौटने पर स्वामी विवेकानंद ने मद्रास मे कहा था, ''हिन्दुओं, जात-पांत का झगड़ा तुम्हें खा जायेगा। हर जाति के लोग सभा में एकत्र होकर ऐलान कर दो कि तुम ब्राह्मण हो। भारत केवल ब्राह्मणों का देश हो जाये, इसमें बुराई की बात क्या है? लेकिन सच्चा ब्राह्मण बनने को तुम सब लोगों को संस्कृत भी अवश्य पढ़नी चाहिए।'' मॉरीशस में यह उपदेश शायद नहीं पहुँचा था, मगर वहाँ के हिन्दुओं ने, अपने आप, बहुत दूर तक स्वामी जी के विचारों को कार्य का रूप दे दिया है। संस्कृत सब लोग तो नहीं पढ़ते हैं, किन्तु ब्राह्मण महासभा की ओर से संस्कृत की कुछ थोड़ी पढ़ाई का वहाँ प्रबंध है और भारतीय विद्या-भवन की संस्कृत की परीक्षाएं मारीशस में भी चलती है।

चूंकि मॉरीशस के हिन्दुओं में से अधिकांश बिहार और उत्तर प्रदेश के लोग हैं, इसलिए हिन्दी का मॉरीशस में व्यापक प्रचार है। मॉरीशस की हिन्दी प्रचारिणी सभा जीवित व जाग्रत संस्था है। उसके प्रधान मॉरीशस के लोकप्रिय जननायक श्री जयनारायण राय और उसके महामंत्री श्री सूरज मंगर भगत हैं। भगत परिवार हिन्दी का अनन्य सेवक है। शमा-महफिल एक है, यह घर का घर परवाना है। श्री गिरधारी भगत जी इसी परिवार के सदस्य थे, जिन्होंने हिन्दी प्रचारिणी सभा को अपना पचास हजार का सर्वस्व दान कर दिया था। इसी परिवार ने श्री ब्रजेन्द्र मधुकर को जन्म दिया है, जो हिन्दी के अच्छे गीतकार हैं और जिनकी कई पुस्तकें प्रकाश में आ चुकी है। स्वर्गीय श्री लक्ष्मण देवीदीन उर्फ नन्दन ठाकुर एक दूसरे महापुरुष हुए हैं, जो पेशे से हज्जाम थे, किन्तु जिन्होंने अपना सर्वस्व हिन्दी प्रचारिणी सभा को दान कर दिया था। सभा के तत्वाधान में 182 प्राथमिक स्कूल और कोई बारह माध्यमिक स्कूल चलते हैं। सभा की सारी जरूरतें चन्दे से पूरी होती है और चन्दा उगाहने का काम जयनारायण बाबू ने इस जोर से किया है कि मॉरीशस में हिन्दी के वे 'महाभिक्षु' माने जाते हैं।

मॉरीशस की राजभाषा अंग्रेजी, किन्तु संस्कृति की भाषा फ्रेंच है। मगर जनता वहां क्रेयोल बोलती है। क्रेयोल का फ्रेंच से वही संबंध है, जो संबंध भोजपुरी का हिन्दी से है और क्रेयोल के बाद मॉरीशस की दूसरी जनभाषा भोजपुरी को ही मानना पड़ेगा। प्रायः सभी भारतीय भोजपुरी बोलते अथवा उसे समझ लेते हैं। यहां तक कि भारतीयों के पड़ोस में रहने वाले चीनी भी भोजपुरी बखूबी बोल लेते हैं। किन्तु मॉरीशस की भोजपुरी, शाहाबाद या सारण की भोजपुरी नहीं है। उसमें फ्रेंच के इतने संज्ञापद घुस गए हैं कि आपको बार-बार शब्दों के अर्थ पूछने पड़ेंगे।

हिन्दी के अलावा मॉरीशस में मराठी, तेलुगू, तमिल, उर्दू और गुजराती का भी प्रचार है। मॉरीशस के मुसलमानों में से अधिकांश गुजरात के हैं। राजनीति की दृष्टि से भारत और पाकिस्तान के द्वन्द्व से उनके भीतर चाहे जो भी दुविधा पैदा होती हो, मगर अपनी मातृभाषा गुजराती के लिए उनके भीतर अच्छा उत्साह है। जैसे भारत में हिन्दी को अन्तरप्रान्तीय भाषा बनाने का आंदोलन अहिन्दी भाषियों ने उठाया, उसी प्रकार मॉरीशस में भी हिन्दी प्रचारक का अधिक कार्य अहिन्दी भाषियों ने किया है। सन् 1935 ई. के आस-पास मॉरीशस से तीन हिन्दी साप्ताहिक निकलते थे, जिनमें से एक के सम्पादक श्री नरसिंह दास थे, जिनकी मातृभाषा तेलुगू थी, दूसरे के सम्पादक मराठी भाषी पं. आत्मा राम और तीसरे के बंगला भाषी पण्डित काशीनाथ थे। मैं जब मॉरीशस में था, मित्रों ने मेरा परिचय श्री रमा स्वामी तुलसी से यह कह कर कराया था कि तुलसी जी की मातृभाषा तेलुगू है, लेकिन वे स्कूल में हिन्दी पढ़ाते हैं तथा रेडियो पर तेलुगू का कार्यक्रम संभालते हैं। अभी-अभी यह सुन कर मुझे गम्भीर शोक हुआ कि ऐसे राष्ट्रीय व्यक्ति का अभी हाल में अचानक देहावसान हो गया।

हिन्दी, तमिल, तेलुगू, मराठी और उर्दू की पढ़ाई पर मॉरीशस के अभारतीय लोग हंसते हैं, किंतु भारतीय खानदान के लोग अपनी भाषाओं को छोड़ने को तैयार नहीं हैं। यह अत्यंत शुभ लक्षण है। खास कर हिन्दी की महिमा सभी भारतीय समझते हैं। हिन्दी और भोजपुरी मॉरीशस निवासी भारतीयों को एक सूत्र में बांधे हुए है और मॉरीशस को भारत के साथ बांधने का काम हिन्दी ही कर रही है। मॉरीशस के वर्तमान मुख्यमंत्री सर शिवसागर राम गुलाम भोजपुरी भाषी हैं। सत्तारूढ़ होने के बाद उन्होंने सरकारी स्तर पर भी भारतीय भाषाओं का प्रवेश प्राथमिक वर्गों में करा दिया है। किन्तु यह अत्यंत आवश्यक प्रतीत होता है कि माध्यमिक स्कूलों में भी हिन्दी का प्रवेश करा दिया जाये। मॉरीशस में हिन्दू संस्कृति की रक्षा का काम तुलसीदासजी की रामायण ने किया है। यदि माध्यमिक स्कूलों में हिन्दी की पढ़ाई शुरू हो जाये, तो भारतीय संस्कृति का गढ़ मॉरीशस में अभेद्य हो जायेगा।

हब्सी दासों का विद्रोह और
भारतीय मजदूरों का देशान्तरण

मॉरीशस के हिन्दू और मुसलमान अपने-अपने धर्मों पर कठोरता से आस्था रखने वाले हैं। मॉरीशस पर जब यूरोप वालों ने अधिकार किया, तब मालिकों के काम अफ्रीका और मेडागास्कर से लाये गये हब्सी दास करते थे। जब दास प्रथा का अंत हो गया, हब्सियों में विद्रोह की भावना आ गयी और उन्होंने खेतों में काम करने से इंकार कर दिया। इसी स्थिति को संभालने के लिए भारत से लोग गए।

fnudj

– प्रभाकर माचवे

आधुनिक हिंदी कविता के अंतिम ओजस्वी और आशावादी 'दिनकर' जी का नाम सबसे पहले मैंने सन 1935 में खंडवा में माखनलाल जी चतुर्वेदी के यहाँ सुना। रामवृक्ष बेनीपुरी उस समय 'कर्मवीर' के सह संपादक थे और उन्होंने मेरी प्रारंभिक रचनाएँ-कविताएँ, रेखाचित्र, कहानियाँ, 'कर्मवीर' साप्ताहिक में छापी थीं। तब 'रेणुका' की भूमिका 'दादा' (एक भारतीय आत्मा) ने लिखी थी, जिसके कारण दिनकर जी साहित्यक्षेत्र में आगे आये। खेद है कि 'रेणुका' के दूसरे संस्करण में वह भूमिका हटा दी गई। तब 'दिनकर' जी की कविताएँ बिहार के पत्रों के अलावा 'विशाल भारत' में बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने छापीं। और 'कर्मवीर' में गत महायुद्ध के दौरान अबीसिनिया के युद्ध पर छपी उनकी प्रगतिशील कविता की पंक्तियाँ मुझे याद हैं जिसका आरंभ हुआ था 'मेघरंध्र में बजी रागिणी' से और 'ईसाई दुनिया ने बर्छी तानी' उसमें एक सटीक पंक्ति थी। दिनकर जी ने लेनिन की और रूस की क्रांति की प्रशंसा में अपनी आरंभिक कविताओं में लिखा- शायद 'हुंकार' में वह कविता है।

क्रांति की 'झन झन झन झन, झनन झनन' अगवानी बंदी भारत माता की बेड़ियों की झनकार में सुनने वाले दिनकर हिंदी के राष्ट्रीय कवियों की परंपरा में आते थे, जिनमें से मैथिलीशरण गुप्त, 'नवीन' जी, सुभद्राकुमारी पहले ही स्वर्गवासी हो गये। दिनकर जी से प्रत्यक्ष परिचय का लाभ इलाहाबाद में सन् 1950 में जब साहित्यकार संसद के तत्वाधान में रसूलाबाद में महादेवी जी ने उनके सम्मान में उत्सव किया था और 'कुरुक्षेत्र' पर पुरस्कार दिया था, तब मिला। इससे पहले मैं 'कर्मवीर' में कृष्णायन के साथ-साथ 'कुरुक्षेत्र' की समीक्षा लिख चुका था। यह लेख मेरी एक पुस्तक में सन् 1952 में प्रकाशित हुआ है।

बाद में सन् 1954 में साहित्य अकादमी दिल्ली में आ जाने पर संसद-सदस्य के नाते दिनकर जी से अक्सर भेंट होती थी-मामा वरेरकर के घर पर, मैथिलीशरण जी के निवास-स्थान पर बनारसीदास जी के यहाँ या सभा-सम्मेलनों में। सन् 1957 में जब वे चीन गये, या सन् 1961 में सोवियत रूस या बाद में मारीशस में उनके संस्मरण में, उनके श्रीमुख से सुनने का अवसर मिलता था। वे ओजस्वी वक्ता थे। पं. जवाहरलाल नेहरू जब 70 वर्ष के हुए उन्होंने एक काव्य-संकलन 'शांतिदूत नेहरू' प्रकाशित कराया जिसमें मैंने उन्हें अनुवादित कार्य से सहयोग दिया था। बाद में नेहरू के स्वर्गारोहण के बाद दिनकर जी ने 'लोकदेव नेहरू' पुस्तक लिखी।

दिनकर जी नई पीढ़ी की रचनाएँ पढ़ते ही नहीं थे; उन्हें प्रोत्साहन भी देते थे। उनकी सुनते भी थे, वाद-विवाद भी करते थे। नवीनतम पुस्तकें पढ़ने का उन्हें चाव था। साहित्य अकादमी के लिए उन्होंने रवींद्रनाथ ठाकुर की कविताओं का अनुवाद किया, अरविंद घोष पर उन्होंने एक सेमिनार के लिए विशेष निबंध लिखा। 'वॉइस ऑफ हिमालयाज' उनकी कविताओं का एक अंग्रेजी अनुवाद छपा है- कुछ अनुवाद उसमें मेरे किए हुए हैं, कुछ आर. के. कपूर के और कुछ श्रीमती कमला रत्ना के। उनके निबंधों-विचारों की एक और पुस्तक अंग्रेजी में छपी है जिसमें कुछ अनुवाद श्रीमती कपिला वात्स्यायन के भी हैं। इस्पाहानी में उनकी कविताओं का अनुवाद श्रीमती रत्नम ने किया। रूसी में श्रीमती स्वेतलाना त्रबिनकोवा ने। वैसे हिंदी की कई पत्र-पत्रिकाओं ने विशेषांक निकाले थे जैसे 'अध्येय' और 'गंतव्य' आदि ने। पद्मा सचदेव की डोगरी कविताओं का जो हिंदी अनुवाद अकादमी ने हाल में प्रकाशित किया है, उसकी भूमिका दिनकर जी द्वारा लिखी गई है। सारे हिंदी संसार में, और बाहर भी, उनके प्रशंसक हजारों में हैं। सैकड़ों नये लेखकों-पत्रकारों को उन्होंने प्रेरणा दी और जीवन में बड़ी सहायता की। 'कोयला और कवित्व', 'आत्मा की आँखें' उनकी आधुनिकतावादी रचनाएँ हैं।

ऐसे कवि के अंतिम दिन अध्यात्मोन्मुख हो गये थे। 'हारे को हरिनाम' इसका उदाहरण है। अरविंद, रमण महर्षि, माता आनंदमयी, शारदामाता (यह उनका अंतिम प्रकाशित लेख था) आदि पर रचनाएँ हैं। 'उर्वशी' और 'परशुराम की प्रतीक्षा' पर काफी वाद-विवाद हिंदी में मचा। उन्हें यह आभास था कि वे न रवींद्र बन सके न इकबाल। हिंदी में सम्मान, सर्वश्रेष्ठ पुरस्कारादि मिलने पर भी वे अंतिम कवि सम्मेलन (सप्रू हाउस 21 अप्रैल रात्रि) को कह गये-

कागज कितना भी चिकना लगाओ
जिंदगी की किताब खाली की खाली रह जाती है।

^^<hyh djk /ku"k dh Mkjh]
rjdl dk dl [kkyk
fdlu dgk] ;x dh oyk x;h
'kkfr l ckykA**

; kn tk Hkyk,
u Hky

– *डॉ. निशा राय*

बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भागलपुर वाले अधिवेशन में दिनकर जी ने '*हिमालय*' को प्रथम बार पढ़ा था। सारे भवन को अतीत की मस्ती में मस्त कर दिया था। उनकी हुंकार से धरती कांप उठी थी, भागलपुर से उन्हें अत्यन्त लगाव था। भागलपुर विश्वविद्यालय अपने आपको गौरवान्वित महसूस करता है कि ऐसे राष्ट्रकवि यहाँ कुलपति रहे। छेदीलमान, प्रभापुंज, जाज्वल्यमान ज्योतिपिण्ड का नाम '*दिनकर*' है। दिनकर भारत की राष्ट्रीय साधना, बिहार की प्रान्तीय भावना और भागलपुर की अंगीय उतेजना का मूर्तिमान विग्रह है। समय की करवट और उसकी अंगड़ाइयों का भूचाल और बवंडर के ख्वाबों से भरी हुई तरूणाई का नाम दिनकर है। वह दहकते हुए अंगारों पर निर्भय होकर चलना, चढ़ाना जानता हैं उनकी वाणी में हमारा सुनहला अतीत फिर से जी उठा है, क्योंकि उनने अतीत के सिसकते ह्दय के स्पन्दनों को सुना है आधुनिक युग में एक और तो पूंजीपतियों की तोंद मोटी हो जा रही है, महल पर महल उठते जा रह हैं और दूसरी ओर रोग-जर्जर किसान मजदूर बेघर हो रहे हैं। इस भयानक वैषम्य के युग में शोषित समुदाय का संघठित होकर अन्तिम संग्राम के लिए तैयार हो जाना कुरूक्षेत्र का महान संदेश हैं साम्यवाद, रामराज्य की कल्पना:

''शान्ति नहीं तब तक जग में, सुख-भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो।''

चित्त को सतेज और उत्तेजित करने वाले गुण का नाम ओज है, इससे मन में स्फूर्ति होती है, भुजाएँ फड़कने लगती है। कवि की क्रान्ति-भवानी का जन्म हुआ और वह वहीं अरूण शतदल पर नृत्य करने लगी। दिनकर ने काव्य साधना द्वारा क्रान्ति की उपासना की, आवाहन किया, वह आई, नृत्य करने लगी, कवि की वाणी में समा गई।

वर्षों बीत गये – फिर भी दिनकर नाम लेने मात्र से उनका स्वरूप आखों के सामने स्पष्ट हो आता है। सन् 1973 में शायद कवि सम्मेलन में भाग लेने दिनकर जी हमारे घर पधारे हुए थे। मैं उस समय इन्टर कक्षा में पढ़ती थी। मेरे पिता जी के मित्र थे – अतः बहुत सारी बातें दिनकर के विषय में उनके मुँह से सुनने के लिए मिलती रहती

थी । उनकी सेवा का सौभाग्य भी मुझे मिला था। दिनकर जी का बाह्य एवं अन्तः व्यक्तित्व दोनों एक सा था। वे शरीर से स्वस्थ, सुन्दर, स्वभाव से हँसमुख एवं सरल व्यक्ति थे। वेष-भूषा से शुद्ध भारतीय विचार से आस्तिक। उनके श्रीमुख से कई कविताओं का पाठ सुनने को मिला था – अभी भी लगता है कि कानों में उनकी झंकृति सुनाई पड़ती है और उनका स्वरूप सामने साकार हो उठता है। शरीर रोमांचित हो जाता है।

कविता की आत्मा ध्वनि है। अर्थात कविता वह नहीं है, जो कहा जाता है, बल्कि वह जिसकी ओर संकेत किया जाता है। '*नीलकुसुम*' की वह पंक्ति अभी भी याद है जो स्वयं दिनकर जी के मुख से सुना था–

है यहाँ तिमिर, आगे भी ऐसा ही तम है,
तुम नील कुसुम के लिये कहाँ तक जाओगे?
जो गया, आज तक नहीं कभी लौट सका,
नादान मर्द! क्यों अपनी जान गंवाओगे?

कर्मठ पुरुष भूमि का पंक झेलता, विविध ताप को सहता, ज्योति-तिमिर में खेलता, बहता, मृतिका का पदयान करता, मानवता की जय दुदुंभी बजाता, जगत को कुछ आगे पहुँचा कर, कुछ स्मणीय बनाकर इस धराधाम से विदा होता है। ज्ञान और कर्म मार्ग-दोनों को दिशाओं में दौड़ने के कारण व्यक्ति द्विधा विभाजित होकर दुःख झेल रहा है। मन और तन का सामंजस्य आवश्यक है। जिस स्वर्ग को मन जाता है, देह नहीं, वह व्यर्थ है। भुजा के उपार्जन में जब मन का हिस्सा है तो मन भुजा का क्यों न हो? मस्तिष्क और भुजा का समन्वय होना चाहिये केवल ज्ञानमय निवृत्ति से, दुविधा नहीं मिट सकती जगत को छोड़ देने से तृष्णा नहीं घट सकती। भाग्यवाद, पलायनवाद और संन्यास से अलग हटकर मनुष्य को पुरूषार्थ, संघर्ष और कर्मयोग पर विश्वास करना पड़ेगा। तभी यह जगत सुन्दर से सुन्दरतम् हो सकेगा –

हो जहाँ कहीं भी नील कुसुम की फुलवारी,
मैं एक फूल तो किसी तरह से जाऊँगा
जूड़े में जब तक भेंट नहीं यह बाँध सकूँ
किस तरह प्राण की मणि को गल लगाऊँगा?

दिनकर जी ने छायावादी, प्रगतिवादी एवं भोगवादी काव्यधारा के संगम पर खड़े होकर अपनी रचनाएं लिखी हैं इन तीनों धाराओं का स्पष्ट प्रवाह इनकी कविताओं में परिलक्षित होता हैं। राष्ट्रकवि की प्रत्यक्ष दृष्टि, लोक पक्ष का अन्तरभेदन करती हुई आविर्भूत होती है, वह अपने ज्यातिश्चुम्बन से समस्त लोक को आलोकित करता है वह अपने क्षितिजालिंगन के द्वारा सम्पूर्ण जीवन को भुजाओं में भर लेता है। वह अपने अमृत से धरती को अमरावती बना लेता है। '*रेणुका*' एवं '*रसवन्ती*' आदि आरम्भिक कृतियों में यौवन एवं सौन्दर्य सम्बन्धी भोगवादी भावनाओं का स्वरूप देखेने को मिलता है–

पड़ जाता चसका जब मादक प्रेम सुधा पीने का,
सारा स्वाद बदल जाता है दुनिया में जीने को

कम शब्दों में दिनकर जी की कविता कलापक्ष एवं भावपक्ष की सम्मिलित स्वर साधना हैं इनकी कविता का सफलतम स्वरूप उनके उच्चतम काव्य '*कुरूक्षेत्र*' में सहज ही देखने को मिलता है। कवि ने कुरूक्षेत्र के '*निवेदन*' में कहा है: *''कुरूक्षेत्र की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और न महाभारत को दोहराना ही मेरा उद्देश्य था। मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाए बिना भी कहा जा सकता था, किन्तु तब यह रचना, शायद, प्रबन्ध के रूप में नहीं उतरकर मुक्तक बनकर रह गई होती।''* साकेत की रचना जिस प्रकार बाल्मीकि के अनुकरण पर नहीं हुई है उसी प्रकार कुरूक्षेत्र की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है। कवि के लिये अनुकरण आवश्यक नहीं है – अशोभन भी है। हाँ, पूर्ववर्ती कवियों के पात्रों से प्रेरणा ली जा सकती है। व्यास के युधिष्ठिर और भीम से इन्हें भरपूर प्रेरणा मिली है। सम्पूर्ण कुरूक्षेत्र की वस्तु, दो शब्दों में, इस प्रकार कही जा सकती है – महाभारत की समाप्ति के बाद युधिष्ठिर के मन में घोर विरक्ति उत्पन्न हो जाती है। पाँच व्यक्तियों के सुख के लिये इतना रक्तपात। वे पश्चात्ताप करते हुए भीष्म पितामह के पास चले आते हैं। भीष्म उनके कृत्रिम वैराग्य की भर्त्सना करते हैं। उन्हें कर्मयोग का उपदेश देते हैं। अनासक्त भाव से दुखी मानवता की सेवा करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य-मार्ग में आए हुए विघ्नों का वीरता के साथ सामना करना चाहिए। एक दिन मानवता दुख से अवश्य मुक्त होगी – इस आशा का सम्बल लेकर सदा आगे बढ़ना चाहिए।

सच्चा कवि संवेग या अनुभूति को आत्मनिष्ठता के साथ अनुभव करता है और साथ ही वस्तुनिष्ठता के साथ उसका अभिव्यंजन भी। हम अपने आत्मनिष्ठ अनुभवों को वस्तुनिष्ठ बिम्बों के द्वारा स्पष्टतया प्रेषणीय बना सकते हैं कवि अपने संवेग के अनुरूप, समरूप बिम्ब वस्तु जगत से चुनता है और उसी वस्तुपरक बिम्ब के द्वारा अपनी आन्तरिक अनुभूति को प्रकट करने में सफल होता है। बिम्ब जितना ही साफ, स्पष्ट और ठोस होगा, वह भाव-संप्रेषण में उतना ही सफल सिद्ध होगा।

भोगो तुम इस भाँति मृत्ति को, दाग नहीं लग पाए।
मिट्टी में तुम नहीं, वही तुम में विलीन हो जाए।

दिनकर ने इतिहास के आँसू को स्वर देने का स्तुत्य प्रयास किया है। कवि की कृपा से मूक वाचाल हो जाता है इनकी ऐतिहासिक भावना में अनुभूति का सौन्दर्य है, प्रसाद में कल्पना का। दिनकर की अनुभूति को आँख है। दिनकर की लेखनी की नोंक से इतिहास कई सोयी सदियाँ जग गई। यदि कवि की कृतियों का अवलोकन किया जाय तो इनमें सतयुग, त्रेता एवं द्वापर के महान व्यक्तिव्यों का प्रत्यक्ष या सांकेतिक रूप से उल्लेख अवश्य मिलेगा। ऐतिहासिक काल के प्रमुख पुरुषों के दो-चार नाम इनकी रचनाओं में मिल ही जाते हैं दिनकर की ऐतिहासिक भावना का सही परिचय पाने के लिये आपको *'हिमालय'* के निकट जाना पड़ेगा। कवि की यह भावना *'हिमालय'* में सर्वाधिक पल्लवित हुई है। *'पौरुष के पूंजीभूत ज्वाल'* में कवि की अतीत भावना का पौरुष पूंजीभूत, राशिभूत होकर प्रज्वलित हो रहा है। इसमें पूर्व पुरुषों की वीरता, ओज, तपस्या और तेज की ओर संकेत किया गया है। अतीत कोई बुझती, टिमटिमाती ढिबरी नहीं, वह प्रज्वलित होम शिखा है। उसके ताप और तेज से हमारा वर्तमान प्राणवन्त हो रहा है।

दिनकर ने प्राय: निजोन्मुखी प्रवृत्ति को लोकोन्मुख बनाने का प्रयास किया है। मानव समाज को तड़पते छोड़कर अपने चुपचाप आनन्द से जी लेना मानवोचित नहीं है अपना निजी सुख पाना बड़ा आसान है, लेकिन समाज के करोड़ों को सुखी बनाना बड़ा कठिन:-

''दुर्लभ नहीं मनुज के हित, निज वैयक्तिक सुख पाना,
किन्तु कठिन है कोटि-कोटि मनुजों को सुखी बनाना।''

इससे स्पष्ट है कि राष्ट्रकवि की रचना बहुजन हिताय है, स्वान्त: विनोदाय नहीं। बहुजन हिताय की भावना अत्यन्त तीव्र होने पर वह आप ही आप *'स्वान्त: सुखाय'* में परिणत हो जाता है इसके बिम्ब हमारे युग-युग के परिचित है, प्रतीक हमारी हड्डियों में सनसनी पैदा करते, हमारे खून में गंधक मिला देते और हमारे प्राण में में हर-हर, बम-बम का मंत्रोच्चार भर देते हैं। अपनी संस्कृति की इस धारा में तैरने वाले कवि ऐसे प्रतीकों को उपस्थित कर सहृदयों की संवेगात्मक प्रतीति को सद्य: जागृत करने में समर्थ होते हैं।

- प्रधानाचार्य, एम. ए. एम. कॉलेज
तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

dkyt ;h dfo% fnudj

- *छोटे नारायण शर्मा*

जड़ मिट्टी को कुरेदकर हम पृथ्वी का रहस्य नहीं समझ सकते। प्राण में जाकर इसको थोड़ा ज्यादा समझते हैं। प्राण के ऊपर 'मन' में जाकर हम प्राण और शरीर, दोनों को थोड़ा अधिक समझते हैं, लेकिन इससे भी ऊपर 'आत्मा' में जाकर हम सबको समझ सकते हैं। आत्मा ही कुंजी है, जो रहस्य का दरवाजा खोल देती है।

दिनकर जब पैदा हुए तब भारत में अंग्रेजों का राज सुदृढ़ रूप से स्थापित था। विश्व इतिहास की यह एक विचित्र घटना थी। भारत की एक अंशमात्र भूमि में रहने वाले थोड़े से लोग अब हमारे शासक थे और हमारी जीवन यात्रा उन लोगों के इशारे पर चलने के लिए बाध्य थी। एक जाति जिसकी सभ्यता की स्वरलिपि वेदों में अंकित थी, बाल्मीकि और व्यास जैसे कवियों ने जिसके जीवन का महागान किया था, वह अभी वहीं निष्पन्न पड़ी हुई थी। भारत के इसी पतनोन्मुख, दुर्योगकाल में दिनकर पैदा हुए थे। भूचाल भारत का ही नहीं, विश्व का भी धरातल हिला रहा था। इस काल के दो निश्चित स्तम्भ पैदा हुए। भारत में महात्मा गांधी और पश्चिम में हिटलर। गांधी के पास अहिंसा की छाया थी, क्योंकि वस्तुत: अहिंसा की शक्ति जानने के लिए मनुष्य को जिस चतुर्थ आयाम पर चढ़ना होता है, उससे दुनिया आज भी बहुत दूर थी।

सारा मानव समाज एक ऊहापोह की स्थिति में था। दिनकर अपनी स्थिति का परिचय देते हुए कहते हैं:

शारदे! विकल संक्रान्ति-काल का नर मैं,
कलिकाल-भाल पर चढ़ा हुआ द्वापर मैं;
संतप्त विश्व के लिए खोजते छाया,
आशा में था इतिहास-लोक तक आया।
पर हाय, यहाँ भी धधक रहा है, अम्बर है,
उड़ रही पवन में, दाहक लोल लहर है।

कुरुक्षेत्र की सर्वग्रासिनी व्याली ने सभ्यता को पूरी तरह फूँक डाला है, भारत को इस प्रकार जलाकर छोड़ दिया है कि विजयी, पराजित में आज कोई भेद नहीं रह गया

है। दुर्योधन मर गया है, युधिष्ठिर विजयी होकर निष्प्राण तथा सपनों की मरुभूमि में भटक रहे हैं। कुरुक्षेत्र की व्यालिनी जिस विजयमाल को पहनाने के लिए विजेता को ढूँढ़ रही है, उसे संबोधित कर कवि कहता है:

ओ कुरुक्षेत्र की सर्वग्रासिनी व्याली,
मुख पर से तो ले पोछ रुधिर की लाली;
तू जिसे वरण करने के हेतु विकल है,
वह खोज रहा कुछ और सुधामय फल है।

कवि की आत्मा द्वापर में अटकी हुई लगती है। बुद्धि के धरातल से बोलती हुई कवि की आत्मा को हम और स्पष्ट वाणी बोलते हुए नहीं सुन सकते। क्योंकि मानव की आत्मा है जो काव्य की उच्चतम वाणी को मूर्तरूप देती है। जब इसकी व्याप्ति केवल बाहर के जीवन से होती है तो बड़े कवि वे होते हैं जो मानव के सामान्य जीवन और कर्म को, उसके परिवेश को उसके लिए महान, शुद्ध और सद्भावनायुक्त बनाते हैं। यदि यह महान आत्मा बुद्धि के माध्यम से काम कर रही होती है तो महान कवि वे होते हैं, जिनके विचार गम्भीर और चमत्कारिक होते हैं, जो मानव के कर्म और सत्ता की, उसके विचार और सपनों की, विश्व और विश्व-प्रकृति की सृजनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। लेकिन आत्मा जब अपनी अन्तर्दृष्टि, संकल्प और संबोधि के क्षेत्र में पदार्पण करती है तो इससे भी गंभीर, इससे भी व्यापक वस्तुओं का गान कवि कण्ठ में झंकृत होने लगता है। वस्तुओं के तब अन्यतम भाव, प्रकृति की अन्तस् चेतना, मानव के गुहाशय में छिपी अन्तरात्मा की गंभीरतम गतियाँ, जीवन के रहस्य को प्रकट करने वाला सत्य, विश्वव्यापी जीवन का आनन्द, सौंदर्य और शक्ति; और आत्मानुभूति और आत्म-सृष्टि का अशेष प्रसार ही तब काव्य बन जाता है। कविता का यह धरातल जिस ऊँचाई से गोचर होगा, वह आज भी मानव की चेतना को एक दूर का आयाम ही दे सकता है। हम बाल्मीकि और व्यास जैसे देवतुल्य कवियों में इसकी क्वचित किरणों को तो देख ही सकते हैं, लेकिन इसका प्रसारित रूप तो हमें भविष्य ही दिखला सकेगा, जिसका एक व्यापक रूप हमें श्री अरविन्द रचित 'सावित्री' महाकाव्य में मिलता है।

कवि दिनकर की गहरी काव्य चिन्ता का ही प्रभाव यह लगता है कि वे विशेष रूप से श्री अरविन्द की ओर आकृष्ट हुए। सबसे पहले तो मैंने उन्हें उन दिनों देखा जब वे दूसरे विश्व युद्ध के काल में, विशेषत: भारत की राजनीतिक उथल-पुथल के काल में पटना में कई स्थानों पर अपनी ओजस्विनी कविता खुले कंठ से सुनाया करते थे। मैं तब पटना कॉलेज में स्नातक व स्नातकोत्तर का छात्र था। पीछे उनसे व्यक्तिगत परिचय तब हुआ, जब मैं श्री अरविन्द के प्रति विशेष रूप से अनुरक्त हुआ। दिनकर जी कहा करते थे कि श्री अरविन्द के प्रति अनुरक्ति का मतलब है कि मनुष्य की चिंता का धरातल थोड़ा ऊँचा है। श्री अरविन्द के देहत्याग के बाद 'श्री अरविन्द की प्रेरणा' नाम से एक पुस्तक के लेखन में हमारा और दिनकर जी का साथ हुआ। दिनकर जी ने साहित्य के ऊपर लिखा। और अन्यान्य अंश डॉ. इन्द्रसेन, पं. भुवनेश्वर मिश्र माधव और मैंने लिखा था। दिनकर जी तब तक आश्रम नहीं आये थे। वे गंगाबाबू (बाबू गंगा शरण सिंह जी) के मित्र थे जो भारतीय सोशलिस्ट पार्टी के एक प्रमुख लीडर थे। गंगा बाबू और दिनकर जी आश्रम आने पर हमारे घर पर ठहरा भी करते थे। दिनकर महर्षि रमण को विशेष श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और आने पर वहाँ वे उनके आश्रम, जो पांडिचेरी से करीब सौ किलोमीटर की दूरी पर है, जरूर जाया करते थे।

तेजोमय कविता के पुंज दिनकर हृदय से बालक के समान सरल और निरीह थे। 1973 में श्रीमाता जी के देहत्याग के बाद जब मैं उनसे मिला था तो पटना में उन्होंने मुझसे बिलखते हुए कहा - शर्मा जी मैं माताजी के चले जाने से टूट गया हूँ। भाव-भावनाओं की ऊँचाई पर रहने वाला बालसुलभ सरलता से युक्त वैसा कवि दिनकर ही हो सकता है।

fnudj %cgvk;keh dfo

- *प्रभाकर श्रोत्रिय*

आत्मचिंतन और आत्मालोचन 'दिनकर' की ऐसी विशेषताएँ हैं जो उन्हें निरंतर गतिशील रखते हुए 'रेणुका' से 'उर्वशी' और 'हारे को हरिनाम' तक पहुँचाती हैं। वे अपनी रचनाशीलता से बार-बार जूझते और अपने को समझने, आलोचित करने और जरूरत पड़ने पर रूपांतरित एवं विकसित करने की कोशिश करते हैं।

अपने शौर्य-काव्य के बारे में वयस्क काल में दिनकर की टिप्पणी है:

''.....लगता है, पृथ्वी पर आने के पूर्व जब भगवान को प्रणाम करने गया, वे कलाकारों के बीच छेनी, टाँकी, हथौड़ी, कूँची और रंग बाँट रहे थे। लेकिन भगवान ने मुझे छेनी, टाँकी और हथौड़ी नहीं दी, जो पच्चीकारी के औजार हैं। उनके भंडार में एक हथौड़ा पड़ा हुआ था। भगवान ने वही हथौड़ा उठाकर मुझे दे दिया और (जरा-सी आत्मश्लाघा के लिए क्षमा कीजिए) कहा कि जा, तू इस हथौड़े से चट्टान का पत्थर तोड़ेगा और तेरे तोड़े हुए अनगढ़ पत्थर भी काल के समुद्र में फूल के समान तैरेंगे।''

अगर दिनकर के इस कथन को हम उनकी मुखर राष्ट्रीय कविताओं के बारे में लें और *'उर्वशी'*, *'रसवन्ती,'* *'सामधेनी'* जैसी काव्य कृतियों को इसके बाहर रखें तो लगेगा कि वे इस काव्य की खूबी और अभाव दोनों से परिचित हैं और जो थोड़ी आत्मश्लाघा है वह कवि का आत्मविश्वास है, जिसके बिना कोई भी सर्जना संभव नहीं होती। यह सच भी है कि उनके इस काव्य में समुद्र में फूल के समान तैरने का काव्य-गुण है और वह इस रूढ़ि को तोड़ता है कि ऋजु काव्य समकाल में बद्ध होकर अपने परे की काव्य-यात्रा को संभव नहीं होने देता।

दिनकर के राष्ट्रीय काव्य की भी दो कोटियाँ हैं। जो श्रेष्ठ कोटि का काव्य है वह आवेग और वेग का काव्य है। उसमें कवि कथात्मक ब्यौरे न देकर मर्म को पकड़ता है, जो पाठक की धड़कनों पर उँगली रखने की क्षमता रखता है। उसके भीतर की अग्नि देश-काल-पात्र की जड़ीभूत पहचान को भस्म करती, समयान्तरण में अद्भुत रूप से समर्थ है। परशुराम की प्रतीक्षा में कवि कहता है -

घटा फाड़कर जगमगाता हुआ,
आ गया देख ज्वाला का बाण;
खड़ा हो जवानी का झंडा उठा,
ओ मेरे देश के नौजवान।

इस आह्वान का काव्य के विषय से कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। यहाँ शब्दशः विषय को बेधकर वस्तु से सीधा सम्पर्क स्थापित किया गया है। इसी तरह जब कवि पराजय के लिए उत्तरदायी व्यक्ति की घोषणा करता है, तो वहाँ भी देश-काल तिरोहित हो जाता है:

गीता में जो त्रिपिटक निकाय पढ़ते हैं,
तलवार गलाकर जो तकली गढ़ते हैं,
शीतल करते हैं अनल प्रबुद्ध प्रजा का,
शेरों को सिखलाते हैं धर्म अजा का।

इससे भी आगे कविता अपने को समकाल से जोड़ते हुए सारे विभेदक चिह्न मिटा देती है:

घातक है जो देवता सदृश दिखता है,
लेकिन कमरे में गलत हुक्म लिखता है,
जिस पापी को गुण नहीं, गोत्र प्यारा है,
समझो उसने ही यहाँ हमें मारा है।

विभेदक चिह्न मिटाने की प्रक्रिया जटिल होती है। उसमें कविता का प्रत्येक अवयव सक्रिय हो उठता है; शब्द अपना अभिधार्थ बदलकर लक्ष्य और व्यंग्य हो जाते हैं; और नई तरह की कलात्मकता पैदा हो जाती है। यहाँ 'गीता' और 'त्रिपिटक निकाय' से लेकर 'अजा' तक अपना मूल अर्थ पाकर भी उसे खो देते हैं और लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ की रौशनी फेंकते हुए कर्म, वैराग्य, हिंसा, अहिंसा, रूप-गुण, छल-छद्म, जाति-धर्म वगैरह अर्थरूपों में विकीर्ण हो जाते हैं।

दिनकर किसी जादूगर की तरह पहले विषय को मुट्ठी में कसते हैं, फिर जब मुट्ठी खोलते हैं तो वह कहीं नहीं दिखता, या तो उसका सारांश दिखता है या उसकी लक्षणा और व्यंजना। वे सामाजिक के भीतर अपने को शामिल कर लेते हैं और उसके तापमान से अपनी कविता को संचालित करते हैं। पाठक की प्रतिक्रिया, आकांक्षा, क्षोभ, झुँझलाहट, क्रोध, उत्साह या त्रास उनकी कविता से रसधारा की तरह प्रवाहित होता है और एक अनोखी प्रतीकात्मकता पैदा कर देता है जिससे विषय का परिसीमन विस्तार पा जाता है:

ले अँगड़ाई उठ हिले धारा,
तू कर विराट स्वर में निनाद;
तू शैलराज हुंकार भरे,
फट जाय कुहा भागे प्रमाद।

कैसा विराट् और सक्रिय बिम्ब है जो अपनी प्रतीकात्मकता में दीप्त है। सामाजिकता के हृदय की आकांक्षा में ऊँची लहरें उठने लगती हैं।

देश जब आजाद होता है तो यह जन कवि भी उल्लसित हो उठता है। उसका उत्साह और कामना सीमा में बँधाने को तैयार नहीं:

सबसे विराट जनतंत्र जगत का आ पहुँचा,
तैंतीस कोटि हित सिंहासन तैयार करो,
अभिषेक आज राजा का नहीं, प्रजा का है,
तैंतीस कोटि जनता के सिर पर मुकुट धरो।

लेकिन जब आजादी के बाद जनता के साथ कवि का भी मोहभंग होता है तो वह फिर जनता के साथ खड़ा हो जाता है और सत्ता या नेताओं से सवाल करता है:

यह वही आदमी है
जिसकी पीड़ाओं को आगे करके,
स्वाधीन हुए थे तुम जिसकी पीड़ाओं को आगे धरके,
यह वह मनुष्य जिसकी ज्वाला
की ढाल बना तुम लड़ते थे,
जिसकी ताबीज पहनकर तुम
शेरों की तरह अकड़ते थे;
क्या हुआ कि इस भूखी
प्रतिमा को देख आज भय लगता है,
मर गई कौन-सी नस जिससे
वह दर्द नहीं अब जगता है।

यह दर्द का स्वर है जो दिनकर में शौर्य की तरह ही कविता के केन्द्र में है, यह उनका अपना जीवनानुभव भी है जो कविता में टीस रहा है। जो कवि जनता का हिमायती होता है, उसके भीतर की पीड़ा बहुत सघन होती

है, क्योंकि कोई भी सत्ता हो, जनता का इतिहास तो त्रास की लेखनी से ही लिखा हुआ होता है:

दिल्ली में तो है खूब ज्योति की चहल-पहल,
पर भटक रहा है सारा देश अँधेरों में।

सत्ता-केंद्र हमेशा जगमगाता है और जितना जगमगाता है उतना ही चकाचौंध का अँधेरा जन-मन में भरता जाता है, सत्ता-केन्द्र दिल्ली का वस्तु जगत हमारे भाव जगत को अजब तरह से घूरने लगता है। हम इतिहास-केन्द्रों पर पहुँचकर भी इतिहास पढ़ना भूल जाते हैं और यथार्थ पढ़ने लगते हैं:

तामस बढ़ता यदि गया धकेल प्रभा को,
निर्बंध पंथ यदि नहीं मिला प्रतिभा को,
रिपु नहीं, यही अन्याय हमें मारेगा,
अपने घर में ही फिर स्वदेश हारेगा।

यह परशुराम की या उनके देश-काल की समस्या नहीं है, यह हमारी और हमारे देशकाल की समस्या है। अपनी प्रतिभाओं के लिए हमारे देश में ही जगह कहाँ है? सारे उच्चकोटि के मस्तिष्क विदेशों को निर्यात हो जाते हैं। लगता है परशुराम सिर्फ एक बहाना है, एक प्रतीक है, जिसमें कवि को अपना युग-सत्य कहना है।

इतिवृत्तात्मक कविता में दिखनेवाली गति में भी भीतर से एक ठहराव होता है, संभवतः इसीलिए दिनकर ने उस प्रवृत्ति को अपने से दूर रखने की कोशिश की है। वे कहीं ठहरते नहीं, उद्यमता के साथ त्वरा उनका काव्य-गुण है। ये, और ऐसे अनेक गुणों के कारण उनकी राष्ट्रीय कविताएँ भी वक्त के भीतर नहीं सिमटतीं, इसके परे निकल जाती हैं जो उनके शब्दों में प्रस्तर का काल-समुद्र में फूल की तरह तैरना है।

वैचारिक स्तर पर दिनकर समझते हैं कि वे गांधी और मार्क्स का द्वन्द्व झेल रहे हैं, जो कि वैचारिक जगत का भी तत्कालीन द्वन्द्व था। परंतु सच यह है कि तब के कवि वास्तव में गांधी और सशस्त्र क्रांतिकारियों के बीच झूल रहे थे। माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', जयशंकर प्रसाद; सभी का यह द्वन्द्व था। यह अलग बात है कि उनकी अभिव्यक्ति में भिन्नता थी। गाँधी में दिनकर की अपरिमित श्रद्धा थी। वे कहते हैं:

गाँधी, बुद्ध, अशोक नाम हैं बड़े दिव्य स्वप्नों के,
भारत स्वयं मनुष्य जाति की बहुत बड़ी कविता है।

अपने से उबलते गीत माँगने वालों से वे पूछते हैं:

तुझसे जो माँगते उबलते गीत अनल के,
पूछ धर्म की वे किंचित सीमा स्वीकार करेंगे?
मानव मूल्यों की जब कुछ आहुतियाँ पड़ती हों,
रोएँगे तो नहीं? पाप से तो वे नहीं डरेंगे?

वे समर को पाप बताते हैं और प्रकारांतर से शांति और अहिंसा का समर्थन करते हैं:

समर पाप साकार, समर क्रीड़ा है पागलपन की,
सभी द्विधाएँ व्यर्थ समर में, साध्य और साधन की।

दूसरी ओर पाप की उन्हीं की परिभाषा है:

छीनता हो स्वत्व कोई और तू,
त्याग तप से काम ले, यह पाप है,
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे,
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है।

क्या यह कथन प्रकारांतर से गाँधी को वापस कर, उग्र क्रांतिकारियों का आह्वान नहीं करता:

रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ,
जाने दे उनको स्वर्ग धीर;
पर फिरा हमें गांडीव गदा,
लौटा दे अर्जुन भीम वीर।

यह कथन जैसे गाँधी से ही तर्क करता है:

कौन केवल आत्मबल से जूझकर,
जीत सकता देह का संग्राम है;
पाशविकता शस्त्र जब लेती उठा,
आत्मबल का एक वश चलता नहीं।

गाँधी और क्रांतिकारियों, हिंसा और अहिंसा का, आत्मबल और देहबल का संग्राम उनके भीतर बराबर चलता रहा। काव्य और जनता के मनोभाव की भूमि होने के कारण क्रांति, हिंसा, देहबल की ओर उनका झुकाव बना रहा।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि उन पर मार्क्स का कोई प्रभाव नहीं था। 'अरुण विश्व की काली जय हो, लाल सितारोंवाली जय हो' जैसी पंक्तियाँ भी उन्हीं की हैं। वे श्रम के महत्व की घोषणा भी करते हैं:

नर समाज का भाग्य एक है
वह श्रम है, भुज-बल है,
जिसके सम्मुख झुकी हुई
पृथ्वी, विनीत नभ-तल है।

इसका यह अर्थ भी नहीं कि ऐसी पंक्तियों को मार्क्स और गाँधी के द्वन्द्व के रूप में देखा जाए। जब दिनकर कहते हैं कि *उजले को लाल से गुणा कर देने पर जो रंग बनता है वही मेरी कविता का रंग है,* तो इस लाल रंग का अर्थ, उनके अर्थ से भिन्न यदि उनके काव्यार्थ में अनुवाद किया जाए तो वह क्रांतिकारियों के ही खून का रंग है। हम यह मान सकते हैं कि कवि जो कहता है उसे नहीं, जो रचता है उसे प्रमाण माना जाए। इस दृष्टि से दिनकर के भीतर गांधी की अहिंसा, आत्मबल आदि का; सुभाष, भगत सिंह या चंद्रशेखर आज़ाद की हिंसा, देहबल आदि से द्वन्द्व था।

यह कहना जरूरी है कि दिनकर केवल ओज, शौर्य और सहजता के कवि नहीं हैं। वे प्रेम, सौन्दर्य, रहस्यवाद और गीतात्मकता की वर्तुलता के कवि भी हैं। ये दिनकर ही हैं, जो रसवंती, उर्वशी, सामधेनी, नील कुसुम लिखते हैं और नई कविता जैसी कविताएँ 'कोयला और कवित्व' जैसी कृति में लिखते हैं। वे केवल तात्कालिक आवेगों की ही चिंता नहीं करते; चिरंतनता, कला और आंतरिक दीप्ति की भी चिंता करते हैं। ऐसे में उनकी यह खलिश विचारणीय है कि फिर भी 'मेरा विरुद चारण और वैतालिक' का ही रहा। जाहिर है कि उनके बारे में आलोचना की चिंता का केन्द्र उनकी राष्ट्रीय कविताएँ ही नहीं, उनकी समग्रता होनी चाहिए। काल की इस दूरी पर तो यह उनकी कविता के एक जरूरी विमर्श की तरह होगा।

इसी अवसर पर नवीनता, गहराई और अनेकांतता के संयोग पर दिनकर की अद्‌भुत टिप्पणी उद्‌धृत करने का मन है। वे लिखते हैं:

''...कविता का क्षेत्र ज्यों-ज्यों नवीन होता है, कवि त्यों-त्यों गहराई में उतरता जाता है और ज्यों-ज्यों वह गहराई में उतरता जाता है, त्यों-त्यों यह बताने में वह असमर्थ होता जाता है कि यह सत्य है और वह सत्य नहीं है। कविता की जो यात्रा गहराई की ओर है, वही उसे अनेकांत की ओर ले जा रही है। कवि यह जान गया है कि कोई भी बात जोर से बोलने योग्य नहीं है। इसलिए अब वह निश्चित और अनिश्चित, ज्ञात और अज्ञात के संधि-स्थल पर काम करता है। मनुष्य इतनी बार धोखा खा चुका है कि उसे अब किसी भी ज्ञान पर विश्वास नहीं रहा और सत्य को उसने इतनी बार बदलते देखा है कि वह कहीं भी दुराग्रहपूर्वक अड़ने को तैयार नहीं है।..''

इसी रौशनी में दिनकर द्वारा उर्वशी और कुरुक्षेत्र की तुलना को अगर देखा जाए तो उनकी विकसित आलोचना और काव्य-दृष्टि का पता चल सकता है। वे लिखते हैं: *कुरुक्षेत्र में प्रकाश है, उर्वशी में द्वाभा और गोधूलि हैं। कुरुक्षेत्र की वाणी विश्वास की वाणी है, उर्वशी की वाणी संशय और द्विधा से आक्रांत है। कुरुक्षेत्र में मैं धृष्टतापूर्वक गुरु के पद से स्वयं बोल गया हूँ। उर्वशी की ऊँचाई पर पहुँचकर मुझे ऐसा लगा कि अगर कोई गुरु मिल जाता तो उससे पूछता कि असली रहस्य क्या है?*

यह वही द्वन्द्व है जो रवीन्द्र और इकबाल जैसे दो ध्रुवों से जुड़ने पर दिनकर में, युवाकाल में पैदा हुआ था और जो अक्सर 'आमने-सामने के दो क्षितिजों से बोलते रहे हैं'। बहुत काल तक इकबाल विजय रहे, परंतु अब जाकर रवीन्द्र ने कवि के हृदय प्रदेश पर आसन जमाया है जहाँ से वे उर्वशी की खोज कर रहे हैं।

उर्वशी वास्तव में द्वाभा और गोधूलि की कृति हैं, जहाँ धूप-छाँह की अद्‌भुत क्रीड़ा है। केवल स्त्री और पुरुष का ही समागम नहीं होता, पृथ्वी के प्रेम की पराकाष्ठा का स्वर्गीय दिव्यता से संगमन होता है। अंत में यह प्रेम प्रकृति और पुरुष के प्रेम में रूपांतरित हो जाता है। उर्वशी स्वयं प्रकृति का रूप है:

मेरा तो इतिहास प्रकृति की पूरी प्राण-कथा है,
उसी भाँति निस्सीम, अपरिमित जैसे स्वयं प्रकृति है।

पुरूरवा और उर्वशी के बीच प्रेम ठीक उस प्रकार घटित हुआ है जैसी प्रेम की स्वाभाविक प्रकृति होती है:

पहले प्रेम स्पर्श होता है तदनंतर चिंतन है
प्रणय प्रथम, मिट्‌टी कठोर है फिर वायव्य गगन है।

ऐसी स्थिति में प्रेम घटना नहीं, एक प्रतीक हो जाता है, 'कामाध्यात्म' का प्रतीक इसके स्त्री और पुरुष साधारण स्त्री-पुरुष नहीं रहते, बल्कि सृष्टि की सर्वोत्तम सुन्दरता हो जाते हैं। यदि स्त्री है:

नहीं उर्वशी नारी नहीं, आभा है अखिल भुवन की,
रूप नहीं, निष्कलुष कल्पना है स्रष्टा के मन की।

तो पुरुष है:

यह ज्योतिर्मय रूप! प्रकृति ने किसी कनक पर्वत से,
काट पुरुष प्रतिमाविराट निज मन के आकारों की
महाप्राण से भर उसको, फिर भू पर गिरा दिया है।

दोनों ही वास्तव में सृष्टा के मन के आकारों का सम्मूर्तन हैं। मन के आकार की कोई कृति यदि सृष्टा रचता है तो संसार में उसका क्या सादृश्य। दोनों अपूर्व सुंदर और दोनों के मन भी अपूर्व सुंदर। ऐसी कृति संसार में सृष्टि करती है, तो उससे 'आयु' का जन्म होता है। इसे जन्म देते हुए उर्वशी, रूपसी अप्सरा शायद प्रणय जीवन में पहली बार माँ बनती है। इसके लिए उसे धरती पर ही आना था। उसका सौन्दर्य नई अर्थवत्ता ले लेता है:

गलती है हिमशिला, सत्य है गठन देह की खोकर
पर हो जाती वह असीम कितनी पयस्विनी होकर।

सीमा असीम हो उठती है। प्रेम के सारे आयामों और उसकी पराकाष्ठा को इस कृति में, शौर्य के कवि ने इतनी सुकोमलता और आंतरिक भव्यता से उकेरा है जो उसके नए अन्वेषण, रहस्यमयी जिज्ञासा और कुतूहल का प्रतिरूप और निस्संदेह उसके काव्य का शिखर बनती है। कम से कम इसे तो प्रमाणित करती ही है कि दिनकर को उनके 'विरुद' में ही कैद न कर उनके प्रसार और औदात्य को भी देखना चाहिए।

यों दिनकर ने आवेग और ओज से भरी राष्ट्रीय चिंता आजीवन नहीं छोड़ी, क्योंकि यह उनका स्थायी भाव थी। परंतु उन्होंने जिज्ञासा वृत्ति के साथ विचार और आत्मलोचन की यात्रा भी स्थगित नहीं की। उन्होंने इसके लिए न केवल काव्य कृतियाँ लिखीं, गद्यात्मक लेखन भी खूब किया। *'संस्कृति के चार अध्याय'* उनकी कालवाही वैश्विक चेतना का गहन पाठ है। 'शुद्ध कविता की खोज' जैसा गद्य-आलेख उनके अंतरान्वेषण और आलोचना वृत्ति का उदाहरण है। संस्कृति और विचार की अनवरत यात्रा ने दिनकर को गतिमयता दी। वे रवीन्द्र और इकबाल के घेरे से निकले और टी. एस. इलियट की नवीन प्रवृत्ति से साक्षात् हुए। और स्वयं नयी कविता तक पहुँचे। महर्षि अरविंद से भविष्य की कविता के बारे में जानकर कि वह मंत्र कविता होगी, दिनकर मंत्र-कविता की ओर मुड़े, यानी सूक्ष्म, मितभाषी और अचूक प्रभावकारी। इस कविता का प्रयोग कवि ने 'नील कुसुम' और 'हारे को हरिनाम' में किया। नवीन अन्वेषण और तत्वदर्शिता दिनकर की विकास यात्र है। इससे जाहिर होता है कि वे सपाट कवि और व्यक्ति नहीं हैं। अनेक अन्तर्द्वंद्वों और ऊहापोहों से भरा उनका काव्य-व्यक्तित्व रहा है।

एक लंबी काव्य-यात्रा के बाद भी दिनकर को लगा कि जिंदगी की किताब तो खाली की खाली रह गई। शुक्र सिर्फ इतना है कि एक सपाट, इकहरी और इकलौती जिंदगी उन्होंने नहीं जी:

शुक्र है कि इसी जीवन में
मैं अनेक बार जन्मा
और अनेक बार मरा हूँ।

जाहिर है कि दिनकर अंत तक कवि रहे नित्य नूतन; चाहे उन्हें इसके लिए नए-नए जन्म ही क्यों न लेने पड़े हों।

ए-601, जनसत्ता सहकारी आवास,
सेक्टर-9, वसुंधरा, गाजियाबाद- 201012

e; d vkbu e fnudj

– *प्रो. नृपेन्द्र प्रसाद वर्मा*

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' व्यक्ति नहीं समय थे। उनकी कविताओं में इतिहास नहीं समय बोलता है। समय का यह सच ही दिनकर की कविताओं का स्वत्व है। देश की समसामयिक परिस्थितियों के जिस किसी भी कोने में आप चले जाइये दिनकर वहाँ मौजूद मिलेंगे। भारतीय किसान-मजदूर की समस्या हो, साम्प्रदायिक अथवा राष्ट्रीय सद्भाव की बात हो, सामाजिक न्याय या दलित चेतना, वर्ग-वैषम्य अथवा राष्ट्रभाषा की समस्या हो, दिनकर हर मोड़ पर अपने हाथों में पाञ्चजन्य लिये खड़े मिलेंगे। इसलिए दिनकर का मूल्यांकन किसी साहित्यिकवाद या धारा विशेष के रूप में न कर समग्र राष्ट्र चेता के रूप में करने की जरूरत है।

दिनकर राष्ट्रकवि हैं। पर उनकी राष्ट्रीयता भारतवर्ष को अंग्रेजी शासन की दासता से केवल मुक्ति की कामना में नहीं वरन् उन तमाम समस्याओं से निजात दिलाते हैं जो देश की संप्रभुता, एकता और जन-आकांक्षों के लिए घातक हैं। इनमें उनकी प्राथमिकता में किसान-मजदूर-समस्या सबसे प्रबल है, क्योंकि यही वह समस्या है जिसके कारण सामाजिक और आर्थिक विषमताओं को पॉव पसारने का अवसर मिलता है और समाज में वैमनस्य फैलता है।

कृषि पूरी दुनिया में आदिम व्यवसाय रही है। इस दुनिया में आने वालों की पहली जरूरत अन्न की रही होगी ओर अन्न ऊपजाने के लिए उसने कठोर श्रम किया होगा। कल्पना कीजिये, आज अन्न नहीं होता तो क्या धरती पर प्राणी दिखते? इसलिए अन्न को 'ब्रह्म' और किसानों को 'अन्न-देवता' कहा गया है। परन्तु, अफ़सोस की बात है कि अन्न देवता का ही जीवन दुर्भाग्य-दग्ध है। आजादी के पहले और उसके बाद के किसानों की दशा में कोई सुधार नहीं हुआ। खासकर छोटे-छोटे किसान खेती छोड़ मजदूरी या आत्महत्या करने के लिए विवश हो रहे हैं। उत्तम माने जाने वाली कृषि निम्न हो गई है जबकि भारत शुरू से कृषि-प्रधान देश माना जाता रहा है। यहाँ की अस्सी प्रतिशत जनता का जीवन कृषि पर आधारित था। पर अब यह प्रतिशत घट गया है। किसान अन्न तो ऊपजाता है पर उनके घर की कोठियाँ खाली रह जाती है। वह

स्वयं पेट भरकर न तो खा पाता है और न अपने परिवार की छोटी-छोटी इच्छाएँ पूरी कर पाता है। उनके श्रम पर कभी ब्रितानी मौज-मस्ती करते थे तो अब भारतीय राजनेता और नौकरशाह। अंग्रेजी शासन काल में किसानों की स्थिति उन्होनें प्रत्यक्ष रूप से देखी थी। उन्हें लगा था कि जब अपने लोग शासन सत्ता पर काबिज होंगे तो भारत के किसानों और मजदूरों की दशा बदलेगी। देश में सामाजिक और आर्थिक समानता आयेगी, पर परिणाम आशानुकूल नहीं आया। देश आजाद तो हुआ पर किसान की दशा जस-की-तस रही। हमारे पौराणिक आख्यानों में अश्व-मेध और गौ-मेध के उल्लेख मिलते हैं। पर दौलत और पावर की नगरी दिल्ली में किसानों का मेध होता है। पूरे देश के किसानों की कमाई पर दिल्ली बेशर्मी से इठलाती है और बेचारे किसान अरमानों की घूँट पीकर रह जाते हैं। किसानों के साथ जो खेल अंग्रेज खेलते थे वे आज भी जारी हैं। महंगे बीज और खाद खरीदकर किसान खेती करते हैं पर उसकी ऊपज का समुचित लाभ उसे नहीं मिल पाता है। दिनकर एक तरफ वैभव सम्पन्न दिल्ली को देखते हैं और दूसरी तरफ मर्माहत कर देने वाली गाँव के किसानों-मजदूरों की दशा तो उनकी आत्मा उस दिल्ली को धिक्कारने लगती है जो इन किसानों और मजदूरों के श्रम पर वैभव-सम्पन्न बनी हुई तो है पर इनकी उसे चिन्ता नहीं-

आहें उठी दीन कृषकों की, मजदूरों की तड़प-पुकारें,
अरी गरीबों के लोहू पर, खड़ी हुई तेरी दीवारें।
अंकित है कृषकों के गृह में तेरी निठुर निशानी,
दुखियों की कुटिया रो-रो कहती तेरी मनमानी,
औ' तेरा दृग-मन्द यह क्या है? क्या न खून बेकस का?
बोल, बोल, क्यों लजा रही, ओ कृषक-मेध की रानी?

'कृषक-मेध' का यह चित्रण आजादी के पूर्व का है जो हीरक वर्ष पूरी करने वाला दिनकर का काव्य 'हुंकार' से लिया गया है और जिसकी रचना 1938 ई. में हुई थी। उस समय की दिल्ली सज-धजकर परदेसी संग गलबँहियाँ लगाये रहती थी। सन् 1947 में देश आजाद हो गया, परदेसी प्रियतम ब्रिटेन लौट गये पर दिल्ली आज भी 'कृषक-मेध' की रानी बनी हुई है। आज भी भारत के गाँवों और दिल्ली में अतुलनीय फर्क है। दिल्ली के विधान मंडल में बैठने वालों को इस बात की तनिक भी फिक्र नहीं है कि जिन किसानों-मजदूरों के श्रम पर सुख-सुविधाएँ भोग रहे हैं उनके लिए भी कोई योजनाएँ हो, उनके बच्चों का भी भविष्य सँवरे, उनको भी सम्मान मिले। उलटे उनकी जमीन छीनने की साजिश रची जा रही है। खेती के आधुनिकीकरण के नाम पर विदेशीकरण हो रहा है। दूसरे देश से रासायनिक खाद और हाइब्रिड बीज महंगे दाम पर देकर अधिकाधिक फसल ऊपजाने का प्रलोभन दे रहे हैं, परन्तु उनकी ऊपज का वाजिब मूल्य दिला पाने में सरकार निष्क्रिय है। किसानों पर ऋण बढ़ता जा रहा है और न चुका पाने के फलस्वरूप ये किसान आत्महत्या करने के लिए विवश हो रहे हैं। खेत से खलिहान तक मशीनों का राज हो गया है। इससे खेती में मजदूरों की भागीदारी कम हुई है। ये मजदूर अब गाँव छोड़कर महानगर की ओर पलायन कर रहे हैं। किसानों के साथ इस अन्यायपूर्ण नीति की जमीन आजादी मिलते ही तैयार हो गई थी, जब इस देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने 'हल' को जला देने की बात कहकर खेती के स्वदेशी उपकरणों के सर्वनाश की घोषणा की थी। और ऐसा ही हुआ। मेरी एक कविता की पंक्ति है- *'कँधो पर हल लिये यहाँ, अब दिखते नहीं किसान।'*

कृषकों के जीवन का मर्मस्पर्श चित्रांकन करते हुए दिनकर लिखते हैं-

बैलों के ये बन्धु, वर्ष भर
क्या जाने, कैसे जीते हैं?
जुँबां बन्द, बहती न आँख,
गम खा, शायद आंसू पीते हैं?

भारतीय किसानों-मजदूरों की दीन-हीन दशा पर नेताओं और नौकरशाहों की जुबाँ आज भी बन्द है। लगता है किसानों-मजदूरों की समस्याओं से उन्हें कोई लेना-देना नहीं। वे तो अपने ही स्वार्थ में लिप्त हैं। पर साहित्यकारों की जुबाँ तब भी खुली हुई थी और आज भी खुली हुई है। इनमें विशेषकर प्रेमचन्द, रामवृक्ष बेनीपुरी, निराला, दिनकर और नागार्जुन आदि प्रमुख हैं। बेनीपुरी, दिनकर और नागार्जुन तो कृषक-पुत्र ही थे। दिनकर की रगो में बहने वाली कविता की रागिनी तो किसानों-मजदूरों के बीच जाने के लिए मचल-मचलकर कहती है-

कवि! असाढ़ की इस रिमझिम
में धन-खेतों में जाने दे,

कृषक सुन्दरी के स्वर में अट-पटे गीत कुछ गाने दे,
दुखियों के केवल उत्सव में इस दम पर्व मनाने दे,
रोउँगी खलिहानों में खेतों में तो हर्षाने दे।

इतना ही नहीं दिनकर की कविता किसानों का हमदम बनने के लिए विकल हो उठती है परन्तु, देश के रहनुमाओं का हृदय किसानों की दशा देखकर पसीजता तक नहीं है। उनके जीवन में भी सुख के सुमन खिल सके ऐसा प्रयास आजादी के सड़सठ वर्षों के बाद भी नहीं हो पाया। जरा देखिये, दिनकर की कविता में किसानों की बेबसी का वह चित्र किस प्रकार कविता किसानो-मजदूरों का हमदम बनने के लिए विकल है-

सूखी रोटी खाएगा जब कृषक खेत में धरकर हल
तब दूंगी मैं तृप्ति उसे, बनकर लोटे का गंगाजल।

और उनकी चाह देखिये-

उसके तन का दिव्य स्वेद-कण बनकर गिरती जाऊँगी,
और खेत में उन्हीं कणों से मैं मोती उपजाऊँगी।
शस्य श्यामला निरख करेगा कृषक अधिक जब अभिलाषा,
तब मैं उसके हृदय-स्रोत में ऊमडूँगी बनकर आशा।

दिनकर की कविताओं को पढ़े बिना भारतीय किसानों-मजदूरों की जीवन-दशा नहीं समझी जा सकती है। इनके समाजशास्त्र को गद्य में प्रेमचन्द और पद्य में दिनकर को पढ़े बिना नहीं जाना जा सकता है।

इसी प्रकार जब हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता के चौराहे पर खड़े होकर हम दिनकर को देखते हैं तब उनमें वही भाव बिम्बित होता है जो साझी संस्कृति के कवियों में था। दिनकर के काव्य के आइने में देश की साम्प्रदायिक समस्या की भी तस्वीर मिलती है जो आजादी के साथ-साथ आयी है। गौरतलब है कि आजादी के पूर्व भारतवर्ष में उतने दंगे नहीं हुए जितने कि आजादी मिल जाने के बाद। आजादी के पूर्व जो हिन्दू-मुस्लिम एकता थी और जिसके सम्मिलित संघर्ष से दो सौ वर्षों की ब्रितानी हुकूमत से भारत को मुक्त कराया गया था वह आजादी मिलते ही दरक गया। भारत दो खण्डों में बँट गया। अंग्रेज जाते-जाते नफरत के बीज बो गये जिसे सींचने और पल्लवित करने का काम स्वतंत्र भारत में अब भी जारी है। वोट की राजनीति ने धार्मिक उग्रवाद को हवा देने का काम किया। एक ही देश के नागरिक के लिए धर्म आधारित अलग-अलग कानून -'हिन्दू लॉ और मुस्लिम लॉ' इसके लिए प्रमाण हैं। मंदिर-मस्जिद के विवाद से दोनों कौम की साधारण जनता को कोई लेना-देना नहीं। उन्हें तो मतलब है रोटियों से। रोटी मिले, उनके लिए भी शिक्षा और स्वास्थ्य की व्यवस्था हो तथा उनके भी बच्चों का भविष्य सँवरे इसके लिए उनकी जुबां नहीं खुलती है। सन् 1937 या 38 में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समझौता वार्ता विफल हो जाने के बाद ही देश का विभाजन लगभग तय हो चुका था। तब से ही दो राष्ट्र की कल्पना को साकार करने में दोनों कौम के तिकड़मी सत्ता लोभी लोग लग गये थे परन्तु दोनों दलों में गरीबों के लिए कोई आवाज नहीं उठी थी। बँटवारे के बाद अपने-अपने भूभागों की तकदीर बदलने के लिए तथाकथित नेताओं का उद्यम जारी हो गया था, किन्तु दोनों कौम के एजेंडा में किसान-मजदूर तथा देश के निर्धन लोगों की तकदीर बदलने का कोई आग्रह नहीं था। तब दिनकर ने कबीर के अक्खड़पन के तेवर में दोनों की आँखें खोलने तथा उन्हें जगाने के लिए 'तकदीर का बँटवारा' कविता लिखी थी जो 1938 में प्रकाशित 'हुंकार' में संकलित है-

मुस्लिमो, तुम चाहते जिसकी जुबाँ,
उस गरीबिन ने जबां खोली कभी?
हिन्दुओ, बोलो, तुम्हारी याद में
कौम की तकदीर क्या बोली कभी?

उस समय हमारी एकता जो खंडित हुई थी वह आजादी के सड़सठ वर्ष बीत जाने के बाद भी जुट नहीं सकी। कई सरकार आयी और गयी पर देश की इस फटी चादर का कोई रफूगर नहीं आया। पहले तो कहते थे दंश कराने वाला अंग्रेज, दंश रोकने वाला अंग्रेज। अब तो अंग्रेज को भारत छोड़े सात दशक बीतने पर है किन्तु साम्प्रदायिकता की आग अभी भी बुझी नहीं है। आजादी के बाद सर्वाधिक दंगे भारतवर्ष में हुए। अब तो दोनों कौमों को समझने की जरूरत है कि राजनीतिक ताकत और सत्ता के मंसूबे से दंगे नहीं रुकेंगे। इसके लिए दोनों कौमों को बैठकर विचार करना चाहिए। साझी संस्कृति विकसित करनी चाहिए। दिनकर के सामने कौमी साझी संस्कृति की सही तस्वीर थी। उनमें न तो हिन्दू राष्ट्रवाद के प्रति आग्रह था और न इस्लामिक कट्टरपंथियों के लिए कोई जगह। वे मंदिर और मस्जिद पर, कतार बांधने के पक्षधर थे। हिन्दुओं और मुसलमानों को एक धरातल पर लाना चाहते थे। सन् 1962 में रचित उनकी कविता 'समर शेष है' इसके उदाहरण हैं-

बलि देकर भी बली! स्नेह का यह मृदुव्रत साधो रे!
मंदिर और मस्जिद दोनों पर एक तार बांधो रे!

इसी प्रकार सामाजिक न्याय, दलित चेतना और वर्ग वाद की जब बात होती है तब दिनकर यहाँ भी समय के आईने में दिखायी पड़ने लगते हैं। दीन-दुखी मानवों के चित्रण में जितनी सफलता निराला को मिली थी उससे कम दिनकर को नहीं मिली। निराला में दीन-दुखी, दलित और सामाजिक दृष्टि से उपेक्षितों के प्रति एक करुणा है तो दिनकर में व्यवस्था के प्रति आक्रोश, गरीबों, उपेक्षितों और शोषितों के प्रति उनका आक्रोश इतना तीव्र हो जाता है कि वे आक्रामक हो उठते हैं-

एक ही पंथ है जग में जीने का,
छागियो अभ्यास करो रक्त पीने का।

ऐसी सामाजिक परिस्थितियाँ और धनतांत्रिक व्यवस्था को तोड़ने की छटपटाहट दिनकर में मिलती है। गरीब बच्चों के कंठ में दूध की बूँदें उतारने के लिए दिनकर की ललकार चुनौती में बदल जाती है-

हटो व्योम के मेघ, पंथ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं-
'दूध-दूध' ओ वत्स! तुम्हारा, दूध खोजने हम जाते हैं।

यहाँ दिनकर का साम्यवाद जीने के अधिकार के लिए याचना नहीं रण को आकुल है। जब वह देखता है कि एक ओर समृद्धि का अंबार है और दूसरी ओर निर्धनों के बच्चे दूध के लिए बिलख रहे है, भूखों के हाथ की रोटी छिनी जा रही है, अर्द्धनग्न युवतियों के वसन तथा मजदूरों के मुँह के कौर छिने जा रहे हैं तब दिनकर देशवासियों के सामने उसकी सही तस्वीर दिखाने में संकोच नहीं करते हैं-

हाय! छिनी भूखों की रोटी, छिना नग्न का अर्द्ध वसन है,
मजदूरों के कौर छिने हैं, जिन पर उनका लगा दसन है।

दिनकर देश की इस पीड़ित जनता के साथ पाञ्चजन्य लेकर खड़े हो जाते हैं और ऐसी दासत्व व्यवस्था की समाप्ति के लिए युद्ध को सनातन मानते हैं। दास-प्रथा हमारे देश में बहुत पहले थी। उस समय के लोगों के जीवन में कभी कोई उद्वेलन नहीं होता था। लोगों का जीवन उस ठहरे हुए जल के समान होता था जिसमें कोई कम्पन नहीं होता था। यह किसी भी सभ्य समाज के लिए अभिशाप है। दासत्व और स्वाधीनत्व का अन्तर स्पष्ट करते हुए दिनकर कहते हैं -

दासत्व जहाँ है, वहीं स्तब्ध जीवन है,
स्वातंत्र्य निरन्तर समर, सनातन रण है।

दिनकर का स्वर यहीं तक ठहर कर नहीं रह जाता है बल्कि वे आगे भी जागते रहने के लिए प्रेरित करते हैं। क्योंकि जाग्रत समाज के पाँवों में पराधीनता की बेड़ियाँ नहीं लग सकती। वह पराजित भी नहीं होता। इतिहास इस बात का साक्षी है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जो समाज या देश निस्तेज हो गया उसे अपना मूल्य खोना पड़ा। इसलिए आजादी के बाद भी दिनकर ऐसे जाग्रत समाज की कल्पना करते हैं जो सर्वथा सतर्क और युद्ध के लिए तैयार रहे।

स्वातंत्र्य समस्या नहीं आज या कल की,
जागृति तीव्र वह घड़ी-घड़ी, पल-पल की
पहरे पर चारों ओर सतर्क लगे रे!
धर धनुष-वाण उद्धत दिन-रात जगो रे!

यही है दिनकर के काव्य में समय का सच। चाहे वे आजादी के पूर्व या बाद में ही क्यों न लिखी गई हो, उनकी कविताओं की प्रासंगिकता तब तक बनी रहेगी जब तक भारतवर्ष में किसानों-मजदूरों की जीवन दशा बदल नहीं जाती है, जब तक कि सामाजिक और आर्थिक समानता का ठोस धरातल तैयार नहीं हो जाता है और सभी प्रकार के शोषण-उत्पीड़न तथा साम्प्रदायिकता के घिनौने खेल का अन्त नहीं हो जाता है तब तक समय के आईने में दिनकर की कविता प्रतिबिंबित होती रहेगी, देश की तमाम जनता का मार्गदर्शन करती हुई आगे बढ़ने के लिए सर्वथा प्रेरित करती रहेगी।

पी-14, प्रोफेसर्स कॉलोनी, लालबाग, सराय
भागलपुर-812002

Økfr/kek dfo fnudj

– प्रो. अवध किशोर राय

स्वतंत्र पूजता मैं न तुझे इसलिए कि तू सुख -शांति, रूप,
हाँ, उसे पूजता, जो चलता तेरे आगे मित्र क्रांति रूप ।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' क्रांतिधर्मा कवि थे। आज़ादी के पूर्व सन 1938 में प्रकाशित उनकी 'हुँकार' कविता-संग्रह अपने पचहत्तरवें वर्ष पर आज भूचाल और बवंडर मचाने में कम प्रभावशाली नहीं है। इसके पहले कवि की प्रथम काव्य -कृति 'रेणुका' का प्रकाशन हो चुका था जिसमें प्रकृति और अध्यात्म के साथ -साथ दिनकर की क्रांतिपरक कविताएँ हैं। परन्तु हुँकार तक आते -आते कवि वह तेजपूर्ण प्रकाश की ओर ऊपर उठता गया। यही कारण है कि जो कलम 'चढ़ गये पुण्य-वेदी पर लिये बिना गरदन का मोल' का कर्ज चुकाने के लिए मचल उठी थी वह आजादी के बाद भी अपना क्रांति-धर्म नहीं भुला पायी। जब-जब देश की सीमा पर संकट का मेघखण्ड टूटा हो या आतंरिक व्यवस्था चरमराई हो तब-तब दिनकर कविता-क्रांति की मशाल लेकर अगुवाई करने में पीछे नहीं रहे। उनकी क्रांतिधर्मा का यह सबसे प्रबल पक्षधर रहा है कि आजादी के पहले जहाँ बर्बर ब्रितानी शासक को भारत की धरती से खदेड़ भगाने की बात करते हैं वहीं आजादी मिल जाने के बाद स्वदेशी किंतु निरंकुश और तानाशाह सरकार को मृत्यु के कुछ ही पूर्व ललकारते हुए कहते हैं – 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है...।' 24 अप्रैल, 1974 को रामधारी सिंह पंचतत्व में विलीन तो हो गये किंतु कवि दिनकर का प्रभापुंज युग-युग तक जाज्वल्य रहेगा।

दिनकर नाम ही है भूचाल, बवण्डर और तरुणाई से भरी जवानी का जो कभी निस्तेज नहीं होता है और जिसे पूरी पृथ्वी शीतलता प्रदान करने वाले जलद को भी अपने आँचल में छिपा नहीं सकता है। उनका आचरण सर्वथा युग धर्म के अनुकूल तथा क्रांतिमूलक रहा है। वे स्वयं लिखते हैं –

सुनूँ क्या सिन्धु ! मैं गर्जना तुम्हारा? स्वयं युग-धर्म का हुँकार हूँ मैं;
कठिन निर्दोष हूँ भीषण अशनि का, प्रलय गांडीव की टंकार हूँ मैं।

उनके इस क्रांतिधर्मा का उत्कर्ष तो तब देखने में आता है जब महात्मा गाँधी को अपना आदर्श पुरुष मानने वाले दिनकर उनके अहिंसा के सिद्धांतों को एक सीमा तक ही स्वीकार करते हैं। गाँधी उनके लिए स्वामी विवेकानंद, दयानंद सरस्वती, गुरु गोविन्द सिंह और महर्षि अरविन्द के समय श्रद्धावान तो थे पर उनके सिद्धांतों से उन्हें मतभेद था। वे गाँधी के तलवार गला कर तकली गढ़ने के उपदेश के विरुद्ध और रक्त-रंजित क्रांति के पक्षधर थे। तभी तो अहिंसावाद का घूँट पिये नौजवानों को उद्बोधित करते हुए कहते हैं–

'एक ही पंथ है जग में जीने का'
छागियो अभ्यास करो रक्त पीने का।

यह जितना सच है कि दिनकर गाँधी की साहस, तप और निर्भयता पर जितना मुग्ध थे उतना ही यह भी सच है कि वे उनके अहिंसा विषयक उन सिद्धान्तों से मतभेद रखते थे जो देश की स्वाधीनता और संप्रभुता तथा सामाजिक और आर्थिक समानता के लिए खतरनाक था । 'कुरुक्षेत्र' में दिनकर का यह विचार खुलकर सामने आ गया है जब वे कहते हैं –

रे, रोक युधिष्ठिर को न यहाँ,
जाने दे उनको स्वर्ग धीर,
पर फिरा हमें गाँडीव गदा,
लौटा दे अर्जुन भीम वीर ।

'कुरुक्षेत्र' की रचना के पीछे दिनकर का उदेश्य युद्ध की अनिवार्यता और महात्मा गाँधी के अहिंसामूलक सिद्धांतों की आलोचना था। गाँधी के उदात्त गुणों को विषय बनाकर एक और 'बापू' खण्ड काव्य की रचना तो करते हैं परन्तु, वहाँ भी कवि अपने क्रांतिधर्म का निर्वहन करने से चूकते नहीं हैं। बापू के प्रति उनकी क्रान्तिदर्शी श्रद्धा देखिये –

संसार पूजता जिसे अक्षत, फूलों औ रोली से,
मैं उन्हें पूजता आया हूँ अंगारों और तलवारों से।

आज का भारत जिस संकटकालीन परिस्थितियों से गुजर रहा है उसमें धर्माधर्म की विचिकत्सा में पड़े रहना भारत के लिए खतरा हैं । सीमा पर शत्रु देश का उपद्रव हो रहा हो और देश के भीतर सीमा पार से आये आतंकवादियों से द्वारा लोगों की सुख-शांति छिनी जा रही हो तब अहिंसा की बात कहना घोर कायरता है। ऐसी परिस्थितियों में दिनकर को परशुराम की प्रतीक्षा है।

दिनकर जिस क्रांति-धर्मा के कवि थे वे केवल भारत की राजनैतिक आजादी तक ही सीमित नहीं थी। बल्कि सामाजिक न्याय से वंचित, शोषित-पीड़ित तथा दलितों को न्याय और उचित सम्मान तथा आर्थिक विषमता को दूर करने वाले उग्रचेतना के हिंदी के पहले कवि थे। सामाजिक न्याय, दलितोत्थान और वर्ग-वैषम्य को लेकर हिंदी साहित्य में जितना लिखा जा चुका है उसके कुछ भी रंग देश के राजैनतिक परिदृश्य पर आजादी के बाद दिखाई पड़ता तो शायद दिनकर को 'रश्मिरथी' जैसी कृति की आवश्यकता नहीं पड़ती। दिनकर की यह काव्य-कृति महाभारत की पटकथा नहीं वरन् सामाजिक न्याय और दलितों को सम्मान दिलाने वाला हिंदी का प्रथम काव्य -कुसुम है। जाति-भेद और वर्ग-भेद की राजनीति करने वालों को इसका पाठ गीता, कुरान, बाईबिल और गुरुग्रंथ की तरह करना चाहिए तभी सामाजिक न्याय का पुण्य -रथ भारत -भूमि में दौड़ सकेगा।

दिनकर की दृष्टि में कर्ण हमारे समाज के कलंकित एवम् उपेक्षित मानवता का मूक प्रतीक हैं। रश्मिरथि में दिनकर ने कर्ण चरित के उद्धार के द्वारा नयी मानवता की स्थापना का प्रयास किया है, जिसके अभाव में देश की दुर्बलता दूर कर पाना संभव हो सकेगा। इसके लिए मनुष्य की पहचान जाति और गोत्र से नहीं गुणों से होनी चाहिए। जाति और गोत्र के ठूंह पर खड़ा देश ध्वंसशील है। दिनकर देश में ऐसे ध्वंसशील विचारों की निंदा करते हुए कहते हैं –

धँस जाय वह देश अटल में गुण की जहाँ नहीं पहचान,
जाति-गोत्र के बल से ही आदर पाते हैं जहाँ सुजान ।

दिनकर क्रांतिधर्मा कवि थे, इसलिए जाति और गोत्र की संकीर्णता से परे होकर सामर्थ्य की सच्ची आराधना ही उनके कवि-कर्म का मूल था, रश्मिरथी के आरम्भ में ही उन्होंने स्वीकार किया है –

तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतलाके,
पाते हैं जग से प्रशस्ति अपना करतब दिखलाके।
हीन मूल की ओर देख जग गलत कहे या ठीक,
वीर खींचकर ही रहते हैं इतिहासों में लीक।

संपर्क:
प्रतिकुलपति
तिलका माँझी भागलपुर वि.वि., भागलपुर

tu&tkxj.k dk vxnr% jkeèkkjh flag ^fnudj*

– राकेश कुमार झा

साहित्य समाज का दर्पण होता है और साहित्य की भूमिका समाज के निर्माण में अग्रणी मानी जा सकती है। साहित्य के रूप अलग-अलग हो सकते हैं लेकिन उनकी मूल भावना मानव को सृजनात्मकता व संवेदनशीलता के प्रति जागरूक करना है। पश्चिमी साहित्य चाहे वह अंग्रेजी भाषा के प्रसिद्ध कवि, लेखक या नाटककार शेक्सपीयर हों या फ्रेंच के दामनिक लॉपियर, जर्मन के गेटे, स्पेनिश के सर्वेंटस या कोई अन्य साहित्यकार या फिर हिन्दी साहित्य के महान लेखक तुलसी, कबीर, प्रेमचन्द, नागार्जुन व रामधारी सिंह दिनकर। इन सभी का उद्देश्य अच्छे मानव व एक संवदेनशील समाज का निर्माण करना था।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में हिन्दी साहित्य की भूमिका स्तुतनीय है एवं रामधारी सिंह 'दिनकर' ने अपनी रचनाओं–'हुंकार', 'रसवन्ती', 'कुरुक्षेत्र', 'द्वंद्वगीत', 'रेणुका', 'रश्मिरथी', 'उर्वशी' आदि काव्यों के माध्यम से स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए क्रांति एवं विद्रोह का सिंहनाद करते हुए जन-जागरण की भावना को महत्व दिया एवं उन्होंने स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश में व्याप्त राजनीतिक समस्याओं पर विचार प्रकट किए।

'हुंकार' कवि दिनकर की महत्वपूर्ण कृति है, जिसमें विप्लव और विद्रोह की आग बरसाने वाली कविताएँ संकलित हैं। कवि का यही ओजस्वी स्वर 'रसवन्ती', 'द्वंद्वगीत', 'रेणुका', 'सामधेनी', 'इतिहास के आँसू', 'धूप और धुआँ' आदि काव्य-संग्रहों में विद्यमान है। इन सभी कविताओं में कवि ने बड़ी दृढ़ता एवं गंभीरता के साथ कर्म, उत्साह, पौरुष एवं उत्तेजना के गीत गाए हैं और जन-जीवन में प्राण फूंकने का कार्य किया है। कवि का यही उन्मुक्त स्वर 'कुरुक्षेत्र' प्रबंध-काव्य में सुनाई पड़ता है, जहाँ कवि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र से भी ऊँचा उठकर युद्ध जैसी अंतर्राष्ट्रीय समस्या के समाधान में प्रयत्नशील दिखाई देता है। कवि की यही ओजस्वी भावना 'रश्मिरथी' प्रबंध-काव्य में महावीर कर्ण के उस उपेक्षित एवं तिरस्कृत जीवन को अंकित करने में अभिव्यक्त हुई, जो कलंकित मानवता का मूक प्रतीक बनकर हमारे सामने खड़ा है।

'रश्मिरथी' के उपरांत कवि दिनकर की कविताओं के कई संकलन निकले, जिनमें से 'दिल्ली', 'नीम के पत्ते', 'नीलकुसुम', 'चक्रवाल', 'कविश्री', 'सीपी और शंख', 'नए सुभाषित' तथा 'परशुराम की प्रतीक्षा' प्रसिद्ध है। इन सभी संकलन की कविताओं का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि कवि ने स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरांत देश की स्थिति पर भली प्रकार दृष्टिपात किया है और जन-जीवन में व्याप्त आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विषमताओं का चित्रण किया है। दिनकर ने मनुष्य की क्षमताओं में गहरा विश्वास रखते हुए कहा है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं होता है।

"जीवन उनका नहीं युधिष्ठिर, जो उससे डरते हैं,
वह उनका जो चरण रोप, निर्भय होकर लड़ते हैं।"

उदाहरण के लिए परशुराम की प्रतीक्षा में वह दिल्लीवासी नेताओं को ललकारते हुए कहते हैं–

"सकल देश में हालाहल है, दिल्ली में हाला है।
दिल्ली में रोशनी, शेष भारत में अँधियारा है।
मखमल के पर्दों के बाहर, फूलों के उस पार,
ज्यों का त्यों खड़ा आज भी मरघट-सा संसार।।"

दिनकर के कृतित्व के मुख्य आधार उनके प्रबंध काव्य हैं। उनके अभी तक तीन प्रमुख काव्य प्रकाशित हुए हैं–'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी' और 'उर्वशी'। ये तीनों काव्य कविवर दिनकर की सम-सामयिक विचारधारा के साथ-साथ उनके जीवन-दर्शन के भी द्योतक हैं और इनमें युग का प्रतिबिंब भी पूर्णतया परिलक्षित होता है।

मनुष्य का दुर्भाग्य यह है कि वह जो कुछ सोचता है, उसे जी नहीं पाता, आचरणों में उतार नहीं पाता। चेतना का अभियान पशुता से देवत्व की ओर है। आदमी पशु और देवता के बीच की कड़ी बनकर ठहरा हुआ है। मन से मनुष्य कभी-कभी देवता से भी आगे बढ़ जाता है। किन्तु उसके शरीर में पाशविक वृत्तियाँ अब भी भरी हुई हैं। मनुष्य की वास्तविक उन्नति तब होगी, जब बौद्धिक उन्नति के साथ उसके चरित्र की भी उन्नति हो।

जिस सभ्यता में हम जी रहे हैं, उसका भी अभिशाप यही है कि उसका बुद्धि-पक्ष जिनता अधिक विकास पा गया है, उसके हृदय-पक्ष का उतना विकास नहीं हो पाया है। कहना तो यह चाहिए कि इस सभ्यता में बुद्धि का जितना ही विकास होता है, हृदय का जल उतना ही कम होता जाता है। नगरों की जितनी उन्नति होती है, ग्राम उतने ही उपेक्षित होते जाते हैं। होना यह चाहिए कि मनुष्य की मानसिक शक्तियाँ उसके हार्दिक गुणों (दया, मैत्री, त्याग, परोपकार) के अधीन रहें।

अधिक आवश्यकता क्या है? मनुष्य के ज्ञान में वृद्धि अथवा उसके आचरण में सुधार? आदमी का ज्यादा जानना या उसका भली जिंदगी बसर करना? कोरे ज्ञान की निंदा करते हुए महात्मा कबीर ने कहा था, "पंडित से गधा भला"। जिन आविष्कारों से मनुष्य की शान्ति खतरे में पड़ती है, वे अविष्कार बुद्धि की आतिशबाजी के खेल हैं, उनसे मनुष्य के गौरव में वृद्धि नहीं होती।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि रामधारी सिंह 'दिनकर' का समय बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध का है जहाँ कई दार्शनिक विचारों में विरोधाभास अपने चरम पर थी। एक ओर गाँधी, टैगोर, अरविंदो व राधाकृष्णन अपने विचारों से लोगों को प्रभावित कर रहे थे तो दूसरी ओर पश्चिम के कई आधुनिक विचारक जैसे-मार्क्स, डार्विन, स्पेंसर, फ्रॉयड, रसेल आदि ने भारतीय विद्वानों को नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया। इन परिस्थितियों में 'दिनकर' के विचार काफी महत्वपूर्ण माने जा सकते हैं। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से स्वतंत्रता पूर्व एवं उसके पश्चात् भी कई ज्वलंत मुद्दों पर अपने विचारों से लोगों को काफी व्यापक रूप से प्रभावित किया। उनके विचार आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना कि पहले था बल्कि वर्तमान समय में जिस प्रकार का माहौल विद्यमान है, ऐसी परिस्थिति में दिनकर जी की रचनाओं की उपयोगिता और भी अधिक बढ़ जाती है। आज भी समाज में असमानता, निरक्षरता, गरीबी, शोषण व अत्याचार विद्यमान है। अत: इन समस्याओं का समाधान हम सभी को एक साथ मिलकर करना चाहिए तभी सच्चे अर्थों में हम दिनकर जी को श्रद्धांजलि दे पाएँगे क्योंकि जिस समाज की कल्पना उन्होंने की थी उस समाज का निर्माण अभी तक संभव नहीं हो पाया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि हम सभी भारतवासी पूरी लगन, मेहनत व कर्मठता से इस दिशा में प्रयत्न करें तो निश्चित रूप से हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

ejfi; dfo

– *जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी*

दिनकरजी 'विशाल भारत' में चमक रहे थे। बस समझिये तभी से दिनकरजी से मुलाकात हो गई। यद्यपि वास्तविक मिलना 1944 में पटना में हुआ। उन दिनों मैं टीकमगढ़ में बनारसीदास जी के साथ काम कर रहा था और जब हिंदी पत्रकार संघ की ओर से कुछ जानकारी एकत्र करने के लिए पटना गया तो दिनकरजी से भी मिला। उस समय दिनकरजी ने वही आत्मीयता दिखाई, जो एक गुरुभाई में होनी चाहिए। यह आत्मीयता 19 अप्रैल, 1974 तक कायम रही, जबकि मैं उनसे मिलने उनके तत्कालिक निवास स्थान; 116, मालचा मार्ग; पर गया था और उनसे कसकर दो घंटे बातचीत की थी।

दिनकरजी ने बहुत लिखा है लेकिन उनका 'हिमालय और 'कस्मै देवाय' 'विशाल भारत' में छपते ही मन में बैठ गए थे। मैं मुख्यतया उनकी वीरतापूर्ण कविताओं का भक्त रहा हूँ और यह भक्ति बहुत पुरानी है। जिन दिनों दिनकर को 'विशाल भारत' हिंदी जगत के समक्ष उपस्थित कर रहा था, छायावाद का दौर-दौरा था। प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी वर्मा साहित्य गगन पर छाये हुए थे। उस छाया से दूर थोड़ा-थोड़ा प्रकाश टिमटिमा रहा था, जिसके प्रतीक थे-माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सियारामशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी। मैथिलीशरण गुप्त को मैंने इस सूची में नहीं लिखा है, क्योंकि उन्होंने अपना स्थान बना लिया था और उनकी किसी कवि से टकराहट नहीं थी। यह बात दूसरी है कि बाज-बाज काशी प्रयाग वाले, दूसरे स्थानों पर जन्मे लोगों को कवि या लेखक मानें ही नहीं और शायद यह परंपरा अभी समाप्त नहीं हुई है।

सन 1952 में जब दिनकरजी राज्यसभा के सदस्य होकर आए तो उन दिनों राज्यसभा में चमकना आसान काम नहीं था। दिनकर जी साहित्यकार थे, इसलिए लोग समझते हैं कि वे राष्ट्रपति द्वारा नामांकित होकर आए थे। पर ऐसी बात नहीं थी, वे बिहार विधानमंडल द्वारा कांग्रेस के कोटे से निर्वाचित सदस्य होकर आए थे। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार श्री बनारसीदास चतुर्वेदी विंध्यप्रदेश से निर्वाचित हुए। उन दिनों राज्यसभा में श्री मैथिलीशरण गुप्त, आचार्य नरेंद्र देव, पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति और श्री बनारसीदास चतुर्वेदी जैसे हिंदी के विद्वान थे। बाद में तो श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' भी राज्यसभा के सदस्य हो गए थे। दूसरी तरफ प्रसिद्ध अभिनेता पृथ्वीराज कपूर, प्रसिद्ध नर्तकी रुक्मिणी अरुंडेल तथा देश के अत्यंत वरिष्ठ समाजसेवक, राजनीतिज्ञ और वक्ता सदस्य थे। सभापति थे श्री राधाकृष्णन। उस समय राज्यसभा भारत की विद्वज्जनमंडली का सही प्रतिनिधित्व करती थी। मराठी के प्रसिद्ध नाटककार मामा वरेरकर, सिंधी नेता श्री एन. आर. मलकानी जैसे एक से एक धुरंधर राज्यसभा में विद्यमान थे। फिर भी, जब दिनकरजी बोलते थे तो उनको सारा सदन दत्तचित्त होकर सुनता था और अंग्रेजी पत्रों के संवाददाता भी उनके भाषण के नोट लेने की कोशिश करते थे।

अप्रैल का महीना था। उन दिनों सूर-जयंती की तिथि आ पड़ी थी। श्री गोपाल प्रसाद व्यास ब्रज साहित्य मंडल के मंत्री थे। वे दिनकरजी को महाकवि सूरदास के जन्मस्थान सीही ले गए। वहाँ दिनकरजी ने जो भाषण दिया, उसकी मैंने दैनिक 'हिंदुस्तान' में रिपोर्ट की थी। वैसे भी राज्यसभा के लिए, जो उन दिनों राज्यपरिषद् कही जाती थी, मैं दैनिक 'हिंदुस्तान' के लिए रिपोर्ट करता था और यह क्रम चार साल चला। उस रिपोर्ट में मैंने दिनकरजी के नाम के पहले 'राष्ट्रकवि' लिख दिया था। दूसरे दिन जब राज्यसभा में उनसे भेंट हुई तो स्वयं उन्होंने कहा कि यह क्या लिख दिया 'राष्ट्रकवि तो दद्दा हैं'। तो मैंने कहा कि हैं तो आप उपराष्ट्रकवि, लेकिन साहित्य-क्षेत्र में कोई सत्ता का सवाल नहीं है, दो राष्ट्रकवि भी हो सकते हैं। फिर वह शब्द कुछ चल गया। उन दिनों संसदीय हिंदी परिषद के जलसों में दिनकरजी कविता पढ़ते थे। लालकिले के कवि सम्मेलनों में कविता पढ़ते थे और चाहे संसद सदस्यों का समूह हो, या लालकिले की साधारण जनता, सभी में समान रूप से प्रभावशाली सिद्ध होते थे। परंतु इस काल में वे कवि से अधिक हिंदी नेता हो गए थे।

राष्ट्रपति ने 7 जून, 1955 को एक राजभाषा आयोग की स्थापना की। इस आयोग में इक्कीस सदस्य थे, जिनमें राज्यसभा के कई वरिष्ठ सदस्य, जैसे डॉ. पी. सुब्बारायन, प्रसिद्ध हिंदी प्रचारक श्री एम. सत्यनारायण, लोकसभा के उपाध्यक्ष श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर, पं. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और श्री जयनारायण व्यास जैसे लोग थे। इस आयोग की नियुक्ति के कुछ दिनों बाद 2 सितम्बर, 1955 को उसके एक सदस्य डॉ. अमरनाथ झा की मृत्यु हो गई और 25 नवम्बर, 1955 को राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने उनके स्थान पर रामधारी सिंह दिनकर को आयोग का सदस्य नियुक्त किया। श्री बी.जी. खेर के नेतृत्व में इस आयोग ने 31 जुलाई 1956 को अपनी रिपोर्ट दी। इस रिपोर्ट पर डॉ. सुब्बारायन और डा. सुनीतिकुमार चटर्जी ने अपना विमति पत्र दिया और इस प्रकार हिंदी के प्रचार के विरुद्ध जो वातावरण बना, उसका सूत्रपात हुआ। इस कारण आयोग के सदस्यों पर बहुत ही जिम्मेदारी का काम था। इस दौरान दिनकरजी हिंदी आंदोलन के एक ऐसे नेता के रूप में उदित हुए जो सभी प्रांतों और भाषाओं के लोगों को साथ लेकर चलना चाहते थे।

जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो दिनकर की रचनाएँ 'परशुराम की प्रतीक्षा' संग्रह के रूप में आईं। ये कविताएँ 1962 के दो-तीन महीनों में ही लिखी गईं थीं और जब 9 जनवरी, 1963 को दिनकर जी ने इसकी भूमिका लिखी, तो लिखा था:

'तांडवी तेज फिर से हुंकार उठा है,
लोहित में था जो गिरा, कुठार उठा है।'

इस संग्रह की एक कविता में उन्होंने लिखा, जो स्वयं उनके लिए उद्‌बोधान था:

अरे उर्वशीकार!
कविता की गरदन पर धरकर पाँव खड़ा हो।
हमें चाहिए गर्म गीत उन्माद, प्रलय का,
अपनी ऊँचाई से तू कुछ और बड़ा हो।
कच्चा पानी ठीक नहीं, ज्वार ग्रसित देश है।
उबला हुआ समुष्ण सलिल है पथ्य,
वही परिशोधित जल दे।
जाड़े की है रात, गीत को गरमाहट दे,
तप्त अनल दे।'

कवि सम्मेलनों में यही कविताएँ जमती थीं। दिनकरजी को पहले साहित्य-अकादमी का और बाद में 'उर्वशी' पर ज्ञानपीठ का पुरस्कार मिला। लेकिन यह कहना ठीक नहीं है कि इन रचनाओं, 'परशुराम की प्रतीक्षा', के कारण दिनकरजी को राज्यसभा में नहीं नामांकित किया गया।

सन 1964 में उन्हें राज्यसभा में बारह वर्ष हो जाते, परंतु उन्होंने 1963 में ही भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति का दायित्व सँभालने के लिए राज्यसभा से त्यागपत्र दे दिया। भागलपुर वे अधिाक दिन नहीं रह सके। पर जब उन्होंने विश्वविद्यालय छोड़ा, तब तक उनके स्थान पर दूसरे सदस्य निर्वाचित किए जा चुके थे। कुछ समय बाद ही उन्हें भारत सरकार का हिंदी सलाहकार नियुक्त कर दिया गया और वे 1971 तक इस पर बने रहे।

'दिनकर' हिंदी सलाहकार क्यों नहीं रहे, इसकी भी कथा विचित्र है। दिनकरजी ने एक प्रस्ताव किया कि मंत्रियों के नाम हिंदी रूप में लिखे जाएँ, यानी अगर 'मिनिस्टर ऑफ एग्रीकल्चर' लिखना हो तो अंग्रेजी में रोमन अक्षरों में 'कृषि मंत्री' लिखा जाए। इस प्रस्ताव को प्रधानमंत्री की स्वीकृति मिल गई थी, लेकिन इसके परिपालन में एक गलती हो गई। वह यह कि लोकसभा और राज्यसभा में सदस्य जो प्रश्न भेजते हैं, उसमें भी उनके प्रश्नों में मंत्रियों के पद नाम हिंदी वाले कर दिए गए और लिखावट अंग्रेजी की रही। इस पर लोकसभा में द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम के सदस्यों ने यह आपत्ति उठाई कि वे समझ ही नहीं सकते हैं कि कौन-सा मंत्री उन्हें उत्तर देगा। कफी शोर शराबा हुआ, जिसके बाद यह संशोधन हुआ कि उसके नीचे हिंदी में हिंदी पद नाम दिया जाने लगा। जिस उद्देश्य से यह प्रथा चालू की गई थी कि लोगों को 'प्राइम मिनिस्टर' की बजाय 'प्रधानमंत्री' और 'रक्षामंत्री' का अभ्यास पड़े, वह पूरा नहीं हुआ। दिनकरजी की कोई मंशा नहीं थी कि संसद में भी यह शब्दावली चले, वे तो सरकारी कामकाज में इसे चलाना चाहते थे। परंतु किसी संयुक्त सचिव के अति उत्साह से ऐसा हो गया। यह घटना तब हुई जब दिनकरजी का कार्यकाल समाप्त हो रहा था और यह प्रश्न विचाराधीन था कि उनका कार्यकाल बढ़ाया जाए या नहीं। यह वह समय भी था, जब उनके बड़े पुत्र रामसेवक सिंह की मृत्यु हो गई थी और दिनकरजी पर उनके परिवार का पूरा दायित्व आ गया था। इसी बीच लोकसभा के नए सदस्यों ने एक वरिष्ठ नेता के आदेश पर एक ज्ञापन पर हस्ताक्षर कराये, जिसमें बहुत-से विभागों के बारे में यह शिकायत की गई थी कि उनमें हिंदी का काम नहीं हुआ। उधर दिनकरजी कई बार प्रधानमंत्री से कह चुके थे कि उनकी तबीयत खराब है और प्रधानमंत्री ने भी उनसे कहा था कि आप इलाज कराने यूरोप चले जाइये। इन सारे उपक्रमों का परिणाम यह हुआ कि प्रधानमंत्री ने तय किया कि अब वे ऐसे पद पर किसी राजनीतिज्ञ के स्थान पर सरकारी अफसर रखें, जिससे कि कोई पार्टीबंदी बने ही नहीं और श्री जगदीश चंद्र माथुर उनके स्थान पर हिंदी सलाहकार नियुक्त किए गए।

दिनकरजी की मुझ पर व्यक्तिगत कृपा रहती थी और बहुत-सी समस्याओं पर विचार-विनिमय भी होता था। जब मैं 'समाचार भारती' में पहुँचा तो उन्होंने मुझे आशीर्वाद का एक पत्र भेजा था फिर वे मिले और उन्होंने कहा कि मेरे मित्र एक दैनिक निकालना चाहते हैं, अगर तुम उसका सम्पादक होना स्वीकार करो तो। श्रीरामनाथ गोयनका 'जनसत्ता' को दिल्ली में फिर से निकालना चाहते थे, परंतु मुझे समाचार भारती में आये दो महीने भी नहीं हुए थे, इसलिए मैंने क्षमा माँग ली और कहा कि यह अच्छा नहीं लगता। तब उन्होंने अशोकजी से कहा, उनको भी छुट्टी नहीं मिली और न ही वह पत्र दिल्ली से निकला।

दिनकरजी की पौत्री के विवाह के अवसर पर उनके बड़े-बड़े मित्र, प्रशंसक दूर-दूर से आए थे। उसके बाद दिनकरजी दिल्ली में ही रह रहे थे। एक दफा उनसे मिला भी था। एक दिन संसद के केंद्रीय कक्ष में भेंट हो गई। वे जा रहे थे कि बैठ गए और लगभग दो घंटे तब बातें होती रहीं। उस दिन उन्होंने एक बात कही जिससे लगा कि वे वास्तव में अपने को खोखला महसूस करते हैं। उन्होंने कहा कि अब सब पौरुष समाप्त हो गया है। उन्होंने अपनी डायरी में मेरा दो-तीन बार जिक्र किया था, मैंने उनसे कहा कि आप आत्मकथा क्यों नहीं लिख देते, तो वे बोले कि सच्ची आत्मकथा कोई नहीं लिख सकता, सब अपनी मूर्ति बना-सँवारकर दिखाना चाहते हैं। हाँ, मैं एक पुस्तक लिख रहा हूँ- मेरे समकालीन, उसमें कुछ लोगों के चरित्र आ जाएँगे। दूसरे दिन, यानी 18 अप्रैल को स्टार (पब्लिकेशन्स) वालों के यहाँ उन्होंने जैसे ही मुझे देखा, दौड़कर मेरे पास आए और बोले-कि तुम नाम दो तो मैं एक पत्र निकालूँ। मैंने उनसे कहा, कल मिलूँगा। दूसरे दिन सवेरे उनसे मिलने गया तो उन्होंने योजना बताई कि वे एक साप्ताहिक पत्र निकालना चाहते हैं। मैंने उनसे कहा कि अब 'लोकराज' निकाल दिया है, दूसरे पत्र में जाना तो आसान नहीं है। आप इसी में जो लिखना चाहें, लिख दें। तब वे बोले कि नहीं, नई दिल्ली में ठहरने के लिए कोई प्रबंध होना चाहिए। तुम चार आदमी बताओ, एक अगर लाइट हो तो तीन पेट्रोमेक्स ही सही, काम तो करें। मैंने उन्हें पत्र-संचालन की कठिनाइयाँ बताईं तो उन्होंने कहा कि लाभ-हानि तो एक दूसरे सज्जन की होगी। बाद में पता लगा कि श्री रामनाथ गोयनका के सहयोग से वे पत्र निकालने वाले थे। पर साथ-साथ यह भी कहते जाते थे कि यह न बना तो मै संन्यास ले लूंगा। क्या मालूम था कि यह आखिरी मुलाकात होगी। वह ठहाका, वह जोश के साथ बातें, अब केवल याद करने भर के लिए रह जाएँगी।

कलम, आज उनकी जय बोल....

- गिरीश पंकज

जिसने खाए जख्म हमेशा, मगर न्याय का साथ दिया।
गिरते लोगों को बढ़कर भी, फौरन अपना हाथ दिया।
जिसने सुन्दर प्रश्न उठाए, खोली अन्यायी की पोल।।
कलम, आज उनकी जय बोल

जो है पंथी सत्य-मार्ग के, करुणा के है जो भण्डार।
जो मानवता के पूजक है, ये धरती के हैं शृंगार।
जहां कहीं अन्याय दिखे तो रक्त भी जिनका जाए खौल।।
कलम, आज उनकी जय बोल

चाटुकार बढ़ गए जहां में, लेकिन जब खुद्दार मिले,
ऐसे ही लोगों को अब तो, इस दुनिया का प्यार मिले,
जन-गण-मन के हैं जो नायक, जो समझे मिट्टी का मोल।
कलम, आज उनकी जय बोल

जो सत्ता के ही गुण गाते, नहीं कलम के अधिकारी।
जो विलास करती है केवल, वो कविता है हत्यारी।
नवजीवन के जो उन्नायक, गढ़े नया सुन्दर भूगोल।।
कलम, आज उनकी जय बोल

जो 'दिनकर' के जैसा रचता, जिसमें ताप 'निराला' का।
जिसमें है 'नज़रुल' समाया, वही कवि है ज्वाला का।
जिनके लिए है काव्य-साधना, नहीं मसखरी या कल्लोल।
कलम, आज उनकी जय बोल।

(राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की एक कविता की पंक्ति से उत्प्रेरित होकर)

jk"Vdfo jke/kkjh fl g^fnudj*

– रेणु बाला सिन्हा

राष्ट्रीय भावों के तुरंग पर सवार होकर हिन्दी के साहित्याकाश में लगभग आधी शताब्दी तक आलोकित होने वाले रामधारी सिंह दिनकर का आविर्भाव हिन्दी में छायावादोत्तर युग की सबसे बड़ी घटना है। दिनकर का स्थान उन कवियों में सबसे ऊँचा है जिन कवियों ने हिन्दी कविता को छायावाद की कुहेलिका से बाहर निकालकर उसे प्रच्छन्न आलोक के देश में पहुँचाया, उसमें जीवन का तेज भरा, उसे सामाजिक प्रश्नों से उलझना सिखाया। दिनकर का उदय राष्ट्रीय भावों की उस धारा से हुआ जो भारेतन्दु हरिश्चन्द्र, मैथिली शरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान तथा माखनलाल चतुर्वेदी से बहती आ रही थी। दिनकर को संस्कृत, बंग्ला तथा उर्दू का भी पर्याप्त ज्ञान था। इसीलिये एक ओर इनमें जहाँ कालिदास और रवीन्द्रनाथ का प्रभाव पहुँचा, वहाँ दूसरी ओर काजी नज़रूल इस्लाम का आक्रमक और संक्रामक सिंहनाद भी इनकी वाणी में आ मिला। फलस्वरूप दिनकर की वाणी में ओज, उत्साह और श्रृंगार का अद्‌भुत समन्वय हुआ। दिनकर ने हिन्दी कविता कामिनी को कल्पना और दर्शन के दुर्गम दुर्ग से निकालकर जन-जीवन के बीच लाकर खड़ा किया और कवि तथा पाठक-श्रोता के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित किया। जनता की भाषा में युग का उद्‌गार व्यक्त करने के कारण ही वे अपने युग के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हो गये।

आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण दिनकर ने स्नातक के पश्चात् बरबीघा उच्च विद्यालय में अध्यापक का पद संभाला और एक साल बाद वे बिहार सरकार के अधीन सब रजिस्ट्रार हो गये। 1950 में लंगट सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर में हिन्दी के विभागाध्यक्ष बनें और वहीं से 1965 में भारत सरकार के स्वराष्ट्र मंत्रालय में हिन्दी सलाहकार नियुक्त हुये। दिनकर केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों द्वारा पुरस्कृत भी हो चुके थे। उन्हें भारत सरकार ने 'पद्‌मभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया और भागलपुर विश्वविद्यालय ने डी॰ लिट॰ की उपाधि देकर सम्मानित किया। उनकी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' वर्ष की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक के रूप में साहित्य अकादमी से पुरस्कृत हो चुकी थी।

साहित्य में दिनकर का कण्ठ विद्यार्थी जीवन से ही फूटने लगा था। धीरे-धीरे

उनकी कवित्व शक्ति विकसित होती गयी। 'रेणुका' के प्रकाशन से दिनकर को राष्ट्रीय ख्याति मिली। फिर 'नीलकुसुम', 'रसवन्ती', 'हुंकार', 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी', 'उर्वशी', 'परशुराम की प्रतीक्षा' आदि उच्च स्तरीय पुस्तकें प्रकाशित हुई जिसने कवि को अमरता के सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। दिनकर की संपूर्ण काव्य रचना को दो धाराओं में बाँटना चाहिये। एक धारा राष्ट्रीय क्षितिज पर क्रांति का शंखनाद फूँकती है तो दूसरी धारा में कोमल भावों की सौंदर्य और श्रृंगारपरक अभिव्यक्ति हुई है।

दिनकर राष्ट्रीय भावनाओं के ओजस्वी गायक हैं। इस भाव धारा का सबसे सबल उद्‌घोष 'हुंकार', 'कुरुक्षेत्र' और 'परशुराम की प्रतीक्षा' में हुआ है। 'हुंकार' में कवि ने पराधीन भारत के विद्रोही भावों को कविता की वाणी दी है। 'रेणुका' उनकी जवानी का उद्‌घोष है जो 'कुरुक्षेत्र' में आकर पूर्णता प्राप्त करता है। यह धारा रेणुका, हुंकार और कुरुक्षेत्र से होती हुई परशुराम की प्रतीक्षा में पर्यावसित हुई है। हुंकार की अनेक कविताओं में तत्कालीन युवा मानस की अदम्य उमंग और वीरता ओजस्वी वाणी में अभिव्यक्त हुई है। कुरुक्षेत्र का प्रकाशन द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद हुआ था, इसीलिये कवि ने इसमें हिंसा-अहिंसा को लेकर युद्ध की सार्थकता और निरर्थकता पर विचार किया है। दिनकर जीवन और साहित्य दोनों ही धरातलों पर शोषण और अन्याय के विरोधी रहे हैं। 'कुरुक्षेत्र' में दिनकर ने अपने इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कहा है–

क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो
उसको क्या जो दन्तहीन, विष रहित, विनीत सरल हो

उन्होंने पराधीन भारत को स्वाधीनता के लिये युद्ध करने के लिये दिल खोलकर ललकारा। 'आग की भीख', 'हिमालय', 'सरहद से' आदि कविताओं में उन्होंने भारत के जनमानस को क्रांति की ज्वाला में झोंक दिया 'समर शेष है' तथा 'परशुराम की प्रतीक्षा' स्वाधीनता के पश्चात् लिखी गयी कविताएँ हैं जिनमें कवि ने क्रांति कुमारी का खुलकर आह्‌वान करते हुये घोर गर्जना की है–

'उठ भूषण की भाव तरंगिनी,
लेनिन के दिल की चिंगारी,
युग-मर्दित यौवन की ज्वाला,
जाग-जाग ओ क्रांति कुमारी"

व्यवहारिक जीवन में दिनकर की सहानुभूति दीनों, उपेक्षितों के प्रति है। जब वे एक ओर धनपतियों के श्वानों की राजसी भोग भोगते और दूसरी ओर बालकों को माता के सूखे स्तन चूसते और जाड़े की रातों में ठिठुरकर प्राण गँवाते देखते हैं तो उनका खून खौल उठता है और वे इस व्यवस्था के विध्वंस के लिये अधीर हो उठते हैं–

'हटो व्योम के मेघ पंथ से,
स्वर्ग लूटने हम आते हैं।
'दूध-दूध' ... ओ वत्स!
तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं।"

दिनकर को केवल क्रांति का गायक, बवंडर का प्रेमी मानना ही उनका सही मूल्यांकन नहीं है। दिनकर के कवि व्यक्तित्व का विकास जिन दिनों हुआ, उन दिनों देश पराधीनता की पीड़ा से व्यथित था, अतएव कवि को अपने सुकुमार सपनों को छोड़कर खुद को लू-लपटों के हवाले करना पड़ा, पर उसकी कोमल भावनाएँ सर्वथा मरी नहीं। इनकी कुछ प्रारंभिक कविताओं में उनके कवि व्यक्तित्व की यह दुविधा, मार्मिकता से व्यक्त हुई है।

दिनकर ने एक ओर 'हुंकार', 'कुरुक्षेत्र', 'सामधेनी' और परशुराम की प्रतीक्षा जैसी ओजस्वी काव्यकृतियों की सृष्टि की है तो दूसरी ओर 'रसवन्ती', 'द्वन्तगीत', 'नीलकुसुम' और 'उर्वशी' की अत्यन्त कोमल, सुकुमार और रसदीप्त पंक्तियों की भी रचना की है। अपनी किशोरावस्था में दिनकर ने गाँव की हरी-भरी प्रकृति, लहराते हुये धनखेत, गदराई गंगा आदि को देखा था जिसका प्रभाव कवि के अचेतन मस्तिष्क पर चिरकाल तक बना रहा। 'नीलकुसुम' और 'रसवन्ती' का कवि जगह-जगह नारी सौंदर्य का पुजारी बन गया है। नारी सौंदर्य का लोहा मानते हुये 'रसवन्ती' में दिनकर ने स्वीकार किया है–

"तुम्हारी एक हँसी अनमोल,
हुई ऋषियों के तप का मोल।"

दिनकर की यह कोमलता और श्रृंगारिकता 'उर्वशी' में आकर दर्शन की ऊँचाई पा लेती है। 'उर्वशी' कामाध्यात्म की कविता है, यही उर्वशी का दर्शन है।

दिनकर मूलतः काव्य के कवि हैं। इनकी अधिकांश कविताएँ मुक्तकों के रूप में हैं। उनमें आवेगतत्व की मात्रा इतनी अधिक है कि वे प्रबंध के अनुशासन से नहीं बंध सकती। इन्होंने तीन प्रबंध काव्यों की रचना की है–'कुरुक्षेत्र' 'रश्मिरथी' और 'उर्वशी'। इसमें कुरुक्षेत्र तो एक प्रकार से प्रबंध है ही नहीं, क्योंकि उसमें प्रबंध के लिये पात्रों एवं घटनाओं का नितान्त अभाव है। उर्वशी का प्रबंध शिल्प कुरुक्षेत्र की अपेक्षा पुष्ट है, पर उसकी भी परिणति दुर्बल है। 'रश्मिरथी' इन दोनों काव्यों के बीच की रचना है। उसमें दिनकर ने महाभारत के एक उपेक्षित पात्र कर्ण की सहानुभूति देकर कुलीनता गर्व का खण्डन और व्यक्तित्व वीरता, दानशीलता, सत्यप्रियता आदि गुणों के समाज में प्रतिष्ठा करना चाहा है। 'रश्मिरथी' का प्रबन्धत्व उक्त दोनों काव्यों से अधिक सुगठित पर कवित्व की दृष्टि से दुर्बल है।

दिनकर की भाषा कई स्थलों पर गद्यात्मक हो गयी है। इनकी भाषा में एक ओर संस्कृत के शब्द भण्डार की गरिमा है तो दूसरी ओर उर्दू की सहज खानी और चुस्ती भी। उन्होंने भाषा की लाक्षणिकता का मनोरम विकास किया है। दिनकर में बिम्बविधायिनी शक्ति बहुत अधिक है। इन्होंने अपनी भाषा में सुषोधता का ध्यान सदैव रखा है। कवि ने स्वयं कहा है–मैं सौंदर्य से अधिक सुपुष्टता का प्रेमी हूँ। कविताओं में अनुभूतियों की बारीकियों या ऊँचे-ऊँचे भाव मुझे तभी जँचते हैं, जब वे अनुरूप शैली में स्वच्छता से व्यक्त किये गये हों। दिनकर की शैली एक सार्वजनिक मंच के प्रवक्ता की शैली है। कवि दिनकर और बच्चन को लक्ष्य कर उर्दू के एक शायर गोरा ने ठीक ही लिखा है।

'हिन्द में लाजवाब हैं दोनों
शायरे इन्कलाब हैं दोनों,
देखने में अगर्चे जर्रे हैं
वाकई आफताब हैं दोनों।"

पटल बाबू रोड, भागलपुर
(बिहार) पिन॰ कोड॰ 812001

I kdkj] fn0;] xkjo fojkV% fnudj

– **प्रो. दिलीप सिंह**

हिन्दी के एक सजग पत्रकार, अनूठे निबन्धकार और भाषा के अद्भुत चितेरे रामवृक्ष बेनीपुरी ने दिनकर के बारे में अपने भाव व्यक्त करते हुए एक पंक्ति लिखी है जिसका गूढ़ार्थ यह है कि दिनकर का कवि व्यक्तित्व उस अंगार की भाँति है जिस पर इंद्रधनुष खेल रहे हैं। एक ओर अंगार जैसी आंतरिक जलन और तपन जो युग की अनास्था और विकृतियों को भस्म कर देने को उद्यत है तो दूसरी ओर प्रकृति के संघात से उत्पन्न मनोहारी इंद्रधनुष, सुन्दर और संघर्ष का न जाने कैसा मेल? कैसे वह झूमता रहता है-मध्य आकाश; लड़ता और जूझता हुआ तेज और कड़ी बरखा की झड़ियों से। मिट जाने की अभिशप्त पर अपने क्षणिक अस्तित्व को बचा पाने को उद्यत। एकदम मनुष्य की तरह।

दिनकर का 'अंगार' और 'इंद्रधनुष' दोनों उनकी उद्दाम-भावनाओं का सार्थक प्रतीक है। यदि उद्दाम-भावनाओं की कसौटी पर दिनकर की कविताओं को कसा जाय तो उनमें एक तरह का आकुल विद्रोह है, हिला कर रख देने वाला विस्फोट भी है कहीं-कहीं। लेकिन इन सब के ऊपर है- जीवन की निर्बाध गति। भावों के इतने उद्दाम प्रवाह का कवि हिन्दी में कोई दूसरा नहीं है। कवि दिनकर के इस गुण को उनके साथी कवि-कथाकार भगवतीचरण वर्मा ने इन शब्दों में व्यक्त किया है- ''बरसाती नदी के प्रचंड प्रवाह में उसकी कला हरेक भावना को अपनी- तीव्र गति में समेटती चलती है। भावना है, लेकिन हर एक भावना जिंदगी की हामी है। उसमें जीवन की तीव्रता है, प्रखरता है।''

आग के साथ ही दिनकर मिट्टी के प्रखर गायक भी हैं। राष्ट्र-प्रेम, मनुष्य-प्रेम और आहत मानवता के प्रति उनका रूझान अटूट है। कहा जाय कि दिनकर की कविता यदि अपने युग का प्रतीक है तो वह खुद वर्तमान युग के कवि हैं। उनकी युगीन प्रासंगिकता का सबसे बड़ा प्रमाण है- सामाजिक विषमताओं के प्रति उनका आक्रोश और विद्रोह। यह बात उल्लेखनीय और दिनकर के वैशिष्टय को पुष्ट करने वाली भी है कि इस आक्रोश के लिए उन्होंने कहीं भी आरोपित विश्वासों, मान्यताओं या विचारधाराओं का सहारा नहीं लिया। दिनकर का कवि भी संघर्ष करता है पर अपने ढंग से। विचारधारा से बँधे-बँधे किसी भी आधुनिक कवि से कहीं अधिक 'संघर्ष-भाव' दिनकर के काव्य में

व्यक्त है। उनकी ढेरों कविताएँ यह जताती हैं कि संघर्षों से उन्हें मोह है। अपनी इसी निजता के कारण संघर्ष की कटुता से दिनकर का कवि व्यक्तित्व कहीं भी विशृंखल या लक्ष्य-भ्रष्ट नहीं हुआ हैं कहीं कठोर अवश्य हो गया है कि मिट्टी ठीक से पक जाय और आकृति छिटके-टूटे नहीं।

दिनकर की यह कठोरता उनके काव्य की चिरन्तन प्राण शक्ति है। इतना ही नहीं यही उनकी अडिग आस्था का सम्बल भी है। यह आस्था ही दिनकर को उन्मुक्त और साहसी बनाए हुए है। कला का साज-शृंगार उनमें नहीं है तो उनकी इसी 'कठोरता' के चलते। उनके एक अन्य साथी कवि नरेंद्र शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि-''अनुभूति जनित कठोर भावना का तीव्र प्रवाह ही दिनकर का क्षेत्र है।'' सियाराम शरण गुप्त के इस उद्धरण के आलोक में दिनकर-काव्य की परख करें तो हिन्दी कविता के इतिहास में उनकी अद्वितीयता को समझा जा सकता है - *'रस कठोर में भी होता है। सब कोमल पदार्थ सुस्वादु नहीं होते।'* (कविता के नये प्रतिमान: नामवर सिंह के हवाले से)

'आग' और 'मिट्टी' के ताप में पककर दिनकर की कविताएँ 'लोहा' बनकर टंकार करती हैं। इस टंकार का प्रमुख अवयव है दिनकर का ओज। ओज के क्षेत्र में दिनकर अद्वितीय हैं। दिनकर के भावोद्गार में ओज की संरचना स्वत: बनती चली गई है। यही वजह है कि दिनकर का 'लोहापन' ही उनकी कविताओं में क्रांति का आह्वान करने वाला बन सका है। दिनकर की क्रांति रचनात्मक है। उनकी रचनात्मक क्रांति का तात्पर्य परंपरा को संजोते हुए बुद्धि की संकीर्णता और विवेकहीनता को चुनौती देना है। कुछ इस तरह कि राष्ट्रीय-चेतना, समाजिक-विकृतियाँ, मानवीय सम्मान और रचना एक-दूसरे की आँख में आँख डालकर देख सकें। पर उन्हें विकृति और निराशा का कवि मान लेना भारी भूल होगी। यह अवश्य कहा जा सकता है कि 'दिनकर उस विनाश या क्रांति के प्रतीक हैं जो निर्माण के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।' (बच्चन)। दिनकर का टकराव 'सीधा भावोद्गार' नहीं है जिसे शुक्ल जी 'काव्य शिष्टता' के विरूद्ध मानते हैं (संदर्भ: नामवर सिंह, वही) बल्कि उनकी हुंकार, दर्प और दलन को पिघला कर एक बदला रूप देने को कवि-कंठ से गरज उठी है। आज की कविता दिनकर से सीख ले सकती है; वह कविता जो युग की अनास्था और ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों की भाँति ही अनर्गल और निष्प्राण हो चुकी है। लोहा बनने के लिए जो आँच और धैर्य चाहिए, वह इनमें कहाँ? अंधेरों और संकटों से घिरी ये कविताएँ न तो रोशनी का पता देती हैं और न ही खतरों से बचने का रास्ता ही सुझा पाती हैं। प्रगतिशीलता के आडंबरी पाश से बँध कवि और आलोचक दोनों ही अपने-अपने को 'युग निर्माता' घोषित करने में रत हैं। लोहे की टंकार का सही स्वर ये क्या जानें? दिनकर की कविता का एक-एक शब्द बोलता है तो इसलिए कि उनकी कविता तरह-तरह से यही कहती है कि - जीवन महान है, और कुछ नहीं।

दिनकर परम्परा और परिवर्तन दोनों को महत्व देने वाले कवि हैं। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' (1955) की प्रस्तावना में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने दिनकर के इतिहास-बोध में इन दोनो को लक्षित करते हुए लिखा है कि इतिहास के अन्दर हम दो सिद्धातों को देखते हैं - सातत्य का सिद्धांत और दूसरा परिवर्तन का। दोनों परस्पर विरोधी नहीं। सातत्य के भीतर भी परिवर्तन का अंश है। इसी प्रकार परिवर्तन भी अपने भीतर सातत्य का कुछ अंश लिए रहता है। दिनकर की कविता इस ऐतिहासिक यथार्थ का सच्चा प्रतिबिम्ब है। उनके काव्य में समस्त मानवीय व्यवहार आ जाते हैं। मार्क्सवाद की सीमा का उल्लेख करते हुए इसी प्रस्तावना में नेहरू जी ने यह कहा कि यह मानना तो ठीक है कि आर्थिक उन्नति जीवन और प्रगति का बुनियादी आधार है, लेकिन जिन्दगी वहीं तक खत्म नहीं होती। वह आर्थिक विकास से कहीं ऊँची चीज है। दिनकर एक कवि के रूप में इस सत्य को पहचान कर चले। वह अतीत में भी गए तो जीवन तलाशने और वर्तमान में भी वे निरन्तर जिन्दगी को पकड़ते-फटकते रहे। दिनकर ने अपने को बदला भी। खुद के भीतर झाँकने से अक्सर कवि डरते हैं। कभी-कभार झाँक भी लें तो कमजोरी के इजहार में झिझक जाते हैं। अपने कमियों को दिनकर ने 'धूप और धुआँ (1953) के समय ही पहचान लिया था और अपनी 'तर्ज' बदल दी थी। इस संग्रह के 'दो शब्द' में उनकी स्पष्टोक्ति है- मैं देखता हूँ कि इधर मेरे लिखने की तर्ज कुछ बदली हुई है और यह नयी तर्ज मेरी वर्तमान मनोदशा के मुआफिक आ रही है। यह प्रयोग है, या प्रगति

मैं नहीं बता सकता। निश्चयपूर्वक मैं इतना ही कह सकता हूँ कि आजकल इसी लहजे में बोलने में कुछ संतोष का अनुभव करता हूँ। आज के कवि में 'टोन' और 'तर्ज' बदलने का साहस चूक-सा गया है। अगर कहीं बदले भी तो डंके की चोट पर इसकी स्वीकारोक्ति की उम्मीद तो उससे कभी भी नहीं की जा सकती। अपने ही ढाँचों को तोड़े बिना कोई कैसे समर्थ कवि बन सकता है?

'उर्वशी-विवाद' और 'कुरुक्षेत्र' विमर्श के आधिक्य ने दिनकर के बदले तर्ज, तेवर और लहजे वाली कविताओं की ओर देखने का अवसर आलोचकों को कम ही दिया है। दिनकर की परख अधिकतर इन्हीं दोनों काव्य-कृतियों के आधार पर की गई है। हुंकार, नीम के पत्ते, दिल्ली (1956) की अनेकानेक कविताओं की ओर सम्यक दृष्टि अब तक नहीं डाली जा सकी है। उनके गद्य संग्रह 'मिट्टी की ओर' तथा आलोचना कृति 'शुद्ध कविता की खोज' के प्रकाश में दिनकर की इन कविताओं पर निगाह डालने की ज़रूरत है।

इन कविताओं में दिनकर 'पौरुष की पूँजीभूत ज्वाल' नजर आते हैं जो अपनी पहली व्यक्त आकांक्षा (कुरुक्षेत्र) 'चाहिए अंगार जैसी वीरता' को भाँति-भाँति से अभिव्यंजित करते हैं। इन कविताओं में राष्ट्रीयता, जीवन सत्य और जागरूकता का घनघोर भाव व्यक्त है। सौंदर्य की भ्रांति के प्रति के प्रति कवि की सजगता अब साफ शब्दों में सामने आने लगी है - सुन्दरता पर कभी न भूलो। शाप बनेगी वह जीवन में (हुंकार)। दिनकर की इन कविताओं का प्रत्येक शब्द जीवन-यथार्थ और देशगत स्थितियों को परखते हुए प्रकट हुआ है। यह भी स्पष्ट हो जाता है कि दिनकर उतप्त भावना से ओत-प्रोत कवि तो हैं, पर उसमें वे बह नहीं जाते, एक पैर उनका सदैव यथार्थ की भूमि पर जम कर अड़ा रहता है।

दिनकर के काव्य में मिट्टी, आग और लोहे की त्रिवेणी टंकार-सी गूँजती-हहराती प्रवाहित है। 'मिट्टी' वाली कविताएँ कृषक, मजदूर और दलित वर्ग के जीवन का मात्र अक्स ही नहीं है, उन्हें ललकारने और सामाजिक बदलाव में सहभागी बनने का आह्वान भी है। 'आग' वाली कविताएँ राष्ट्र-प्रेम के प्रचण्ड भाव से रची गई हैं जिनमें विंडबनाओं के सामने सीना खोले ललकार की मुद्रा में कवि अड़िग खड़ा है। 'लोहा' वाली कविताओं में परिवर्तन की अथक चाह, ओज और नाद का स्वर है जिसमें व्यंग्य भी तीखा है। दिनकर की 'हिमालय के प्रति' मिट्टी, आग और लोहे के अद्भुत मिलावट से बुनी हुई कविता है। भगवती चरण वर्मा ने इसे 'भक्ति की भावना की एक बेजोड़ कविता' कहा है। पर इस एक कविता में आग और लोहे का तत्व बड़े ही कौशल के साथ अंतरग्रंथित है।

'नई दिल्ली' दिनकर की उन कविताओं में प्रमुख है जिनमें देश की जमीन और इस जमीन पर बसने वाले पीड़ितों की तस्वीर है। दिनकर, भारतीय भाषाओं के अन्य कवियों की तरह (भारती, गुरुजाडा अप्पाराव) यह मानने वाले कवि हैं कि राष्ट्र लोगों से बनता है। उन लोगो से जो अपने श्रम से उसकी बुनियाद रखते हैं। और जब अपने श्रम कण से इस धरती को सिंचित करने और फ़सल उगाने वाले पीड़ाग्रस्त दीख पड़ते हैं तो दिनकर का कवि मन तड़प उठता है - धरती से व्याकुल आह उठी, मैं दाह भूमि की सह न सका। और इस असहनीय ताप की आँच में कवि को सत्ता और व्यवस्था (दिल्ली) की अमानवीय प्रकृति का हाथ दिखाई पड़ जाता है-

''आहें उठीं दीन कृषकों की
मजदूरों की तड़प-पुकारें
अरी! गरीबी की लोहू पर
खड़ी हुई तेरी दीवारें
कृषक-मेध की रानी दिल्ली।''

यह विडम्बना कवि को विचलित कर देती है। वह मानव-प्रेम को भूल चुके जनसमुदाय को ललकार उठता है। कृषकों-मजदूरों को 'देवता' का दर्जा देते हुए दिनकर ने धार्मिक पाखण्ड, सत्ता के गलियारों और जर्जर अंधेरी परम्पराओं पर गहरी चोट की है। 'मूरख' का सम्बोधन कवि की कठोरता का व्यंजक आधार बनकर इन पंक्तियों को ओजपूर्ण भाव से भर गया है -

''आरती लिए तू किसे ढूँढ़ता है मूरख
मन्दिरों, राजप्रासादों में, तहखानों में?
देवता कहीं सड़कों पर गिट्टी तोड़ रहे
देवता मिलेंगे कहीं खेतों में खलिहानों में।''
(सिंहासन खाली करो, कि जनता आती है)

नेता के भ्रम में फंसी और उसकी चालों में उलझी जनता से भी कवि ने श्रम पर भरोसा करने की अपील की है। अपने बाजुओं को तौलने को कहा है और धर्म के चंगुल से (अंधविश्वास, अंध आस्था) बाहर निकलने का हुंकार से भरा उलाहना दिया है–

''उठ मन्दिर के दरवाजे से
जोर लगा खेतों में अपने
नेता नहीं, भुजा करती है
सत्य सदा जीवन के सपने।''

मिट्टी से गहरे प्रेम ने दिनकर की इस तरह की कविताओं में बिना किसी नारे के उनकी प्रगतिशीलता को खुद-ब-खुद पारदर्शी बनाकर समक्ष रख दिया है। देश के आगे वे ऐसे धर्म और देवता को कुछ नहीं समझते जो दलित-पीड़ित जनता को भरमाए हुए है – ऐसा करने वाले नेताओं को भी वे नहीं बख्शते। 'भगवान की बिक्री' कविता में भी धर्मभीरू, जन को संबोधित करते हुए कहा है–

''साधना फकीरी और नहीं, खाओ, पियो
भगवान नहीं असली सोने का ढेला है''

धर्म को अफीम कह-कह कर कोसने वालों ने मिट्टी चमकीली और भुरभुरी बनाने की शपथ लेकर धार्मिक आडम्बरों पर इतना करारा प्रहार किया हो, कहीं नजर नहीं आता।

'संस्कृति के चार अध्याय' की प्रस्तावना में आजाद भारत में आम आदमी के भीतर पनप रहे दुचित्तेपन का आकलन करते हुए पंडित नेहरू ने लिखा है कि – 'बातें तो हम शांति और अहिंसा की करते हैं, मगर काम हमारे कुछ और होते हैं। सिद्धांत तो हम सहिष्णुता के बघारते हैं, लेकिन भाव हमारा यह होता है कि सब लोग वैसे ही सोचे, जैसे हम सोचते हैं, और जब भी कोई हम से भिन्न प्रकार से सोचता है, तब हम उसे बर्दाश्त नहीं कर पाते हैं।'' दिनकर ने आजादी का भोग करने और भ्रष्टचार को सत्ता का पर्याय बना देने वालों की जमकर खबर ली है। 'आजादी की पहली वर्षगांठ' जैसी कविता दिनकर जैसा उद्धत और मिट्टी से असीम प्यार करने वाला कवि ही लिख सकता था। राजनैतिक दोगलेपन पर भी इतनी तीखी चोट कम ही की गई है, क्योंकि हिंदी में 'राजनैतिक' कविताओं की कमी नहीं है। इतनी साफगोई और अप्रतीकात्मक तो शायद ही किसी और कविता में मिले

''टोपी कहती है मैं थैली बन सकती हूँ
कुरता कहता है मुझे बोरियाँ ही कर लो
ईमान बचा कर कहती हैं आँखें सबकी
बिकने को हूँ तैयार खुशी हो जो दे दो।''
''अफसोस, आदमीयत की ही कीमत न रही।''

स्वतंत्रता के बाद एक वर्ष में व्याप्त अपनी धरती, अपने देश के कटु-से-कटु सत्य को भी दिनकर ने उघाड़ कर नंगा कर देने में एकदम संकोच नहीं किया। वे धरती की छाती पर लगे इन घावों के भरने-पुरने का भरसक यत्न करते हैं। परिवर्तन की व्याकुल और उद्दाम अभिलाषा भी इस कविता में मुखरित है।

दिनकर का तप्त रूप उनके अग्नि-भाव को स्वर देने वाला है। जागृत होकर उठने, उठकर लड़ने और ज्वाला की तरह 'असह्य' को भस्म कर डालने की हुंकार से ये कविताएँ दग्ध हैं। बहुत सहन कर लिया पद-दलित जन ने। बड़े आदर्श जी लिए हम सब ने। काफी कुछ सह चुका जन-समुदाय, अमानवीय। अब और नहीं–

''तू मौन त्याग कर सिंहनाद
रे तपी! आज तप का न काल''

सिंहनाद के बाद दिनकर का कवि धधकते स्वरों में यह भी घोषणा कर देता है कि 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है। आम जन को साहस से भरने और इतिहास में उसके महत्व को 'हाहाकार' की तरह गुंजित करने वाली कविताएँ हिन्दी में नहीं के बराबर हैं। अब जनता आती है। (आने को कटिबद्ध होती है, जाग जाती है, ललकारती है,) तो उसकी --

''हुंकारों से महलों की नींव उखड़ जाती
साँसो के बल से ताज, हवा में उड़ता है
जनता के सम्मुख टिके, समय में ताव कहाँ
यह जिधर चाहती, काल उधर ही मुड़ता है।''

पौरुष के जागरण से ही विडंबनाएँ ढहती हैं। विपरीत को ललकार कर ही काल को अपने अनुकूल किया जा सकता है। यह बात 'राम की शक्ति पूजा' के समय राम द्वारा सागर का विनत भाव से आह्वान करने और इस विनय को सागर के न सुनने पर राम की पौरुषपूर्ण ललकार का असर दिनकर ने इन ओजपूर्ण शब्दों में अभिव्यक्त किया है–

''उत्तर में जब एक नाद भी
उठा नहीं सागर से
उठी अधीर धधक पौरुष की
आग राम के शर से
सिंधु देह धर 'त्राहि-त्राहि'
करता आ गिरा शरण में
चरण पूज, दासता ग्रहण की
बँधा मूढ़ बन्धन में''

खासकर इस कोटि की कविताओं में दिनकर का पौरुष के पुँजीभूत ज्वाल वाला प्रचण्ड कवि व्यक्तित्व सर्वाधिक मुखरित है।

दिनकर की कविता का लौह-तत्व एक ओर परिवर्तन के लिए सन्नद्ध है तो दूसरी ओर सबको इसमें साझी बनाने का आमंत्रण भी देता है। कवि-समाज को भी वह मानव के संताप हरने को, लोहा बनकर टकराने को उकसाता है। बहुत हो चुकी सुषमा-सौंदर्य की बातें अब बीत चुकी हैं प्रेम-प्रकृति को कविता में सजाने की घड़ियाँ। आज का युग-सत्य कवि को वज्र बनने को ललकार रहा है, उसे चुनौती दे रहा है। ऐसे समय में दिनकर का कवि दिल्ली की हृदयहीनता का बखान करने के बाद कहता है –

''लाखों क्रोंच कराह रहे हैं
जाग आदि कवि की कल्याणी
फूट-फूट कर कवि कंठो से
बन व्यापक युग की तु वाणी''

विनय, करूणा और अहिंसा जैसे उच्च भाव आज की दुनिया में अप्रासंगिक होते जा रहे हैं- इस तथ्य को दिनकर 'कुरुक्षेत्र' में ही पूरे आत्मविश्वास के साथ प्रतिस्थापित कर चुके थे। बापू से अत्यन्त प्रभावित होने के बावजूद (दिनकर की 'बापू' कविता : 1947 इसका प्रमाण है) गांधी के विचारों के विरूद्ध खड़े होने का जो साहस दिनकर ने दिखाया है वह उनकी युग-सत्य की पहचान या दूर-दृष्टि का परिचायक तो है ही, युगवाणी भी है –

''क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो
उसका क्या जो दंतहीन, विष रहित, विनीत, सरल हो।''

दिनकर यह समझ चुके थे कि विश्व में सहनशीलता, दया आदि गुणों का सम्मान तभी होता है जब उसके पीछे शक्ति का अभिमान खड़ा हो। दुनिया में शक्तिशाली विनम्रता ही सम्मान पाती है। आदर्श के नाम पर कायरता और दुर्बलता को ओढ़े रहना आत्महंता प्रवृत्ति के सिवा और कुछ नहीं है। आज के शक्ति-संघर्ष वाले विश्व परिदृश्य के परिप्रेक्ष्य में दिनकर का यह लौह-कवि-व्यक्तित्व बरबस हमें अपनी ओर खींचता है –

''न्यायोचित अधिकार माँगने से न मिले तो लड़ के
तेजस्वी छीनते समर को / जीत, या कि खुद मर के।''
यह तेजस्विता ही दिनकर के काव्य का लोहा है।
दिनकर की कविताएँ बार-बार यही कहती हैं कि-
''मानव मानव है समान / जगती में गूँजे यही गान''

उनके समस्त भावों में लिपटा यही सूत्र-संदेश है और कुछ न कह कर इतना ही कि दिनकर का कवि स्पष्ट भाषी, उद्धत और आत्मविश्वास से भरा हुआ है। उसकी भाषा ताण्डव करती, गुँजार करती, हुँकारती, ललकारती, संरचनाओं में बँधी है। कई आलोचक दिनकर काव्य को 'एकांगी' मानते-समझते हैं। माना-समझा करें। शायद वे दिनकर के ताप को सहन नहीं कर सके हैं अथवा 'उर्वशी' और 'रश्मिरथी' को दिनकर का इति और अंत मानकर उनकी अन्य रचनाओं में वे नहीं पैठ सके हैं। दिनकर का कवि युग और सत्य के हर मोड़ पर खड़ा है और यही उसकी महानता है, अद्वितीयता है। दिनकर एक कवि के रूप में जहाँ कही भी खड़े हैं – समर्थ हैं, सफल हैं, प्राणवान हैं। मुझे भगवती चरण वर्मा के इन शब्दों पर पूरा-पूरा भरोसा है और हिन्दी कविता के किसी भी गंभीर अध्येता को होगा कि 'दिनकर' हमारे इस युग का यदि एक मात्र नहीं तो सबसे अधिक प्रतिनिधि कवि है।

संपर्क: कुलसचिव,
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा,
मद्रास, टी. नगर, चैन्नै- 17

lLÑfr d pkj vè;k;% ,d fo'kn iMrky Hkkjrh; lLÑfr dh

– *पंकज सुबीर*

'संस्कृति के चार अध्याय' इस पुस्तक को क्या कहा जाए? क्या यह केवल एक ग्रंथ है? क्या यह केवल इतिहास है? क्या महज एक आख्यान है? मेरे विचार में तो नहीं। इस प्रकार की पुस्तकें केवल ग्रंथ या केवल आख्यान की श्रेणी में रख दी जाएँ तो मुझे लगता है हमारी विद्वता पर प्रश्न चिह्न लग जाएगा। इसलिए क्योंकि 'संस्कृति के चार अध्याय' का यदि हम ठीक प्रकार से आकलन नहीं कर पा रहे हैं, तो उसका अर्थ है कि हमें अभी ज्ञान की कुछ श्रेणियाँ अथवा सोपान और अन्जान रास्तों की जिनकी दुर्गमता के कारण कोई वहाँ नहीं गया। तिस पर ये भी कि उन रास्तों पर इतने अवरोध पैदा कर दिये गए कि वहाँ जाने का साहस करना भी असंभव की श्रेणी में रख दिया गया। अवरोध किसने खड़े किये? क्यों खड़े किये? ये प्रश्न ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर तलाशने की प्रक्रिया में कई सारे चेहरे उजाले में आ जाते हैं। चेहरे जिन पर दाग लगे हैं अपने ही इतिहास को लेकर भ्रम उत्पन्न करने के दाग। ये चेहरे जो इतिहास को मनमाने तरीके से दूषित करने के बाद भी मान्य रहे, स्वीकार्य रहे। 'संस्कृति के चार अध्याय' एक विशद पड़ताल है, इस बात की कि कहाँ-कहाँ भारतीय संस्कृति की इस पावन धारा में कीचड़ डाला गया। कहाँ-कहाँ डाला गया, तथा किस-किस ने यह अक्षम्य अपराध किया। इस प्रकार की पड़तालें किसी भी समय समाज के लिये नितांत आवश्यक हैं, अगर वो चाहता है कि वह लम्बे समय तक बना रहे। सभ्यता तथा असभ्यता, ये दोनों ही निर्भर करती हैं संस्कृति पर। कोई भी देश, समाज या व्यक्ति यूं ही नहीं हो जाता है असभ्य, बर्बर तथा दिशाहीन। वस्तुतः तो यह प्रदूषण के कारण होता है, सांस्कृतिक प्रदूषण के कारण। सांस्कृतिक प्रदूषण जो धीरे-धीरे पीढ़ियों में फैलता है धीमे ज़हर की तरह। इसका प्रभाव भले ही ऊपर से दीख नहीं पड़ता, किन्तु, यह देश, समाज तथा व्यक्ति तीनों को खोखला करता है। तथा इस प्रकार से खोखला करता है कि फिर समय की तो हवा उसे जड़ से उखाड़कर फेंक देती है। बहुत घातक होता है यह सांस्कृतिक प्रदूषण। इसी का उपचार होते हैं 'सस्कृति के चार अध्याय' सरीखे ग्रंथ। ये ग्रंथ जन मानस को चेताने का कार्य करते हैं। ये ग्रंथ आत्मा की दृष्टिहीनता का श्रेष्ठ उपचार होते हैं। शरीर की दृष्टिहीनता, धृतराष्ट्र की दृष्टिहीनता है, किन्तु, आत्मा की दृष्टिहीनता गांधारी की दृष्टिहीनता है, जो जान-बूझकर अपने ही हाथों से अपनी ही आँखों पर पट्टी बाँधे हुए है। इसी पट्टी को खोलने का काम करते हैं 'संस्कृति के चार अध्याय' जैसे ग्रंथ। वे सभ्यताएँ बच जाती हैं जिनको ठीक समय पर कोई आचार्य रामधारी सिंह दिनकर मिल जाता है। उसमें भी यह कि वे सभ्यताएँ परम सौभाग्यशाली होती हैं जिनको न केवल 'संस्कृति के चार अध्याय' तथा आचार्य रामधारी सिंह 'दिनकर' मिलते हैं बल्कि यह भी कि उनका वह दिनकर कवि भी होता है, कवि भी कोई ऐसा वैसा नहीं बल्कि वेदना को स्वर देने वाला कवि, संवदेना को वाणी प्रदान करने वाला कवि।,

किसी अन्य व्यक्ति, देश, समाज अथवा संस्कृति से अपरिचित होना कोई ऐसी बात नहीं है जो कि बहुत चिंताजनक हो। लेकिन यदि आप अपने ही देश, अपने ही समाज, अपनी ही सभ्यता तथा अपनी ही संस्कृति से परिचित नहीं हैं तो आप का होना देश, समाज, सभ्यता तथा संस्कृति सभी के लिये हानिकारक है। आप की स्थिति उस अज्ञानी बालक की तरह है जो गुस्से में आकर वस्तुओं को तोड़-फोड़ देता है, बिना यह जाने कि उस वस्तु के निर्माण मे कितना परिश्रम व्यय हुआ था। हम भी अपने ही देश को, अपनी ही संस्कृति को केवल इसीलिये क्षति पहुंचाते हैं कि हमें ज्ञात ही कब है कि कितने हजार सालों में तैयार हुई है यह संस्कृति, यह देश। 'संस्कृति के चार अध्याय' हमें पूरी यात्रा करवाता है कि कहाँ-कहाँ से गुजर कर यह संस्कृति इस स्थान तक आई है। यह स्थान, जहां काल के इस विशेष खंड में यह हमारे हाथों में है, हम जो बीत जाने की नियति लेकर आए हैं, हम जो बाध्य हैं इस संस्कृति को अपने बाद की पीढ़ी को सौंपकर विदा लेने हेतु। यह जो व्यक्ति है, जो समाज की संरचना करता है, समाज जो संस्कृति का निर्धारण करता है, यह व्यक्ति यदि आज हम हैं तो निश्चित रूप से कल, हमारे बाद की पीढ़ी 'यह व्यक्ति' बनेगी तथा यह सब यूं ही चलता रहेगा। इस चलते रहने में जो 'यूँ ही' होता है उसे ही बदलने का प्रयास होते हैं 'संस्कृति के चार अध्याय' के जैसे ग्रंथ। हम क्या देकर विदा हो रहे हैं अपने ठीक बाद की पीढ़ी को? जो हम देकर जाएँगे वही आगे हस्तांतरित हो जाएगा, होता रहेगा, होता रहेगा, तब तक, जब तक कि 'संस्कृति के चार अध्याय' जैसा कोई ग्रंथ आकर नहीं कहेगा कि 'महाशय पहले जान तो लीजिए अपनी सभ्यता के इतिहास को, अपनी संस्कृति को, तब बताइयेगा कि जो संस्कृति आप हस्तांतरित कर रहे हैं, क्या यह वही है जो हमारी है या फिर उसके भ्रम में हम कहीं वह अप संस्कृति तो नहीं थामे हैं जिसे कतिपय शरारती तत्त्वों ने हमारी बताकर न जाने कब हमारे हाथ में थमा दिया था।

किसी भी कवि के लिए सबसे आवश्यक होता है कि वह अपने समाज तथा देश के इतिहास से अच्छी तरह से भिज्ञ हो। यहाँ पर प्रश्न उठता है कि कवि कौन? किसे कवि कहा जाए? आचार्य दिनकर के ही शब्दों में 'कवि वह होता है जो अपने समकालीनों की तुलना में कुछ अधिक जीवित और चैतन्य होता है। उसे ऐसी बातें भी सुनाई देती हैं जिन बातों तक औसत मनुष्य के कान नहीं पहुंच पाते हैं। 'संस्कृति के चार अध्याय' में ही कवि की यह परिभाषा आचार्य दिनकर जी ने दी है। यहाँ पर भी 'कुछ अधिक जीवित' यह बात दिनकर जी ने जान-बूझकर लिखी है। जो अपने इतिहास से भिज्ञ नहीं है वह और कुछ भी हो किन्तु कवि तो नहीं हो सकता। किन्तु क्या कवि का लिखा हुआ सब कुछ इतिहास की श्रेणी में आ जाएगा? तो फिर तो हमारे ही देश में सदियों से चारण भाटों द्वारा कवित्त के रूप में विरुदावलियाँ तथा प्रशस्तिगान लिखने की परम्परा रही है। परम्परा, जो आज भी कायम है, आज विरुदावलियों का स्थान राजनीतिज्ञों पर लिखे चालीसाओं ने ले ली है। तो क्या ये सब भी इतिहास माना जाएगा? हमें इस प्रश्न का उत्तर भी दिनकर जी की ही परिभाषा में तलाश करना होगा। क्या ये विरुदावलियाँ लिखने वाले लोग (मैं जानबूझकर इनके लिए कवि शब्द का उपयोग नहीं कर रहा हूँ।) सचमुच अपने समकालीनों से कुछ ज्यादा जीवित कुछ अधिक चैतन्य है? नहीं, ये तो उनसे भी ज्यादा मृत हैं। इनको तो अपने नायक के अलावा कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा। न अव्यवस्था, न भूख, न गरीबी, कुछ नहीं। इन तथाकथित स्वघोषित कवियों को तो न अपने देश का अपने समाज का, इतिहास ज्ञात है न अपना स्वयं का।

तो फिर किसे माना जाए इतिहास ...? निश्चित रूप से 'संस्कृति के चार अध्याय' को। क्यों ...? क्योंकि इसमें दो चीजें नहीं हैं अनुराग तथा द्वेष। जो सचमुच कवि होता है, वह जन्म से ही इन दोनों से मुक्त होता है। इसीलिये उसकी

रचनाएँ भी इन दोनों दुर्गुणों से मुक्त होती हैं। तो क्या अनुराग भी एक दुर्गुण है? बिल्कुल है, किसी भी कवि के लिये द्वेष से बड़ा दुर्गुण अनुराग होता है। द्वेष के चलते तो वह एक व्यक्ति को नायक से खलनायक बनाकर उस व्यक्ति को नुकसान पहुंचाता है, किन्तु अनुराग के चलते तो वह खलनायक को नायक बनाकर समूचे समाज को नुकसान पहुंचाता है, अनुराग के चलते ही वह विरदावलियाँ लिखता है खलनायक को नायकत्व प्रदान करने हेतु। 'संस्कृति के चार अध्याय' में न तो अनुराग है और न द्वेष है। इतिहास तथा काव्य के होने की सबसे बड़ी कसौटी यह होती है कि वह कभी भी पक्ष न बन जाए। वह बिन्दु जहाँ पर आकर कविता पक्ष बन जाती है 'वाद' बन जाती है, ठीक उसी बिन्दु पर वह समाप्त हो जाती है। इतिहास के साथ भी यही मुश्किल है कि जहाँ पर इतिहास किसी विशेष 'वाद' का पोषण करने लगता है ठीक उस जगह वह इतिहास न होकर उस 'वाद' का मुखपत्र बन जाता है। हमारे दुर्भाग्य से हमारे ग्रंथालयों के इतिहास खंड इसी प्रकार के मुखपत्रों से भरे पड़े हैं। 'संस्कृति के चार अध्याय' जैसे ग्रंथ उंगलियों पर गिनने लायक ही हैं। निरपेक्ष होना इस ग्रंथ की सबसे बड़ी शक्ति है और निरपेक्ष होना इसलिए भी संभव हो पाया कि इस ग्रंथ को रचने वाला एक 'सचमुच का कवि' है।

'सचमुच का कवि' ये क्या है? दिनकर जी स्वयं ही 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखते हैं 'समाज की धड़कन कवि के कलेजे में उठती है तथा उसकी शंकाएँ तथा विश्वास कवि के मुख से उद्‌गीर्ण होते हैं।' यदि इसी परिभाषा की छाँव में बैठकर इस 'सचमुच के कवि' को तलाशा जाए तो सचमुच का कवि वही होता है जो हर युग में कहता है 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है'। कवि राजा का चारण नहीं होता, कवि व्यवस्था का भाट नहीं होता, कवि तो जन का चारण होता है, जनता का चारण होता है। जो जनता का चारण होता है वही 'सचमुच का कवि' होता है। यही सचमुच का कवि जब इतिहास लिखता है तो वह सचमुच का इतिहास होता है, शत-प्रतिशत तथा पूरी तरह से जन को समर्पित इतिहास। 'संस्कृति के चार अध्याय' में दिनकर जी ने पूरी तरह से जन को समर्पित होकर तथा जन को ही समर्पित करके इतिहास लिखा है। इसीलिये ये इतिहास जन के लिये है। एक सामान्य इतिहासकार तथा एक इतिहासकार कवि में क्या फर्क होता है उसे जानने के लिये 'संस्कृति के चार अध्याय' श्रेष्ठ ग्रंथ है। फर्क होता है दृष्टि का, फर्क होता है कुछ अधिक जीवित तथा चैतन्य होने का। कवि, या यूं कहे कि सचमुच का कवि कभी भी दीपक के प्रकाश का स्पर्श जहां तक हो रहा है वहाँ से प्रारंभ नहीं करता। वह जाता है उन स्थानों पर जहाँ पर दीपक का प्रकाश पहुंच ही नहीं पा रहा है, और इसके लिये वह सबसे पहले देखता है उस दीपक के ही नीचे जहाँ से अंधकार की शुरूआत होती है। कवि हर उस अंधेरे कमरे को खोलता है जहाँ पर किसी 'वाद' के पोषक इतिहासकार ने ताला लगा दिया और चाबी को भ्रम के अतल सागर में फेंक दिया है।

'संस्कृति के चार अध्याय' लिखते समय दिनकर जी उन सारे अँधेरे कमरों को खोलते हैं। और ऐसा करने के लिये वे उस चाबी को तलाश नहीं करते जो 'वाद' की भूल-भुलैया में कहीं खो गई है। वे बहुत मनोयोग से उस ताले में अपनी कलम की स्याही डालते हैं फिर किसी साधक की तरह बैठकर उस पर अपने विचारों की हथौड़ी से धीरे-धीरे प्रहार करते हैं और उसे खोल डालते हैं। वह सब कुछ प्रकाश में आ जाता है जो षडयंत्रपूर्वक गोपन कर दिया गया था। हम ठगे से रह जाते हैं कि 'अरे... हमें तो कुछ और ही बताया गया था।' 'संस्कृति के चार अध्याय' लिखकर दिनकर जी ने इतिहास के जाले साफ करने का प्रयास किया है तथा इसे पढ़ने के बाद पढ़ने वाले के दिमाग पर पड़े जाले भी साफ हो जाते हैं। एक और महत्पूर्ण तथ्य यह है कि दिनकर जी किसी भी ऐसे कमरे को नहीं छोड़ते जिस पर लगा ताला खोलकर उन्होंने उसके जाले साफ नहीं किये हों। दरअसल 'वाद' के ताले ऐसे ही होते हैं, कुछ आसानी से खुल जाते हैं तो कुछ को खोलना दुरूह होता है। किन्तु, अंततः सबको खुलना ही है। 'संस्कृति के चार अध्याय' में सबसे आनन्ददायक है दिनकर जी को इन तालों को खोलते हुए देखना, वे न तो कुतक का भारी हथौड़ा मारकर ताले को तोड़ते हैं ओर न ही उन तालों के सामने समर्पण करके उनको छोड़ते हैं। वे बहुत ही धैर्यपूर्ण तरीके से तर्कों की छैनी को विचारों की हथौड़ी से धीरे-धीरे, टुक-टुक करके उस ताले पर मारते हैं। यह एक थका देने वाली प्रक्रिया होती है किन्तु इसी के गर्भ में तो सत्य छिपा है। ताले की नियति है कि उसको अंततः खुलना पड़ता है। 'संस्कृति के चार अध्याय' को पढ़ते समय यह जो क्रिया है यह बहुत आंनद उत्पन्न करती है। दिनकर जी ने जो कष्ट-साध्य परिश्रम किया है वह स्तुत्य है।

अगर वे भी इतिहास के 'परिवर्तित मार्ग' से होकर गुजर जाते तो शायद हम जान ही नहीं पाते कि यात्रा में जहाँ पर फला 'वाद' ने 'परिवर्तित मार्ग' का बोर्ड लगा दिया था, वहाँ वास्तविक मार्ग पर क्या परेशानी थी? और थी भी, या मात्र उसका भ्रम पैदा किया जा रहा था। दिनकर जी किसी भी 'परिवर्तित मार्ग' से होकर निकलना स्वीकार नहीं करते हैं 'संस्कृति के चार अध्याय' को लिखते समय। इतिहासकार और कवि में यही फर्क होता है। दिनकर जी 'परिवर्तित मार्ग' की तख्तियों को धता बताते हुए सीधे मार्ग पर चलते हैं। 'संस्कृति के चार अध्याय' को इसीलिए मैं इतिहास का सबसे प्रामाणिक ग्रंथ मानता हूँ। यह धर्मों, जातियों, समाजों सबसे ऊपर उठकर लिखा जाता है, और सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यह ग्रंथ साहित्य तथा इतिहास की सबसे घृणित बीमारी 'वाद' से कहीं किसी पृष्ठ पर किसी पंक्ति में ग्रस्त होता नहीं दिखता है।

'संस्कृति के चार अध्याय' इस ग्रंथ को संभवतः आचार्य रामधारी सिंह दिनकर ने इतिहास के शोधार्थियों तथा विद्यार्थियों के लिये, या उनको दृष्टिगत रखते हुए नहीं लिखा है। यह आम जन के लिये है यह साहित्य के आम पाठक के लिये है। इसका प्रमाण है इसकी भाषा तथा शैली। आम इतिहास कथ्य से ज्यादा तारीखों तथा वर्षों पर ज्यादा ध्यान देता है, क्योंकि, उसको अपनी प्रमाणिकता सिद्ध करनी होती है किन्तु आचार्य रामधारी सिंह दिनकर चूंकि स्वयं कवि हैं इसलिये वे तारीखों, वर्षों की भूल-भुलैया में नहीं उलझते वे सीधे कथ्य पर आते हैं। वे जानते हैं कि उनकी इस पुस्तक को पढ़ने वाले उस आम पाठक के इस बात से कोई सरोकार नहीं है कि पानीपत का दूसरा युद्ध किस सन् में या किस तारीख को हुआ। उसको तो केवल यह जानने में दिलचस्पी है कि युद्ध होने के पूर्व की परिस्थितियाँ क्या थीं तथा युद्ध का क्या प्रभाव समाज तथा संस्कृति पर पड़ा। हालांकि आचार्य दिनकर जी ने भी हर घटना के वर्ष तथा तारीख का उल्लेख किया है, लेकिन, यह उल्लेख केवल सूचनाप्रद है कि जब ये घटना हो रही थी तब क्या कालखंड था। मगर वास्तविक रूप से ये तारीखें गौण हैं, क्योंकि, दिनकर जी इनको कथ्य में नहीं गूँथते, वे सूचना के साथ ही उनको समाप्त कर देते हैं तथा तुरंत विषय पर आ जाते हैं। दिनकर जी का यह ग्रंथ आमजन के लिये हैं उसका प्रमाण इसकी शैली है। यदि शैली की बात की जाए तो पहले चर्चा करनी होगी पंडित जवाहर लाल नेहरू के ग्रंथ 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' की। वैसे तो इन दोनों ग्रंथों का बुनियादी अंतर इनके नामों से ही ज्ञात हो जाता है, किन्तु फिर भी यदि हम केवल शैली की ही बात करें, तो पंडित नेहरू की शैली कुछ क्लिष्ट है, वह इतिहासकारों वाली शैली है। यद्यपि किस्सागो शैली को दोनों ने अपनाया है, पंडित नेहरू ने भी तथा आचार्य दिनकर ने भी, किन्तु फिर भी पंडित नेहरू की जो किस्सागो वाली शैली है, वो इतिहास के किसी प्रोफेसर वाली है और आचार्य दिनकर की शैली गांव की चौपाल पर आसन जमा कर बैठे किसी विद्वान तथा अनुभवी वृद्ध की शैली है। इसीलिये यह शैली जनमानस को अपनी तरफ कुछ ज्यादा खींचती है। दोनों की शैली किस्सागो वाली ही होने के बाद भी दिनकर जी जहां जनोन्मुख ज्यादा नजर आते हैं तो उसके पीछे कारण है उस शैली में 'अब क्या होगा?' की रोचकता को बनाए रखना। रोचकता, जो कवि की कविताओं का प्रमुख तत्व होती है उस तत्व को कुशलता के साथ 'संस्कृति के चार अध्याय' में गूँथा गया है।

'संस्कृति के चार अध्याय' इस ग्रंथ की एक और विशेषता है इसकी सहजता, और वो भी बोधगम्य सहजता। जैसे तीसरे अध्याय के 'हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध' नामक प्रकरण में एक बात दिनकर जी ने बहुत सहजता के साथ लिखी है। सहजता के साथ लिखी जरूर है, किन्तु, बात इतनी छोटी नहीं है कि उसको इस प्रकार से लिया भी जाए। वे लिखते हैं 'हिन्दू-मुस्लिम एकता के हमारे देश में तीन बड़े नेता, कबीर अकबर और महात्मा गाँधी हुए हैं।' इस्लाम के भारत आगमन से लेकर यहाँ तक के सफर में यदि वे केवल तीन नामों को छांटते हैं तो जाहिर सी बात है कि इस पर तर्क तथा बहस की गुंजाइश को छोड़ते हुए वे ऐसा करते हैं। फिर ये कि वे लगभग सीधे-सीधे ही कह देते हैं, और कोई नहीं, केवल तीन। बात बहुत बड़ी है फिर भी उसे कहने तथा स्थापित करने में दिनकर जी पूरी तरह से सहज बने रहते हैं। इस पंक्ति के ठीक पहले लिखी हुई पंक्ति भी इस परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण है, वे लिखते हैं 'भारत में इस नए आन्दोलन हिन्दू-मुस्लिम संबंध के सबसे बड़े नेता महात्मा कबीर दास हुए। कबीर को अमूमन संत कबीरदास कह कर ही पुकारा जाता है। कदाचित 'संस्कृति के चार अध्याय' में ही उनके लिए महात्मा तथा नेता ये

दोनों शब्द प्रयुक्त हुए हैं। नेता शब्द का प्रयोग उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम संबंधों को मधुर बनाने का प्रयत्न करने वाले आंदोलन के नेता के रूप में किया है। 'संस्कृति के चार अध्याय' में अत्यंत ही सहजता के साथ एक और बात भी आती है, दिनकर जी कृष्ण की प्रिय गोपी राधा को लेकर प्रश्न उठाते हुए कहते हैं 'वैष्णवों के तीन प्रसिद्ध पुराण हैं, हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण, लेकिन इनमें से किसी में राधा नाम का उल्लेख नहीं है। भागवत में कथा आयी है कि कृष्ण ने सभी गोपियों को छोड़कर एक गोपी से अलग मुलाकात की। बस भक्तगण इसे ले उड़े और उसी गोपी को राधा मानने लगे।' बात उतनी छोटी नहीं है जितनी सहजता के साथ दिनकर जी कह रहे हैं, किन्तु इतिहासकार, कवि तभी संतुष्ट होता है जब उसे प्रमाण दिखाए जाते हैं, यहाँ पर चूंकि प्रमाण को लेकर दिनकर जी के मन में संशय है इसलिए वे इतनी बड़ी बात कह जाते हैं। राधा के होने पर प्रश्न चिह्न लगा देना यह कार्य किसी 'सचमुच के कवि' के ही बूते की बात है। यही एक बात बताती है कि दिनकर जी ने यह ग्रंथ अनुराग तथा द्वेष से पूरी तरह परे रहकर रचा है। कुछ ऐसी ही सहजता वे हिन्दू शब्द की स्थापना करते हुए बनाए रखते हैं, जब वे कहते हैं 'प्राचीन संस्कृत तथा पालि ग्रन्थों में हिन्दू नाम कहीं नहीं मिलता है' इस प्रकार वे एक और बड़ा प्रश्न चिह्न लगा देते हैं।

इतिहास तथा श्रुति, ये दो प्रकार की बाते हैं। कई बार ऐसा होता है कि श्रुति जो कहती है इतिहास उसका खंडन करता है तो कई बार ऐसा भी होता है कि श्रुति जो कहती है इतिहास उसकी पुष्टि करता है। इन सब के बाद भी जन को श्रुतियों पर ही अधिक विश्वास होता है। इसलिए भी क्योंकि श्रुतियों को वह आसानी से समझ पाता है तथा जीवन में उतार पाता है। आचार्य दिनकर जी ने संभवत: इसी बात को ध्यान में रखकर इस ग्रंथ की रचना की है। उन्होंने इतिहास को श्रुति की तरह प्रस्तुत किया है। वे जानते थे कि हजारों हजार साल तक इस देश का इतिहास श्रुतियों के ही माध्यम से चला है। उस समय का इतिहास ढूँढने के लिये इतिहासकारों को भी श्रुतियों के गलियारों में जाना पड़ा। श्रुतियाँ, जो हर भाषा में, हर बोली में तथा हर काल खंड में उपस्थित थीं। समय का प्रवाह जिन पर विस्मृति की रेत कभी नहीं डाल पाया। ये पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रहीं, 'हमसे कहके तुमसे सुनके' वाली शैली में। दिनकर जी इस पूरे ग्रंथ को जो कि प्रामाणिकता में कहीं सूत भर भी इधर-उधर नहीं होता इसी 'हमसे कहके तुमसे सुनके' वाली शैली में लिखा है। इसी कारण इस ग्रंथ को पढ़ने में जहां श्रुतियों को सुनने वाला आनंद मिलता है, वहीं यह भी विश्वास रहता है कि यह एक प्रमाणिक इतिहास है। जैसे राजपूतों के संदर्भ में वे लिखते हैं 'मध्य एशिया में हूण नामक एक बर्बर जाति उपद्रव मचा रही थी, पांचवी सदी में उनके दल के दल रोम और भारतवर्ष में घुसे। ब्राह्मणों ने उन्हें शुद्ध करके राजपूत बना दिया।' और फिर कुछ आगे लिखते हैं 'जब गजनवी तथा गौरी के खिलाफ भारत के राजपूत युद्ध कर रहे थे तब युद्ध एक तरह से हूणों के ही दो दलों के बीच था। गजनवी तथा गोरी दोनों ही वे हूण थे जिन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया था, वहीं भारत में जो उनका मुकाबला कर रहे थे उसमें भी अधिकांश वे ही लोग थे जो हूण देश से आए थे तथा शुद्धि के बाद राजपूत बना दिये गए थे।' सुनने में यह पूरी बात श्रुति की तरह लगती है, किन्तु है एक प्रमाणित इतिहास। इस मामले में इतिहासकारों ने काफी कुछ लिखा है तथा 'वाद' का प्रदूषण फैलाने वालों ने भी इस मामले को अपने-अपने तरीके से भुनाया है किन्तु सच यही है वह वास्तव में दोनों ओर से हो रहा हूणों का युद्ध था। हूण, जिनके रक्त में ही युद्ध था। जिन्होंने इस्लाम कबूल कर लिया तब भी यह युद्ध उनके रक्त में रहा, और इधर राजपूत हो गए तब भी यह युद्ध उनके रक्त में रहा। कितनी आसानी से इस तथ्य को स्थापित कर देते हैं दिनकर जी कि मुहम्मद गौरी तथा पृथ्वीराज चौहान का युद्ध कोई हिन्दू और इस्लाम का युद्ध नहीं था बल्कि वह हूणों का आपसी मामला था।

'संस्कृति के चार अध्याय' को इतिहास समझने का सबसे आसान ग्रंथ इसलिए माना जा सकता है कि इसमें इतिहास को चार अध्यायों में बाँट दिया गया है। चार अध्याय जिनमें भारत के बनने को बताया गया है। इसमें इतिहास को चार संस्कृतियों के माध्यम से बात करते हुए स्पष्ट किया गया है। संस्कृतियाँ जिन्होंने भारत की उस जनता की रचना की जो आज है। यदि अपनी ही बात करूँ तो एक प्रश्न मुझे बचपन से ही मथता रहा है कि यहाँ भारत में इतनी ज्यादा विभिन्नताएँ क्यों हैं?कहीं भाषा की, कहीं धर्म की, कहीं संस्कृति की। लेकिन 'संस्कृति के चार अध्याय' उन सब प्रश्नों के उत्तर देती है। पहले ही अध्याय का प्रकरण प्रथम 'भारतीय जनता की रचना' इतना रोचक है कि इसे कई बार पढ़ने की चाह होती है। यह प्रकरण बिल्कुल ठीक तरीके से ग्रंथ को प्रारंभ करता है। वास्तव में ये जो प्रथम अध्याय है भारतीय जनता की रचना और हिन्दू संस्कृति का आविर्भाव यह अध्याय उन सब बातों की विशद चर्चा करता है जिन बातों की हम सदियों से चर्चा करते आए हैं, तथा जिन प्रश्नों को लेकर हम हमेशा उत्सुक रहे हैं। यह पूरा अध्याय उस काल खंड को समर्पित है जब राम, कृष्ण जैसे नाम हुए, जब आर्य तथा द्रविड़ जैसी सभ्यताओं का संगम इस भूंखड पर हुआ। यह अध्याय हिन्दुस्तान के वर्तमान की काफी कुछ कहानी कह देता है।

इसी प्रकार दूसरा अध्याय 'प्राचीन हिन्दुत्व से विद्रोह' इसमें जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म के प्रादुर्भाव की गाथा है। इसमें दिनकर जी ने बड़ी सूक्ष्मता से इस बात को रेखांखिन किया है कि क्यों भारत से उपजा यह बौद्ध धर्म विश्वभर में तो फैला किन्तु अपने ही घर अर्थात् भारत में लुप्त हो गया। अध्याय का अंत जिस प्रकरण 'बौद्ध धर्म का लोप' से होता है उसमें कई सारी भ्रांतियों का खंडन किया गया है। इसका अंत कुछ इस प्रकार होता 'जब बौद्ध साधु, औघड़ों के समान आचरण करने लगे तब जनता उनके विरुद्ध हो गई।' तीसरा अध्याय 'हिन्दू संस्कृति और इस्लाम' यह वो अध्याय है जिसका पढ़ा जाना आज के इस दौर में बहुत आवश्यक है। यह अध्याय भारत में हिन्दू और मुस्लिम के बीच की खाई के कारणों को न केवल तलाशता है बल्कि उसको समाप्त करने के उपाय भी सुझाता है। आज जब हर तरफ सांप्रदायिक विद्वेष की आग फैली है तब यह अध्याय बहुत कुछ करने में सक्षम है, बशर्ते इसका उपयोग किया जाए। फिर चौथा अध्याय 'भारतीय संस्कृति और यूरोप' चौथे कालखंड की गाथा है या यूं कहें कि आर्यों, द्रविड़ों तथा इस्लाम के सम्मिश्रण से बने देश के आधुनिक होने की कथा है।

'संस्कृति के चार अध्याय' इस ग्रंथ के छोटे-छोटे हिस्से करके कई सारी पुस्तकें बनाई जानी चाहिये। पुस्तकें, जो ठीक रूप से समझने योग्य होने अर्थात् कक्षा दस के पश्चात् पढ़ाया जाना अनिवार्य हो, हर कक्षा में एक खण्ड पढ़ाया जाये। जब एक हिन्दू छात्र पढ़ेगा कि 'जिस इस्लाम का प्रवर्तन हजरत मुहम्मद ने किया और जिसका रूप अबूबक्र, उमर, उस्मान तथा अली जैसे खलीफों ने संवारा वह धर्म स्वच्छ धर्म था उसके अनुयायी सच्चरित्र दयालु और ईमानदार थे।' तो उसके मन में इस्लाम के प्रति सम्मान का भाव जागेगा। मेरा ऐसा मानना है कि जब स्नातक में वह 'संस्कृति के चार अध्याय' का पूरा अध्ययन करके निकलेगा तो उसकी स्थिति इस प्रकार की होगी कि उसको श्रुतियाँ सुनाकर बरगलाया नहीं जा सकेगा। उसे सब कुछ ज्ञात होगा, वह अपने देश तथा समाज के बनने की पूरी गाथा से पूर्णत: भिज्ञ होगा, उसके पास अपने तर्क होंगे। तर्क, जो उसने इस महान ग्रंथ से लिये होंगे। संस्कृति के चारों चरणों की विस्तृत जानकारी उसके पास होगी। आज हम देखते हैं कि खूब पढ़े-लिखे स्नातक और स्नातकोत्तर विद्यार्थी भी आर्य, द्रविड़ जैसे शब्दों को सुनकर बगलें झांकने लगते हैं, उस समय में 'संस्कृति के चार अध्याय' एक प्रकार से बुद्धि को संस्कारित करने का कार्य कर सकता है। 'संस्कृति के चार अध्याय' को आचार्य दिनकर ने एक उद्देश्य से लिखा है। आंखों पर बंधी हुई पट्टियाँ खोलने के उद्देश्य से। पट्टियाँ, जो समाज की तथा व्यक्ति की आंखों पर बंधी हैं। पट्टियां, जो सबसे बड़ा कारण हैं सांप्रदायिक वैमनस्यता का। किन्तु ये पट्टियाँ तभी खोली जा सकती है जब यह ग्रंथ जन-जन तक पहुंचे। उन लोगों तक जिनको इसकी आवश्यकता है। जो ये भी नहीं जानते कि उनकी आवश्यकता क्या है। धर्म के नाम पर हम कई प्रकार के संस्कार बच्चों को देते हैं किन्तु 'संस्कृति के चार अध्याय' को पाठयक्रम में अनिवार्य करके हम देश-हित में आने वाली पीढ़ी को संस्कारित कर सकते हैं। अंत में इसी महान ग्रंथ में लिखे गये उपसंहार से ये पंक्तियाँ 'प्रत्येक सभ्यता, प्रत्येक संस्कृति अपने आप में पूर्ण होती है। संस्कृतियाँ जब बदलती हैं तब खान-पान, रहन-सहन भले ही बदल जाएँ किन्तु मन उनका नहीं बदलता। जीवन को देखने वाला दृष्टिकोण उनका एक ही होता है। कल्याण इसमें है कि शासक उस दिशा को पहचान ले जिस दिशा का संकेत भारत के दूर तथा सन्निकट इतिहास से मिलता है।'

संपर्क: पी.सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेण्ट,
बस स्टैण्ड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश

कविवर! किसको नमन करूँ मैं

–डॉ. विजय राम रतन सिंह

तुझको! या तेरी कविता कामिनी को नमन करूँ मैं?
किसको नमन करूँ मैं कविवर किसको नमन करूँ मैं?

साहित्याकाश का तेजस्वी मार्त्तण्ड नहीं क्या तू है?
चेतना राष्ट्रधर्म की प्रखर छन्द नहीं, क्या तू है?
तेरे उज्ज्वल पद-रज या उर दामिनी को नमन करूँ मैं
किसको नमन करूँ मैं कविवर किसको नमन करूँ मैं?

उद्‌गाता अतीत का तू है, संस्कृति का गायक है
शोषित पीड़ित उपेक्षित जन का सच्चा तू नायक है
तुझको या तेरे 'अनल किरीट' चंदन को नमन करूँ मैं
किसको नमन करूँ मैं कविवर किसको नमन करूँ मैं?

दिनकर नहीं नाम का वाचक वाणी हरेक नर का है
एक देश का नहीं ओज यह भूमण्डल भर का है
दमन और शोषण विरूद्ध गर्जन को नमन करूँ मैं
किसको नमन करूँ मैं कविवर किसको नमन करूँ मैं?

जहाँ कहीं मानवता पीड़ित भावना जहाँ आहत है
रूकी जहाँ प्रतिभा प्रवाह हो रही कुंद चाहत है
खड़ा वहाँ उस तेज-पुंज भास्कर को नमन करूँ मैं
किसको नमन करूँ मैं कविवर किसको नमन करूँ मैं?

अबला के आँखों के आँसू नव-क्रांति के तुम हो मशाल
भूखे बालक के हाहाकार तुम कालों के भी महाकाल
विश्व वेदना के असली रहवर को नमन करूँ मैं
किसको नमन करूँ मैं कविवर किसको नमन करूँ मैं?

रश्मिरथी का पात्र उपेक्षित कर्ण नहीं, क्या तू है?
उर्वशी पुरुवा की वेदना का मर्म नहीं, क्या तू है?
परशुराम के मानस अवतार रिपु-दमन को नमन करूँ मैं
किसको नमन करूँ मैं कविवर किसको नमन करूँ मैं?

तू काव्य जगत के पारिजात भावों के बहते जल-प्रपात
कलम उगलती जिसकी आग फन काढ़ झूमता शेषनाग
'नील-कुसुम' के इस पराग-चन्दन को नमन करूँ मैं
किसको नमन करूँ मैं कविवर किसको नमन करूँ मैं?

कोटि-कोटि इन मूक जनों की आवाज नहीं क्या तू है?
जाति वर्ण रूढ़ि पर गिरता गाज नहीं क्या तू है?
विभा-पुत्र विप्लव के गायक स्यन्दन को नमन करूँ मैं?
किसको नमन करूँ मैं कविवर किसको नमन करूँ मैं?

सत्ता की खामी पर करता वार नहीं क्या तू है
कृषक और मजदूरों का 'हुंकार' नहीं क्या तू है
शंखनाद तू पाञ्चजन्य का गांडीव का टंकार नहीं क्या तू है
एक पुरातन भृत्य के स्तवन को नमन करूँ मैं
किसको नमन करूँ मैं कविवर किसको नमन करूँ मैं?

fnudj% jk"Vh;rk ,o vktfLork d dfo

–डॉ. नीलिमा प्रसाद

जिन कवियों ने हिन्दी कविता को छायावाद की सूक्ष्ममयी वातावरण से बाहर निकालकर यथार्थ कि दुनिया में पहुँचाया, उसमें जीवन का तेज भरा और उसे सामयिक प्रश्नों से उलझना सिखाया, उसमें रामधारी सिंह दिनकर का नाम सर्वोच्च है। सच पूछा जाए तो हिन्दी की राष्ट्रीय कविता ने तीन ही मंजिल तय की है। उसकी पहली मंजिल भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र में मिलती है, जब उसने ब्रज के करील कुंजों को छोड़कर देश-दुर्दशा की ओर साश्रुनयन निहारा था। उसकी दूसरी मंजिल के पुरोधा मैथिलीशरण गुप्त बने जब उसने वर्तमान की विवशता के साथ अतीत का गौरवपूर्ण स्मरण किया एवं तीसरी मंजिल में वह दिनकर की उँगली पकड़कर आगे बढ़ी तथा अन्याय, अत्याचार, राजनीतिक दासता और आर्थिक शोषण के विरूद्ध खुलकर विद्रोह किया।

राष्ट्रीय भावों के तुरंग पर सवार होकर हिन्दी साहित्याकाश में लगभग आधी आबादी तक आलोकित होने वाले रामधारी सिंह दिनकर का आविर्भाव हिन्दी कविता के छायावादोत्तर युग की सबसे बड़ी घटना है। दिनकर का उदय राष्ट्रीय भावों की उस धरा से हुआ जो भारतेन्दु हरिशचन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से बहती आ रही थी। दिनकर की रस ग्राहिनी शिराएँ संस्कृत, बंगला और उर्दू से भी संतृप्त थीं। इसलिए जहाँ एक ओर इनमें कालिदास और रवीन्द्रनाथ का प्रभाव पड़ा, वहाँ दूसरी ओर काजी नजरूल इस्लाम का आक्रामक और संक्रामक सिंहनाद भी इनकी वाणी में आ मिला। फलस्वरूप दिनकर की वाणी में ओज, उत्साह और श्रृंगार की त्रिवेणी हिलकोरे मारने लगीं।

दिनकर की सम्पूर्ण काव्य रचना को दो धाराओं में बाँटना चाहिये। उनकी कविता की एक धारा राष्ट्रीय क्षितिज पर क्रांति और विद्रोह का शंख फूँकती है और दूसरी धारा में कोमल भावों की सौंदर्य और शृंगारपरक अभिव्यक्ति हुई है। पहली भाव-धारा का सबसे सबल उद्घोष 'हुंकार', 'कुरुक्षेत्र' और 'परशुराम की प्रतीक्षा' में हुआ है। दूसरी धरा 'रसवन्ती' से होती हुई 'उर्वशी' में पूर्णता प्राप्त करती है। 'रेणुका' उनकी जवानी का उद्घोष है जो 'कुरुक्षेत्र' में आकर पूर्णता प्राप्त करता है। राष्ट्रीयता की धारा रेणुका, हुंकार और कुरुक्षेत्र से होती हुई परशुराम की प्रतीक्षा में पर्यवसित हुई है।

दिनकर राष्ट्रीय भावनाओं के ओजस्वी गायक हैं। उनकी कविताओं में मुख्य रूप से वीर और शृंगार रस की धारा प्रभावित हुई है। उनकी वीरता राष्ट्रीय चेतना से उत्पन्न हुई थी। इसलिए दिनकर की रचनाओं में राष्ट्रीय भावों का उद्वेलित सागर हिलकोरें मारता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना हमारे स्वाधीनता संग्राम की देन है। जब संपूर्ण समाज देश माता की जंजीर काटने के लिये अपनी जवानी को राष्ट्र की बलिवेदी पर न्योछावर कर रहा हो, जब शासन और शोषण के विरूद्ध वातावरण ही आग उगल रहा हो, जब गंगा का जल क्रांति ज्वाला से तप्त होकर खौल रहा हो और जब हिमालय उछलकर समुद्र को मथ डालने पर तुला हो तो ऐसे समय में कोई कवि फूलों और तितलियों की सतरंगी पंखुरी में कैसे उलझा रह सकता है?

दिनकर की राष्ट्रीय भावना सबसे पहले 'रेणुका' काव्य संग्रह में क्रांति की चिनगारी बनकर छिटकी। 'हुंकार' और 'सामधेनी' से होती हुई यह भावना कुरूक्षेत्र में प्रवेश कर गयी। 'रेणुका' दिनकर जी की प्रथम प्रकाशित काव्यकृति है। यहीं से उनकी राष्ट्रीय चेतना का सूत्रपात हुआ है। इससे उनकी राष्ट्रीयता कहीं तो ध्वंसक क्रांति के रूप में है, तो कहीं अतीत के प्रति मोह के रूप में और कहीं राष्ट्रवादी विचारों के रूप में व्यक्त हुई है। रेणुका में कवि ने अपनी सरस्वती से भी आग्रह किया है कि–

'लाखों क्रौंच कराह रहे हैं,
जाग आदि कवि की कल्याणी।
फूट-फूट तू कवि कंठों से,
बन व्यापक निज युग की वाणी।'

रेणुका की 'ताण्डव' शीर्षक कविता में दिनकर ने पूँजीवादी विलासिनी सभ्यता को मिटा डालने का रोष व्यक्त किया है। ठीक उसी प्रकार दिनकर जी की भावाकुल वीरता कुरूक्षेत्र में पहुँचकर विचार की प्रौढ़ता में बदल जाती हे, फिर भी कवि इनता कहना नहीं भूलता है कि–

'जाति मंदिर में चढ़ाकर शूरता की आरती,
जा रहा हूँ विश्व से चढ़ युद्ध के ही यान पर।'

दिनकर जी ने अपनी ओजमयी वाणी से अपने देशवासियों को जगाया है।

दिनकर की राष्ट्रीयता वास्तव में भाववादी राष्ट्रीयता है। उसमें चिंतन की संगति की अपेक्षा आवेग और आवेश ही प्रधान है। पराधीन वातावरण में अंग्रेजी के शोषण और अत्याचारों की प्रतिक्रिया का शक्तिशाली रूप दिनकर में दिखाई देता है जिसमें उत्साह है, उमंग है, प्रेरणा है और आस्था है। 'हिमालय' शीर्षक कविता में कवि ने देश के वैसे लोगों को भी क्रांति की गंगा में कूद पड़ने के लिए उत्साहित किया है जो हिमालय की तरह निश्चित होकर किसी लक्ष्य के लिए साधना कर रहे थे। वे अपनी चिरमौन समाधि तोड़कर भारत को स्वाधीन बनाने के लिए प्रयासरत हैं एवं देश के नवयुवकों को गुलामी की जंजीर तोड़ फेंकने के लिए ललकारा है–

'ले अँगड़ाई उठ, हिले धरा,
कर निज विराट् स्वर में निनाद,
तू शैलराट्! हुँकार भरे,
फट जाय कुहा, भागे प्रमाद।
तू मौन त्याग, कर सिंहनाद,
रे तपी! आज तप का न काल,
नवयुग शंखध्वनि जगा रही,
तू जाग, जाग मेरे विशाल।'

और प्रिंस ऑफ वेल्स के स्वागत में नयी दिल्ली का साज शृंगार देखकर उसकी तीव्र भर्त्सना की थी–

'वैभव की दीवानी दिल्ली
कृषक मेध की रानी दिल्ली
अनाचार, अपमान, व्यंग्य की
चुभती हुई कहानी दिल्ली।'

स्वाधीनता के बाद कुछ आलोचकों ने उन्हें निस्तेज हुआ मान लिया था। चीनी आक्रमण की बर्बरता से मर्माहत हो पुनः उनका पौरुष गरज उठा–

'पर्वत पति को आमूल डोलना होगा,
शंकर को ध्वंसक नयन खोलना होगा।'
.....
.....
'ललकार रहा भारत को स्वयं मरण है,
हम जीतेंगे यह समर हमारा प्रण है।'

दिनकर ने अनेक कविताओं में क्रांति का आह्वान किया है, इसलिए उसमें अराजकता के तत्व भी दिखाई देते हैं–

'उठ भूषण की भाव-रंगिणी।
लेनिन के दिल की चिनगारी।
युग मर्दित यौवन की ज्वाला।
जाग-जाग री क्रांति कुमारी।'

दिनकर का सुधारवाद में विश्वास नहीं है। वे क्रांति के उपासक हैं। कवि ने हिंसा का दायित्व भी उनपर नहीं रखा है जो तलवार उठाते हैं, बल्कि वास्तव में हिंसा के दोषी वे हैं जो दूसरों के अधिकारों का हनन कर उनका जीवन दूभर बना देते हैं।

'पातकी न होता है प्रबुद्ध दलितों का खड्ग,
पातकी बताना उसे दर्शन की भ्रांति है।
शोषण की शृंखला के हेतु बनती जो शांति,
युद्ध है यथार्थ में वे भीषण अशांति है।'

दिनकर जी ने किसी भी राष्ट्र के लिए युद्ध को विकास अथवा विस्तार के साधन के रूप में नहीं स्वीकार किया है, परन्तु देश की आत्मरक्षा के लिए सैन्य शक्ति का संतुलन और उसके प्रयोग के सामर्थ्य को उन्होंने राष्ट्र का आवश्यक अंग माना है। अत्याचार का प्रतिशोध लेने के लिए उठाई गई तलवार की चमक में पुण्य खिलता है।

'छीनता हो स्वत्व कोई और तू त्याग,
तप से काम ले, यह पाप है।
पुण्य है विच्छिन्न कर दे उसे,
बढ़ रहा तेरी तरफ, जो हाथ है।'

हिंसा के समर्थन में दिनकर काफी आगे चले गये हैं। उन्होंने उन लोगों को कड़ी फटकार लगाई है जो तलवार गलाकर तकली गढ़ने का उपदेश दिया करते हैं। क्षमा उसी भुजंग को शोभती है जिसके दाँतों में गरल का कोश भरा होता है। निर्बल राष्ट्र अपनी निर्बलता से सबल शत्रु को आक्रमण की प्रेरणा देते हैं। कवि ने चीन के साथ हुए विगत युद्ध में देश की पराजय के लिए इन अहिंसावादियों को ही दोषी ठहराया है। कवि देशवासियों को ललकारते हुए कहता है–

'एक ही पंथ अब भी जग में जीने का,
अभ्यास करो छागियो! रक्त पीने का।'

आज गोली-बारूदों का जवाब समाधि लगाकर नहीं दिया जा सकता, लेकिन यदि सचमुच छागियों ने रक्त पीने का अभ्यास कर लिया तो उस देश का क्या होगा जिसके संबंध में कवि की गर्वोक्ति है– 'भारत स्वयं मनुष्य जाति की बहुत बड़ी कविता है।'

आज़ादी के पश्चात् कवि को आशा थी कि आर्थिक और सामाजिक समता की गंगा महलों से लेकर झोपड़ियों तक समान रूप से पहुँचेगी, किंतु आज आजादी मिले हुए कितने वर्ष बीत गये लेकिन हमारे देश के गाँव अभी भी वीरान और निस्पंद हैं। दिनकर जी की पौरुष पुनः राष्ट्रीय भावों के तुरंग पर सवार हो दहाड़ने लगा–

'कुंकुम लेपूँ किसे? सुनाऊँ किसको कोमल गान?
तड़प रहा आँखों के आगे, भूखा हिन्दुस्तान।'

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी कवि का ओज और उत्साह चुप नहीं बैठा। 'समर शेष है' तथा 'परशुराम की प्रतीक्षा' स्वतंत्रता के बाद लिखी गयी कविताएँ है जिनमें दिनकर ने खुलकर क्रांति कुमारी का आह्वान किया है। यही कारण है कि इनके काव्य में स्वाधीनता के पहले और बाद के भारत की मनोव्यथा जितने ओजस्वी और विश्वसनीय ढंग से व्यक्त हुई है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

दिनकर जी की कविताओं में माधुर्य की अपेक्षा ओज की प्रधानता है। उनकी रचनाओं का ओज गुण प्रदायिनी शक्ति देता है। दिनकर जी मूलतः राष्ट्रीय तथा क्रांतिकारी भावना से ही जुड़े कवि हैं तथापि उनकी रचनाओं में विचारों तथा भावनाओं की विविधता मिलती है। कवि एक ओर हुँकार में क्रांति के स्वर की उद्घोषणा करते हैं, वहीं रसवन्ती में रस की धारा प्रवाहित दिखाई पड़ती है। ये राष्ट्रीय भावना के उन्नायक कवि हैं। प्रारम्भ में उनकी वह राष्ट्रीय भावना उग्र और आवेशमयी थी। शोषितों और पीड़ितों के प्रति उनकी सहानुभूति में सारे राष्ट्र की सहानुभूति शामिल थी। कवि आर्थिक विषमता एवं सामाजिक व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोश व्यक्त करते हैं–

'युवती के लज्जा वसन बेच जब ब्याज चुकाए जाते हैं।
मालिक जब तेल-फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं।'

दिनकर को समकालीन भाव बोध ने जिस उग्र भाववादी राष्ट्रीयता की ओर प्रेरित किया, उसने अपने अनुकूल नये बिम्बों की योजना भी की–तलवार, रक्त, क्रांति, अग्नि, जलन, विष, तूफान आदि के रूप में प्रयोग द्वारा उग्र–कठोर भावों की अभिव्यक्ति हुई है। हिमालय, गंगा और प्राचीन महापुरुषों के आख्यान भी इसी राष्ट्रीयता के ही अंश हैं। दिनकर राष्ट्रीय भावनाओं के ओजस्वी गायक हैं। पराधीनता के दिनों में हम पर जो भी अत्याचार एवं दमन हुए, दिनकर के कवि ने उनकी सजग अनुभूति प्राप्त की और अपनी अग्नि वाणी द्वारा उसके प्रतिकार का प्रयत्न किया। यों तो शासन की आलोचना भारतेन्दु और मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में भी है किन्तु उसमें आवेश और आवेग का अभाव है जो दिनकर के काव्य का मुख्य आकर्षण है। भारतेन्दु की राष्ट्रीयता में एक दर्द भरी पुकार है, गुप्त जी में शैली उच्छ्वासहीन और मंथर है लेकिन दिनकर की वाणी में ओज का उबाल है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना हमारे स्वाधीनता आंदोलन की देन है। यदि भारत की स्वाधीनता का निष्पक्ष इतिहास लिखा जाए तो उसमें दिनकर जी की राष्ट्रीय रचनाओं का योगदान महत्वपूर्ण अध्याय का अधिकारी होगा। उनका सम्पूर्ण युग उनकी रचनाओं से प्रकाशित हुआ है और आने वाली शताब्दी में भी उन्हें राष्ट्रपुरुष एवं राष्ट्रकवि के रूप में पूजा जाता रहेगा।

पौरुष और पुरुषार्थ लेकर साहित्य के आकाश में ओज और उत्साह की चिंगारी छिटकाने वाले रामधारी सिंह दिनकर सच्चे अर्थों में हिन्दी के राष्ट्रकवि थे। उन्हें राष्ट्र के भव्य–दिव्य स्वरूप को बचाए रखने की चिंता थी। हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में दिनकर जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

हिन्दी विभाग
सुन्दरवती महिला महाविद्यालय
भागलपुर

तिमिरपुत्र ये दस्यु कहीं कोई दुष्काण्ड रचें ना!
सावधान, हो खड़ी देश भर में गाँधी की सेना।
बलि देकर भी बली! स्नेह का यह मृदुव्रत साधो रे!
मन्दिर औ' मस्जिद, दोनों पर एक तार बाँधो रे!
समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याध,
जो तटस्थ हैं, समय लिखेगा उनका भी अपराध।

– दिनकर

; x æ"Vk fnudj% deB eu"; dk iFk lU;kl ugh g

– डॉ. संजय पंकज

हिन्दी कविता के अप्रतिम शिखर हैं 'दिनकर'। निर्विवादतः आज भी उनका जोड़ नहीं है। भाषा, भाव, सम्प्रेषण–सब में अलग। भाषा की रवानी, भावों की ताजगी और सम्प्रेषण की विलक्षणता के अद्वितीय समाहार दिनकर का काव्य–कर्म आज भी तटस्थ, सूक्ष्म, उदार, पारदर्शी और गंभीर मूल्यांकन की अपेक्षा रखता है। कविता को दिनकर ने ऊँचाई दी, कवियों को स्वाभिमान दिया और राष्ट्र को वह सम्मान दिया जो आज भी अक्षुण्ण है। भारतीय संस्कृति, संचेतना, मनीषा और आत्मा के प्रबल स्वर दिनकर भले ही 'युग के चारण' से अभिहित किये गए हों या 'सामयिकता की झंकृति' से विभूषित; सच तो यह है कि वे युग–द्रष्टा बड़े कवि थे। ओज, शौर्य, तेज, साहस, क्रांति और विद्रोह के कवि दिनकर की विराट् राष्ट्रीय चेतना में सम्पूर्ण भारत अपनी संस्कृति, सभ्यता, अस्मिता और मूल चरित्र के साथ लगातार उद्भाषित होता रहा। देश–काल के साथ रागात्मक और आत्मीय संबंध रखने वाले दिनकर की कविताएँ सच है कि राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य में ज्यादा रही मगर अन्तश्चेतना के आसमान में भी उनकी उड़ान कम नहीं है । वे मानवीय मूल्यों के प्रबल पक्षधर, अतीत के गौरव गायक और समय के प्रखर स्वर थे। भारत की गरिमा उनके लिए सिर्फ भूगोल नहीं बल्कि आत्मा की ज्योति और सार्थक पहचान है। उनका अन्तर्मन, प्राणसंवेदन और भाव–वैभव भारत की गरिमा और मिट्टी की गंध में बसा हुआ था तभी तो उनका बुलंद स्वर है–

''भारत नहीं स्थान का वाचक गुण विशेष नर का है
एक देश का नहीं, शील यह भूमंडल भर का है
जहाँ कहीं एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है
देश–देश में वहाँ खड़ा, भारत जीवित भास्वर है।''

भारत सम्पूर्ण विश्व में सकारात्मक प्रवाही चेतना के रूप में खड़ा होता है। यह उदात्त और अंतरंग चिंतन दिनकर की पारदर्शी दृष्टि और विस्तृत काव्यदर्शी दिशा को संकेतित करता है। 'हुंकार', 'रेणुका', 'रसवंती', 'सामधेनी', 'परशुराम की प्रतीक्षा', 'नीलकुसुम', 'रश्मिरथी', 'कुरूक्षेत्र' जैसे अनेक काव्य–संग्रहों के समर्थ कवि दिनकर का चरमोत्कर्ष 'उर्वशी' महाकाव्य है। दिनकर ने महत्त्वपूर्ण काव्य–कृतियों के साथ ही साथ बाल कविताएं भी भरपूर लिखीं। दिनकर गंभीर गद्यकार भी थे। चिंतनपरक,

मूल्यांकनपरक, विश्लेषणात्मक और गवेषनात्मक अनेक निबंध उन्होंने लिखे। 'संस्कृति के चार अध्याय' इतिहास और संस्कृति-संयोजन का अद्‌भुत ग्रंथ है। भारत अपने अतीत की भव्यता पर खड़ा होकर वर्तमान को कैसे संतुलित और सबल बना सकता है-इसका क्रांतदर्शी दिशा-निर्देश दिनकर ने अपने इस तरह के मूल्यवान लेखनों में किया है।

पौरुष और हुंकार के कवि दिनकर का भाव-वैविध्य उनके संग्रहों में देखने योग्य है। ओजस्वी उद्‌घोष और पराक्रम प्रहार करने वाले वे हृदय के हाहाकार की तुनुकतंत्री को भी सहेजते-संभालते थे। प्रेम, सहृदयता और आकर्षण के भाव दिनकर को बराबर विवश करते रहे। वसंत की ऊर्जा और उष्मा के इस गायक कवि की अंतरंगता में वर्षा ऋतु भी है। आसमान का बूंद-बूंद पृथ्वी पर टपक जाना कहीं-न-कहीं कवि के विराट व्यक्तित्व की वह संवेदनशीलता उजागर करता है जो सहज और स्वाभाविक है। दिनकर वर्षा ऋतु का ऐकांतिक आनंद नहीं उठाते, बल्कि पृथ्वी-पुत्री के संग होने के लिए भागते हैं वहाँ, जहाँ जीवन को संवारने का उपक्रम किया जा रहा है-

''कवि असाढ़ की रिमझिम में, धन खेतों में जाने दे
कृषक-सुन्दरी के स्वर में, अटपटे गीत कुछ गाने दे।''

राष्ट्रीय चेतना का कवि कहकर दिनकर का लगातार एकांगी मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया। जिसके कारण उनकी वे रचनाएँ बड़े पाठक वर्ग की आंखों से ओझल रही जिनका मूल्य शाश्वत और कालजयी है। वे गीतात्मक अनुभूति के भावुक और सरल कवि भी हैं। आम जन और उनके दुख-दर्दों तथा उनके जीवन-संघर्ष तथा उसके अंतरंग-उल्लास को भी उन्होंने अपना हृदय और स्वर दिया है। गांव की मिट्टी दिनकर को बराबर आकर्षित करती और बांधती रही है। ग्राम्य-संवेदना और महानगरीय बोध को उनकी रचनाशीलता में जीवंतता और सच्चाई के साथ देखने का स्वाद ही अलग है। दिनकर समग्र विकास के विश्वासी थे। कला और विज्ञान दोनों के विकास में ही राष्ट्र का विकास देखते थे-

''एक हाथ में कमल एक में धर्म दीप्त विज्ञान
लेकर उठने वाला है धरती पर हिन्दुस्तान।''

आज हमारे देश का राजनैतिक परिदृश्य जो बना है उसका दिग्दर्शन दिनकर ने अपने काव्य में बहुत पहले करा दिया था। जिस दौर में कमल केन्द्रित कविहृदय प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी और मिसाइल मैन राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की जुगलबंदी थी, उसी में प्रखर समाजवादी राष्ट्रीय नेता जार्ज फर्नांडिस भी एक मजबूत तिकड़ी बनाते हुए मजबूती से उपस्थित थे। तभी पोखरण में जो परमाणु परीक्षण हुआ था और जिसकी वैज्ञानिक उपलब्धता से सम्पूर्ण विश्व दहल गया था; इतिहास का वह स्वर्णिम अध्याय कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। दिनकर की उपर्युक्त पंक्तियाँ जैसे समय को तभी पूरा का पूरा देख रही थी।

दिनकर का 'द्वन्द्वगीत' जो एक काव्य-पुस्तिका है जिसमें आत्मबोध, समय-चिंतन और सजग संवाद की रचनात्मक प्रस्तुति है। जीवन के कटु यथार्थ, व्यावहारिक सच और समयसाक्ष्य अनुभव के निचोड़ को दिनकर ने काव्य रूप दिया है। 'हारे को हरिनाम' तक आते-आते दिनकर का स्वर नैराश्य का नहीं बल्कि अध्यात्म और भावुकता का हो जाता है। नयी पौध अर्थात् आती हुई नयी प्रतिभा और बच्चों के पास दिनकर बार-बार जाना चाहते हैं। वे नयी ऊर्जा से उद्‌भाषित होने की ललक से भरे रहते थे-

''बूढ़ों का हल्कापन बूढ़ों को
पसंद नहीं आता है
मगर बच्चे उसे प्यार करते हैं
भगवान की कृपा है कि
वे अभी गंभीरता से डरते हैं।''

सहज, सरल और सुबोध कवि दिनकर लय, रस और प्रवाह की त्रिवेणी बहाते हैं अपनी रचनाओं में। कविता को कविता की शर्त्त पर स्वीकारने वाले दिनकर कुशल कलासौष्ठव और मनुष्यता के हिमायती, तीव्रानुभूति और सघन संवेदना के कालजयी कवि है। सबको समान अधिकार और सम्मान की बात वे पूरे गर्व से करते थे। उनकी समदर्शिता में प्रेम और आत्मीयता लबालब है-

''चाहे जो भी फसल उगा ले,
तू जलधर बहाता चल
जिसका भी घर चमक उठे,
तू मुक्त प्रकाश लुटाता चल।''

दिनकर राष्ट्रीय संचेतना के ओजस्वी स्वर के साथ-ही-साथ मनस्वी कवि थे। शाश्वत मूल्य, चिंतन, सत्य और भावी स्वरूप उनके चिंतन और सृजन में पूरी सजगता के साथ उपस्थित दिखते हैं। सच कहने का साहस, प्रतिरोध का बल और जनपक्षधरता दिनकर के काव्य में देखा जा सकता है। सत्ता के साथ होकर भी सत्ता की विसंगतियों को देखकर दिनकर चुप बैठने वाले नहीं थे। उनका कवि उन्हें प्रतिपक्ष की भूमिका के लिए विवश कर देता था। 'परशुराम की प्रतीक्षा' हो या अन्य कविताएँ, दिनकर ने सत्ता के गलियारे के छद्‌म और फरेब को ललकारते हुए उजागर किया है। सच में तो कवि आम आदमी का प्रतिनिधि होता है और उसकी प्रतिभा प्रतिपक्ष की भूमिका में भी ज्यादा खुलती-खिलती है। जनतंत्र का खुला उद्‌घोष करते हुए उन्होंने कहा-

''सदियों की ठंडी-बुझी राख सुगबुगा उठी
मिट्‌टी सोने का ताज पहन इठलाती है
दो राह, समय के रथ का घर्घर नाद सुनो
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।''

आज के कवियों में इस साहस का अभाव है। किसी पार्टी का झंडाबरदार बन जाना और बात है; ईमानदारी का बयान करना और बात। वैचारिक प्रतिबद्धता का यह मतलब नहीं कि हम जड़-संवेदन हो जाएँ। मूल्य और मनुष्यता जहाँ खतरे में हो वहीं कवि को सचेत होकर मुखर हो जाना चाहिए। दिनकर की तरह की काव्यात्मक ऊर्जा तथा साहसपूर्ण प्रतिवाद आज किंचित कवियों में दिख जाए तो आश्चर्य है। वैचारिक जड़ता के नाम पर छद्‌म और कायरता का कारोबार दिनकर ने कभी नहीं किया। मानवीय मूल्यों तथा उसके स्वाभाविक जीवन-विकास में दिनकर की अटूट आस्था जीवन भर रही। कीचड़ को कीचड़ तथा पानी को पानी कहना दिनकर की ईमानदारी थी। उनका विश्वास तो भारतीय संस्कृति, गौरव, गरिमा, धरती, मनुष्य, अन्तरिक्ष, पर्वत, सागर कहने का तात्पर्य भारत के चप्पे-चप्पे में था। सबकी जयकामना उनका ध्येय और स्वभाव रहा है-

''जय मानव की धरा साक्षिणी
जय विशाल अम्बर की जय हो
जय गिरिराज! विन्ध्य गिरि जय-जय
हिन्द महासागर की जय हो।''

सचेतन के रूप में भारत के जड़ को भी दिनकर देखते और मानते रहे। साथ ही उसको संवाद सक्षम भी बनाते रहे।

शांति और प्रेम में निष्ठा रखनेवाले दिनकर युद्ध और क्रांति से विमुख नहीं हुए। मगर शांति, प्रेम और करुणा को जीवन-जगत का सर्वश्रेष्ठ माप-दण्ड और मूल्य दिनकर मानते थे-

''लोहे के पेड़ हरे होंगे,
तू गीत प्रेम के गाता चल
नम होगी यह मिट्टी जरूर,
आंसू के कण बरसाता चल।''

संवेदनशीलता कवि की सबसे बड़ी पूँजी होती है। इस सम्पत्ति पर वह सदा गौरवान्वित होता है और उसका जनकल्याणकारी उपयोग वह पूरी उदारता और निष्ठा से करता है। दिनकर संवेदनशील, समय-सजग, युग-द्रष्टा एक ऐसे बड़े और महत्त्वपूर्ण कवि हैं, जिनकी प्रासंगिकता पर बहस व्यर्थ है। वे तुलसी, सूर, कबीर, निराला की तरह हर युग और हर समय तथा परिवेश के विराट् कवि हैं। अनुलंघ्य और कालजयी दिनकर बार-बार पढ़े जाएंगे। सहज झंकृति, रसमयता तथा वैराट्य के अप्रतिम कवि दिनकर पीढ़ियों को संस्कारित, परिमार्जित, पुष्ट और प्रेरित करने वाले हिन्दी कविता के प्राणवान गौरव शिखर हैं

''हमें कामना नहीं सुयश विस्तार की
फूलों के हारों की जय-जयकार की।''

दिनकर की रचनाधर्मिता में आग के साथ ही साथ राग भी है। जहाँ उनका अग्निधर्मा रूप राष्ट्रीयता के संदर्भ में अतीत गौरवगान तथा जागृति के स्वर में है, वहीं उनका अन्तर्राग कोमल अनुभूतियों में ढलता हुआ स्त्री-पुरुष के प्रेम में भी निहित होता है। 'उर्वशी' प्रेम-परक कामाध्यात्मिक महाकाव्य है। बहुत आलोचक दिनकर को प्रेम का कवि मानते हैं। स्वच्छन्दतावादी धारा के कवि दिनकर में एक ही साथ छायावादी, प्रगतिवादी एवं अनुरागवादी काव्यधरा का सम्मिश्रण मिल जाता है। 'रेणुका' एवं 'रसवंती' जैसी प्रारंभिक कृतियों में यौवन एवं सौन्दर्य संबंधी भोगवादी, रागवादी एवं प्रेम भावनाओं का स्वरूप देखने को मिलता है।

''पड़ जाता चस्का जब मोहक प्रेम सुधा पीने का
सारा स्वाद बदल जाता है दुनिया में जीने का।''

दिनकर का उद्यम पौरुष प्रेम की जंजीर से आबद्ध हो बहुत हद तक शिथिल हो जाता है। यह शिथिलता प्रेम की मादकता होने के बावजूद ऊर्जाग्राहिणी योगसाधना भी तो है। प्रेम के वशीभूत हुआ कवि का संसार जिस आनंद से भर जाता है वह अनकहा और बहुत दूर तक अनगाया रह जाता है। प्रेम का संसार माया और मोह का संसार है, बंधन का संसार है। संभव है इसी बंधन में मुक्ति भी निहित है। प्रेम में बंध मन आत्मा के पास पहुंचकर उन्मुक्त हो जाना चाहता है। संकोच के साथ मगर ईमानदारी भरे शब्दों में दिनकर कहते हैं-

''माया के मोहक वन की, क्या कहूँ कहानी परदेसी
भय है सुनकर हँस दोगे, मेरी नादानी परदेसी।''

दिनकर की कविताओं में विविधताएँ हैं। प्रकृति, प्रेम, सौन्दर्य, गाँव, ऋतुएँ, धरती और आकाश के साथ-ही-साथ बाँसुरी और पाञ्चजन्य का मिलता हुआ क्षितिज भी दृष्टिगोचर होता है। बचपन में बाँसुरी बजाने वाला श्रीकृष्ण युद्ध के मैदान में पाञ्चजन्य फूंकता है। दिनकर युग के भाल पर खड़ा होकर कृष्ण जैसा क्रांति-उद्घोष करते हुए अपनी अस्मिता का परिचय देते हैं-

''झूमे जहर चरण के नीचे, मैं उमंग में गाऊँ
तान-तान फण व्याल कि तुझपर मैं बाँसुरी बजाऊँ
विषधरी मत डोल कि मेरा आसन बहुत कड़ा है
कृष्ण आज लघुता में भी, साँपों से बहुत बड़ा है।''

स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के साथ घनिष्ठता और राज्यसभा सदस्य होने के बावजूद दिनकर को कभी सत्ता का मद उन्मादित नहीं कर सका। वे सत्ता के यथार्थ को समझते थे। राजनीति के प्रपंच को नजदीक से देखते थे। देश की राजधानी दिल्ली को 'भारत का यह रेशमी नगर' कहकर वे व्यंग्य भी करते थे। स्वराज्य प्राप्ति के बाद समाज और राष्ट्र की बिगड़ती दशा और दिशाभ्रमित होते नेताओं को देखकर दिनकर को रोष, क्षोभ और आक्रोश की सीमा नहीं रही। उन्होंने स्वंय को ही लक्ष्य बनाकर राजनीति और राजनीतिज्ञों पर व्यंग्य तथा देश की राजधनी पर करारा प्रहार किया-

''हो गया एक नेता मैं भी तो बन्धु सुनो -
मैं भारत के रेशमी नगर में रहता हूँ
जनता तो चट्टानों का बोझ सहा करती
मैं चाँदनियों का बोझ किस बिधि सहता हूँ।''

अपनी दिल्ली केन्द्रित लम्बी कविता में उन्होंने जिस स्वतंत्र भारत की दुर्दशा का वर्णन किया है वह दुर्दशा आज भी वैसी ही बनी हुई है बल्कि और भी बदतर स्थिति में जा रही है। देश को चतुर्दिक आतंक और त्रासदियों को झेलना पर रहा है। प्राकृतिक कोप के साथ-ही-साथ विज्ञान और विकास का मानवीय कोप भी, सामंती संताप भी और सुविधा भोगी नेताओं का अभिशाप भी यहाँ की कोटि-कोटि जनता को झेलना पर रहा है। आज पूरा देश अंधकार में डूबा हुआ है और रेशमी नगर दिल्ली में जगमगाती रौशनी की चकाचौंध है। नैतिकता, मर्यादा शिष्टता ताक पर रख दी गयी है। परम्परा और पुरखों की धज्जियाँ उड़ायी जा रही हैं। स्त्री-अस्मिता पर कुठाराघात हो रहा है। भारतीय संस्कृति सिसकियाँ भर रही हैं। लोक-अंचल कंटकाकीर्ण हो रहा है। सामाजिकता लहुलूहान है और सादगी का उपहास उड़ाया जा रहा है। कर्मठता का शोषण और पूँजीवाद का सम्पोषण हो रहा है। विसंगतियों और त्रासदियों में राष्ट्र-निष्ठा खोती चली जा रही है। अभाव झेलती जनता और दुर्भाव से भरे राजनेता दोनों दिल्ली की ओर मुखातिब हैं। सुविधा के लिए जनता दिल्ली की ओर देख रही है और दुविधा पैदा करते वाले नेता जनता के नाम पर लूट-खसोट मचा रहे हैं। नेताओं की शान-शौकत और जनता की दु:ख-विपत्ति तथा देश की त्रासदी को रेखांकित करती दिनकर की यह पंक्तियाँ आज भी अक्षरश: चित्र की भांति है-

''भारत शूलों से भरा, आँसुओं से गीला
भारत अब भी व्याकुल विपत्ति के घेरे में
दिल्ली में तो खूब ज्योति की चहल-पहल
पर भटक रहा है सारा देश अंधेरे में।''

इतनी स्पष्टवादिता बहुत कम रचनाकारों में मिलती है। राष्ट्रवाद के नाम पर तथाकथित कुछेक आलोचकों ने दिनकर की खिल्लियाँ भी उड़ायी। महाकाव्य 'उर्वशी' के प्रकाशन के बाद हिन्दी आलोचना जगत को अचानक ही काठ मार गया था। नामधारी आलोचक जहाँ चुप थे वहीं

कविता के रसज्ञ पाठक और समीक्षक उस पर जी खोलकर बोल रहे थे। दिनकर को दिग्भ्रमित कहने वाले स्वयं ही भ्रमित रहे। दिनकर तब भी सूर्य की भाँति चमक रहे थे, आज भी अपनी पूरी प्रखरता के साथ साहित्य जगत में प्रकाशमान हैं। जरूरत है उनकी रचनाधर्मिता का खुली आँखों मूल्यांकन करने की। जिस दिनकर ने पुरूरवा के मुख से उर्वशी में यह कहा-

''मर्त्य मानव की विजय का तूर्य हूँ मैं
उर्वशी! अपने समय का सूर्य हूँ मैं।''

दिनकर तब तो पूरे प्रकाशमान थे हीं, आज भी हैं। वे महज लीक पीटने वाले बड़े कवि नहीं थे। वे लीक का निर्माण भी कर रहे थे। युवाओं को प्रखरता दे रहे थे। देश की सोयी चेतना को झकझोर कर जगा रहे थे। दिनकर मन-प्राण और आत्मा का प्रवल स्वर बिखेर रहे थे। एक तरफ युवाओं को तन-मन से पुष्ट होने के लिए प्रेरित कर रहे थे-

''पत्थर सी हों मांसपेशियाँ लोहे से भुजदण्ड अभय
नस-नस में हो लहर आग की
तभी जवानी पाती जय।''

तो दूसरी तरफ उसे ललकारते हुए आशीर्वाद और शुभकामना भी दे रहे थे कि आने वाला समय उनका ही है। प्रौढ़ बूढ़े होकर जीर्ण-शीर्ण पत्ते की तरह झड़ते-मरते चले जायेंगे मगर उपवन का स्वागत नए-नए किसलय नित करते रहेंगे। आती हुई पीढ़ी ही राष्ट्र का कर्णधार हेती है। उसी के बूते राष्ट्र एक स्वरूप ग्रहण करता है और संस्कृति निरंतर उद्दात्त होती चली जाती है। दिनकर उसे विवेकानंद के इस उपनिषद् आर्ष-स्वर 'उतिष्ठत, जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत' में जाग्रत कर रहे थे और लोकनायक जयप्रकाश के बहाने आने वाले भविष्य को दिखला रहे थे यह कहते हुए कि कल उनका है, वे निरंतर शिखर चढ़ें। सारा आकाश उनके स्वागत में फैला हुआ है-

''सेनानी करो प्रयाण अभय भावी इतिहास तुम्हारा है
ये नखत अमा के बुझते हैं, सारा आकाश तुम्हारा है।''

दिनकर का स्वर साम्यवादी भी होता है। वे व्यवस्थागत और सामाजिक विसंगतियों को देखकर उत्तेजित हो जाते हैं। एक तरफ पूँजीवादी व्यवस्था की सुख-सुविधा और दूसरी तरफ आम जनता का दुख: अभाव उन्हें आहत कर देता है। वे चुप नहीं बैठते और कह उठते हैं-

''श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र
भूखे बच्चे अकुलाते हैं
माँ की हड्डी से चिपक-ठिठुर
जाड़े की रात बिताते हैं।
बहनों की लज्जा-वसन बेच
जब ब्याज चुकाये जाते हैं,
मालिक तब तेल फुलेलों पर
पानी-सा द्रव्य बहाते हैं।।''

दिनकर का आक्रोशी स्वर नयी क्रांति का संकेत है। कहीं भोजन से अघाये हुए और ठूंस-ठूंसकर खाते-मरते हुए सम्पन्न लोग हैं, तो कहीं भोजन के अभाव में बीमार पड़ते और मरते हुए अभावग्रस्त लोग हैं। यह अत्याचार-अनाचार नहीं तो और क्या है ? किसान-मजदूरों के खून-पसीने को चूस-चूसकर, उनका हक मार-मारकर भोग, विलास और वैभव में डूबे हुए पूंजीपतियों और नेताओं के आचरण से क्षुब्ध दिनकर भारत की स्वतंत्रता को सम्पूर्ण स्वतंत्रता के रूप में नहीं मानते। वे समत्व के पक्षधर थे। विश्व को अशांति से मुक्त करने के लिए 'कुरुक्षेत्र' संग्रह में समाधान प्रस्तुत करते हैं-

जो कुछ न्यस्त प्रकृति में है वह मनुज मात्र का धन है
x x x x x x
शांति नहीं तबतक जबतक सुख-भाग न नर का सम हो।
x x x x x x
राजा प्रजा नहीं कुछ होता होते मात्र मनुज ही।

धरती की सारी सम्पत्ति पर हर व्यक्ति का एक जैसा बराबर का और समान अधिकार है। इस सिद्धान्त को यदि हम व्यवहारिक रूप से मान लेते हैं तो संभवत: युद्ध की विभीषिका कम जाएगी। हवा, पानी, धूप और आसमान की तरह धरती पर भी सभी का एक-सा अधिकार होना चाहिए। सबको सेवा करने का, क्षमा करने का अधिकार हो; प्रभुत्व स्थापित करने का नहीं। स्वार्थ भरी वैयक्तिकता ही सार्वजनिकता को बाधित और आहत करती है। युद्ध इसलिए भी होता है। आक्रोश इसलिए भी होता है। क्रांति का स्वर भी इसलिए बुलंद होता है। क्रांतिचेता दिनकर उबल पड़ते हैं-

''हटो व्योम के मेघ पंथ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं
दूध-दूध ओ वत्स! तुम्हारा, दूध खोजने हम जाते हैं।''

इस तरह के अनेक प्रतिक्रियात्मक मगर रचनात्मक स्वर दिनकर की रचनाओं में भरे हुए हैं। इतिहास के गंभीर अध्येता दिनकर को पता था कि राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में सिर्फ नामधारियों का ही योगदान नहीं है। ऐसे अनेक गुमनाम स्वतंत्रता-सेनानी हैं, जिन्होंने दासता की जंजीर बंधी भारतमाता की मुक्ति के लिए अपना सबकुछ अर्पित कर दिया। अपना घर-परिवार छोड़कर राष्ट्र के लिए जीवन को होम दिया। इतिहास ने बड़े लोगों को बड़े आदर के साथ सहेज लिया और जिनका योगदान किसी गांधी, सुभाष, भगत, आजाद, बिस्मिल, नेहरू से कम नहीं था; उन्हें विस्मृत कर दिया। स्वाधीनता की बलि-बेदी पर चढ़ने वाला हर शीश वंदनीय, अभिनंदनीय और पूजनीय है। भारत माता के लिए गिरा हुआ लहू का हर बूंद गंगाजल से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वह समिधा की तरह पवित्र और पूजा की तरह हृदयस्थ है। संवेदनशील कवि दिनकर ने इतिहास की सीमा, सामर्थ्य और विवशता को समझते हुए वैसी अर्पित होने वाली हुतात्माओं को बड़े ही आस्था के साथ अपनी रचनाओं में समेट-संभाल लिया-

''अंध चकाचौंध का मारा, क्या जाने इतिहास बेचारा
साक्षी है उनकी महिमा के, सूर्य-चन्द्र-भूगोल-खगोल
कलम आज उनकी जय बोल।
जला अस्थियाँ वारी-वारी, छिटकायी जिनने चिनगारी
चढ़ गये जो पुण्य वेदी पर, लिए बिना गर्दन का मोल।
कलम आज उनकी जय बोल।''

कलम को हथियार बनाने वाले दिनकर सौन्दर्य और शक्ति, कला और विज्ञान, मेधा और शौर्य को जीवन के समग्र विकास के लिए संतुलित रूप में आत्मसात करने पर बल देते हैं। वे तो मुँह में वेद और पीठ पर तरकस के वाहक-संवाहक परशुराम के वंशज थे। इसीलिए कहते भी थे-

''दो में से तुम्हें क्या चाहिए, कलम याकि तलवार
मन में ऊँचे भाव कि तन में शक्ति अजेय-अपार।
.....
अंध कक्ष में बैठ रचोगे ऊँचे-मीठे गान,
या तलबार पकड़ जीतोगे बाहर का मैदान।।''

युवाओं के लिए मानसिक और शारीरिक बल दोनों अनिवार्य है। इस देश का शौर्य कलम और तलवार दोनों में निहित रहा है। महान राष्ट्रवादी योद्धा-संन्यासी विवेकानंद मेध-सम्पन्न और शारीरिक रूप से शक्तिशाली एक ऐसे क्रांतदर्शी व्यक्तित्व थे जो हर भारतीय युवा के आदर्श हैं। दिनकर की रचनाधर्मिता में विवेकानंद, अरविंद, गांधी, सुभाष, जयप्रकाश और लोहिया का चरित्र तथा आदर्श और सिद्धान्त ध्वनित होता है। दिनकर साहित्य, संस्कृति, राष्ट्र और आती हुई पीढ़ी के ऊर्जावान एक ऐसे प्रहरी हैं जो शब्द और अभिव्यक्ति की आँखों पूरी सजगता के साथ समय को सुरक्षित करते हुए आने वाले समय को एकटक देख रहे हैं। विश्वास का प्रबल स्वर, साहस का पारदर्शी दिग्दर्शन और भाषा-भंगिमा तथा अभिव्यक्ति का कालजयी कवि दिनकर आनेवाले समय को भी दस्तक देते रहेंगे– यह सामर्थ्य उनके लेखन और संवेदन में है। दिनकर फिर-फिर प्रासंगिक होते रहेंगे। उनकी प्रासंगिकता पर बहसें होती रहेंगी। बुद्धिजीवी विमर्शों का द्वार खोलते और बंद करते रहेंगे। जनसंस्कृति और जनचेतना में रचा-बसा रचनाकार समयातीत और कालजयी होता है। उसकी रचनाधर्मिता तथाकथित आलोचकों की मुखापेक्षिणी नहीं होती। दिनकर आज भी सबसे ज्यादा उद्धृत होने वाले बड़े कवि हैं। उनका संन्यस्थ मन सांसारिक कर्मों और कर्मठता से कभी विमुख नहीं हुआ। वे धराविश्वासी आकाशव्यापी ऐसे कवि के रूप में हमारे सामने हैं जो शून्य और साकार को एक साथ साधने में सिद्ध रहा। वे जीवनपर्यंत धरती से जुड़े रहे–

''धर्मराज! कर्मठ मनुष्य का पथ संन्यास नहीं है,
नर जिस पर चलता वह धरती है, आकाश नहीं है।''

- 'शुभानंदी', नीतीश्वर मार्ग,
आमगोला, मुजफ्फरपुर-842002

n fyr pruk ,o 'kk;j dh Ñfr% jf'ejFkh

- राजेश कुमार 'माँझी'

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' का काव्य राष्ट्रीय भावना और सांस्कृतिक चेतना से ओत-प्रोत है। ये क्रांतिकारी होने के साथ-साथ समाजवादी एवं सुधारवादी भी थे। इनकी ओजस्विनी वाणी लोकहृदय का स्पर्श करने वाली है। इन्होंने भारत के अतीत गौरव का गान भी अपनी कविता में किया है। भाषा की सरलता के साथ भावों की उच्चता ने इनकी कविता को बहुत ही प्रभावोत्पादक बना दिया है। इनके काव्य में प्रांजल संस्कृतनिष्ठ भाषा की गरिमा के साथ ही सरल बोलचाल की मुहावरेदार छटा भी विद्यमान है । दिनकर की प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं - 'रेणुका', 'हुंकार', 'कुरूक्षेत्र', 'रश्मिरथी', 'उर्वशी' तथा 'परशुराम की प्रतीक्षा'।

गहन जीवन अनुभवों की सौंधी मिट्टी से पगे दिनकर की संपूर्ण रचनाधर्मिता में मानवीय सरोकारों के स्वर कूट-कूटकर भरे हुए हैं। दिनकर जी ने स्वांत: सुखाय कविता का गायन व लेखन नहीं किया है बल्कि उनकी कविता एक पूर्ण रूप से दमित, कुंठित एवं अभावग्रस्त जन चेतना को प्रतिबिंबित करते हुए संपूर्ण युगबोध को रूपायित करने में सफल हुई है। दिनकर ने सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया है ।

सामाजिक पीड़ा की पराकाष्ठा की नाव में बैठे हुए दिनकर जी का चेतन मन जीवन की विषमताओं से हार नहीं मानता। दमन, प्रताड़ना एवं शोषण के निकष पर भी कवि के आदर्शवादी व्यक्तित्व का निशांतकेतु समय के अनाचारों को चुनौती देता हुआ इनसे उबरने का न केवल संकल्प लेता है अपितु अतुलनीय पराक्रम एवं भावप्रवण संघर्ष से इन युगीन दर्दों, कुंठाओं, शोषणों एवं यातनाओं के भंवर से उन्मुक्त होकर मनवांछित स्वतंत्रता के चरम पर कर्म का ध्वजारोहन करने की प्रतिबद्धता भी अंत तक लिए रहता है।

कवि रश्मिरथी के दलित समुदाय के नायक कर्ण के अस्तित्व की रक्षा के लिए अपने काव्य चिंतन में प्राणपण से जूझता ही नहीं बल्कि उनमें मूल्यों की प्राण प्रतिष्ठा भी इस प्रकार करता है -

ऊँच-नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है,
दया-धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है ।
क्षत्रिय वही, भरी हो जिसमें निर्भयता की आग,
सबसे श्रेष्ठ वही ब्राह्मण है, हो जिसमें तप-त्याग ।

तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतला के,
पाते हैं जग में प्रशस्ति अपना करतब दिखला के।
हीन मूल की ओर देख, जग गलत कहे या ठीक
वीर खींच कर ही रहते हैं इतिहासों में लीक।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि दिनकर महाभारत के संजय की भांति केवल घटित घटनाओं एवं परिस्थितियों का दृश्य वृत्तांत को ही चित्रित नहीं करते हैं अपितु युगीन समस्याओं एवं दुख दर्दों के भंवर में त्रस्त तथा ध्वस्त हो चुकी मानसिकताओं एवं कायाओं में नवस्फूर्ति एवं नवचेतना का शंखनाद कर उसके लिए कारगर समाधान भी जुटाते हैं जो निश्चित रूप से उनके टूट चुके विश्वासों में पुनर्जीवन के अमृत रस को घोलता है।

सच्चे अर्थों में अगर देखा जाए तो दिनकर केवल जीवन मूल्यों के कवि नहीं हैं अपितु उस आम जन के कवि हैं जिनकी दु:ख-सुख, पीड़ा यातनाओं तथा मिलन-बिछोहों जैसी मनस्थितियों की अनुगूंज उनकी संपूर्ण रचनाधर्मिता की ऊर्ध्वगामी यात्राओं में सर्वत्र दिखाई देती है। दिनकर ने कल्पना के पंख पहनाकर केवल भावनाओं के आसमान में गोते लगाने वाली कविताओं के यान नहीं उड़ाए हैं अपितु अपनी प्रत्येक कविता की सामर्थ्य जन जीवन तथा जीवन एवं सामाजिकता से प्राप्त की है। इसलिए अभिव्यक्ति की जीवटता ने मात्र दिनकर की कविता को सर्वग्राह्य एवं सर्वप्रिय नहीं बनाया है अपितु कवियों की श्रेणी में भी उन्हें एक अलग एवं विशिष्ठ पहचान दी है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि समाज एवं लोक से कविवर दिनकर ने न केवल अभिप्रेरणा हासिल की है बल्कि काव्य की वह संजीवनी भी हासिल की, जो विषमताओं के चलते भी किसी रूप में आदर्शों के घुटने टेकने के लिए गणयन मुखर नहीं होती। दिनकर का अडिक विश्वास है कि जो सत्य, आदर्श एवं निष्ठा के तप से तपा हुआ है और जिसे लोक एवं जन का मौलिक समर्थन प्राप्त है उसे परास्त करने की हिम्मत एवं ताकत किसी में भी नहीं हो सकती। लोक की शक्ति युग की समस्त शक्तिओं से सर्वोपरि है। इसका बेबाक चित्रण दिनकर ने 'रश्मिरथी' के नायक कर्ण के मुख से इस प्रकार किया है -

पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो, मेरे भुजबल से,
रवि समान दीपित ललाट से और कवच-कुंडल से
पढ़ो उसे जो झलक रहा है मुझमें तेज प्रकाश
मेरे रोम-रोम में अंकित है मेरा इतिहास।

अर्जुन बड़ा वीर क्षत्रिय है तो आगे वह आवे,
क्षत्रियत्व का तेज जरा मुझको भी तो दिखलावे।
अभी छीन इस राजपुत्र के कर से तीर-कमान
अपनी महाजाति की दूँगा मैं तुमको पहचान।

दिनकर की काव्य-कृति 'रश्मिरथी' पर विचार करने के उपरांत दलित-विमर्श की बात स्पष्ट हो जाती है जिसकी चर्चा आजकल की जा रही है। 'रश्मिरथी' महाभारत युग की कथा पर आधारित रचना है जिसका नायक कर्ण है। 'रश्मिरथी' का तात्पर्य वह व्यक्ति होता है जिसका रथ रश्मि अर्थात सूरज की किरणों का होता है। दिनकर की काव्यकृति 'रश्मिरथी' में कर्ण का नाम 'रश्मिरथी' है क्योंकि उसका चरित्र सूर्य के समान प्रकाशमय है। यह भी सर्वविदित है कि कर्ण महाभारत का अत्यंत यशस्वी पात्र है। उसका जन्म भी कुंती के गर्भ से उस समय होता है जब वह अविवाहिता होती है और लोक-लाज के डर से कुंती कर्ण को त्याग देती है। कुंती द्वारा त्यागे जाने के उपरांत उसका पालन-पोषण अधिरथ और उसकी पत्नी राधा करते हैं जिनका संबंध एक नीच मानी जाने वाली जाति से होता है। एक दलित परिवार में पलने के कारण कर्ण को दलित होने का दंश सहना पड़ता है ।

जैसा कि हम सब यह जानते हैं कि महाभारत युग राजनीति प्रेरित युग था। उस युग में ब्राह्मणों, क्षत्रिय और शूद्र में संघर्ष चल रहा था। ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग राजनीति के मूल में चक्र चला रहे थे क्योंकि सत्ता और संपत्ति उन दोनों के हाथ में थी। परंतु एकलव्य और कर्ण उस महाभारत काल में भी दलित नायक के रूप में सामने आए तब ब्राह्मणों एवं क्षत्रिय का सिंहासन डोलने लगा ।

कविवर दिनकर ने आर्य संस्कृति के चिर दलित अछूत वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में कर्ण को नायक बनाकर उसके जीवन के मनोवैज्ञानिक पक्ष को उभारा है । हम देखते हैं कि महाभारत के पात्र कर्ण को गुरू द्रोणाचार्य ने शूद्र और अछूत कहकर उसे शस्त्र विद्या देने से इंकार कर दिया है। यही नहीं गुरू द्रोणाचार्य एकलव्य जैसे वीर का अंगुठा ही दान में माँग लिया है क्योंकि वह एक दलित वर्ग से था। दिनकर ने कर्ण को अछूतों का प्रतिनिधि बनाकर मानवतापूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित की है। दिनकर की कविता की निम्न पंक्तियों में हम यह भी देखते हैं कि इन्द्र किस प्रकार कर्ण से उसका कवच-कुंडल माँगने के बाद लज्जित होता है और अपने को पापी मानता है -

तू दानी, मैं कुटिल प्रवंचक, तू पवित्र मैं पापी।
तू देकर भी सुखी और मैं लेकर भी परिपाती।।

दिनकर ने कर्ण की शक्ति और भक्ति दोनों से प्रभावित होकर उसे शूद्र के स्थान पर एक महा पराक्रमी योद्धा माना है और उसे निष्कंलक भी घोषित करने का भरसक प्रयास किया है क्योंकि धर्म-शास्त्रों में उल्लिखित है कि-*जन्मना जायते शूद्रे*- जन्म से सभी शूद्र होते हैं। कर्म के आधार पर बाद में वे एक विशिष्ठ जाति के माने जाते हैं।

'रश्मिरथी' के अनुशीलन के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दिनकर ने एक ओर समाज में शोषित, लाचार तथा श्रमिक वर्ग आदि के लिए आवाज उठाई है तो दूसरी ओर शोषक वर्ग, तानाशाही एवं सत्तारूढ़ वर्ग के छद्मजाल को तोड़ने का प्रयास किया है। दिनकर अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में फैली कुरीतियों, हताशा, निराशा एवं अन्याय के विरूद्ध क्रांति करना चाहते हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए उन्होंने इस काव्य कृति की रचना की है। हम सभी यह जानते हैं कि कर्ण का जन्म उच्च कुल में हुआ परंतु त्याग दिया गया। समाज उसे सूतपुत्र के रूप में ही जानता है। यह अभिशाप कर्ण जहाँ भी गया उसके साथ ही जुड़ा रहा। वह वीर है, दानी है, त्यागी है, सर्वगुण सम्पन्न है परंतु साथ ही सूतपुत्र अर्थात् निम्न जाति का है। उसके गुणों का बखान दिनकर जी ने 'रश्मिरथी' में इस प्रकार किया है -

जय हो, जग में जले जहाँ भी,
नमन पुनीत अनल को,
जिस नर में भी बसे,
हमारा नमन तेज को, बल को ।
किसी वृंत पर खिले विपिन में,
पर, नमस्य है फूल,
सुधी खोजते नहीं, गुणों का आदि,
शक्ति का मूल।।

उपरोक्त विवेचनों के आधार पर यहाँ ध्यान देने की यह बात है कि कवि दिनकर ने 'रश्मिरथी' में इस बात का उल्लेख भी बड़े ही सरल शब्दों में किया है कि सुंदर, सुगंधित और मनोहारी फूल केवल राजाओं के महलों एवं उपवनों में ही नहीं खिलते। दिनकर जी कहते हैं कि राजमहलों एवं किलों से दूर कुंज-काननों में एक पुष्प असंख्य बार खिलते हैं -

नहीं खिलते कुसुम मात्र राजाओं के उपवन में
अमित बार खिलते वे पुर से दूर कुंज-कानन में।

जिन गुणों को राजकुमारों का निजत्व माना गया, उन्हें दिनकर अनेक साधारण युवकों में भी संभव होने का साक्ष्य देते हैं और इस प्रकार रश्मिरथी का कर्ण उपेक्षित जनता का नायक बनकर सामने आया है। दिनकर ने 'रश्मिरथी' के माध्यम से दलित हितों की बात की है। कर्ण दलितों का नायक है जो इस बात को प्रतिबिंतित कर रहा है कि किसी भी व्यक्ति को अपने अधिकारों का ज्ञान होना चाहिए और अधिकारों के हनन की स्थिति के उसे आवाज उठानी चाहिए। जीत उसी की होती है जो अपने अधिकारों के प्रति सजग होता है और अपने कत्तव्यों का निर्वाह भी सही ढंग से करता है।

- हिंदी अधिकारी
जामिया मिल्लिया इस्लामिया
नई दिल्ली 110025

fnudj dk0; vkj ;x&pruk

–डॉ॰ नीलम महतो

किसी भी साहित्य की आत्मा उस युग की चेतना होती है। युग की यथार्थ और मार्मिक अभिव्यक्ति ही किसी भी रचना की कोटि का निर्धारण करती है। प्रत्येक साहित्यकार अपने सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित होता है। दिनकर की काव्य प्रतिमा 1930 के सत्याग्रह आन्दोलन के वातावरण में प्रफुल्लित हुई थी और उससे उन्होंने पर्याप्त रस ग्रहण किया था। परिणामत: दिनकर की कविताओं में भावुकता की तरलता और कल्पना की प्रज्ज्वलता प्राप्त है। डा॰ हरिवंशराय बच्चन का कथन है– "सच तो यह है कि तब से लेकर आज तक युग की कसक जितनी तीव्रता और व्यापकता से दिनकर की वाणी में अभिव्यक्त हुई है, उतनी किसी अन्य की वाणी में नहीं।"

जिन कवियों ने हिन्दी कविता को छायावाद की कुहेलिका से बाहर निकालकर उसे प्रच्छन्न आलोक के देश में पहुँचाया, उसमें जीवन का तेज भरा और उसे सामयिक प्रश्नों से उलझना सिखाया उनमें दिनकर का स्थान बहुत ऊँचा है। श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा है– "दिनकर से इतिहास अपनी सम्पूर्ण वेदनाओं को लेकर बोलता है।" दिनकर की कविता समसामयिक यंत्रणा की उपज है। विशुद्धरूप से पराधीनता के दिनों में जो दमन और अत्याचार हुए तथा स्वतन्त्रा के बाद जो विसंगतियाँ उभरी रामधारी सिंह 'दिनंकर' के कवि ने उसकी सजग अनुभूति प्राप्त की और अपनी अग्निवाणी से उसके प्रतिकार का प्रयत्न किया।

यूँ शासन की आलोचना तो भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त आदि ने भी की है किन्तु उनमें उस आवेग और आवेश का अभाव है जो दिनकर के काव्य का प्रमुख आकर्षण रहा है। भारतेन्दु की राष्ट्रीयता एक दर्द की पुकार है। गुप्त की शैली उच्छ्वास, हीन और मंथर है। लेकिन दिनकर की वाणी में ओज और उबाल है। इसीलिए श्री कामेश्वर शर्मा ने दिनकर को भारतीय राजनीतिक की आंतकवादी धारा का सबसे बडा प्रतिनिधि माना है। काल का शायद ही कोई ऐसा आघात है जिसे देख सुन प्रतिक्रिया में दिनकर फूट न पड़ा हो।

पराधीनता के दिनों में उसने हिमालय के बहाने देशवासी नवयुवकों को गुलामी की जंजीर तोड़ फेंकने के लिए ललकार कर कहा है–

"ले अंगड़ाई उठ हिले धरा,
कर निज विराट स्वर में निनाद,
तू शैलराट! हुंकार भरे,
फट जाय कुहा, भागे प्रमाद।
तू मौन त्याग कर सिंहनाद,
रे तपी! आज तप का न काल,
नव युग शंख ध्वनि जाग रही,
तू जाग जाग मेरे विशाल।"

और 'प्रिंस ऑफ वेल्स' के स्वागत में नई दिल्ली का साज श्रृंगार देखकर उसकी तीव्र भर्त्सना की है:–

वैभव की दीवानी दिल्ली
कृषक मेध की रानी दिल्ली
अनाचार अपमान व्यंग्य की
चुभती हुई कहानी दिल्ली।

दिल्ली पर लिखी चार लंबी कविताओं की पतली सी काव्य-पुस्तिका 'दिल्ली' में कवि ने दिल्ली को एक प्रतीक माना है और उसकी प्रारंभिक दो कविताओं में स्वतन्त्रता और गुलामी तथा बाद् की दो कविताओं में अमीरी और संघर्ष को व्यक्त किया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद दिनकर को आशा थी कि दिल्ली अपनी शोषणाश्रित पूर्व वैभव विलास को त्याग कर दीन-हीन देश की प्रतिनिधि बनेगी, वह आशा तो शायद गांधीजी के साथ ही सदा के लिए स्वर्ग सिधार गई, पर अपनी कविताओं में दिनकर जी दिल्ली को देश के नंगे भूखों की याद दिलाई है सिर्फ याद ही नहीं दिलाई, बल्कि आगे आने वाली किसी क्रांति की ओर भी संकेत किया है–

"तो होश करो दिल्ली के देवो, होश करो
सब दिन तो यह मोहिनी न चलने वाली है
होती जाती हैं गर्म दिशाओं की सांसें
मिट्टी फिर कोई आग उगलने वाली है।"

कवि के इस विरोध के पीछे जन-सज्जन का रूप वर्तमान है। कवि अपने देश की विसंगति को मिटाना चाहता है। देश के रक्षकों को जगाना चाहता है और उसके कर्म को औचित्य की ओर अग्रसर करना चाहता है। जैसा को तैसा के पोषक कवि को शोषक के स्वागत का कोई औचित्य नहीं दीखता, इसलिए ऐसे रक्षकों को भविष्य बता कर आँखे खोलना चाहता है। वह सच्चा राष्ट्र रक्षक है इसीलिए तो सजग है। वह चीनी आक्रमण की बर्बरता से भी मर्माहत है, पर दृढ़ हैं सच्चे सिपाही के मनोबल से पूरित है इसीलिए कहता है–

पर्वत-पति को आमूल डोलना होगा,
शंकर को ध्वंसक नयन खोलना होगा
असि पर आशोक को मुण्ड तोलना होगा
गौतम को जय जयकार बोलना होगा।
यह नहीं शांति की गुफा, युद्ध है, रन है
तप नहीं आज केवल तलवार शरण है
ललकार रहा भारत को स्वयं मरण है
हम जीतेंगे यह समर हमारा प्राण है।

दिनकर के काव्य तकनीक का मूल है, भावों के आवेश और कल्पना की तेजस्विता। कवि ने यहाँ भी समसामयिक यंत्रणा को दिखाया है और टूटकर स्वयं उसका विरोध ही नहीं किया वरण विरोध के लिए आवाम को भी प्रोत्साहित किया है। यहाँ अतीत से वर्तमान का वैषम्य दिखाकर वर्तमान की पीड़ा को और तीव्र बना दिया गया है और प्रतिकार के लिए एक उत्तेजना भरने का प्रयास किया है।

''जिस दिन जली चिता गौरव,
की जय भेरी जब मूक हुई
जमकर पत्थर हुई न क्यों
यदि टूट नहीं दो टूक हुई।''

दिनकर को सुधारवाद में विश्वास नहीं वे क्रांति के उपासक थे उनके काव्य में जो हुंकार और आग है इसको आविर्भाव तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव के कारण है। क्रांति में हिंसा अवश्यम्भावी होती है इसलिए दिनकर हिंसा को भी एक सीमा तक जीवन में आवश्यक समझते हैं–

कौन केवल आत्मबल से जूझकर
जीत सकता देह का संग्राम है?
पाश्विकता खडग जब लेती उठा
आत्मबल का एक वस चलता नहीं।

दिनकर ऐसे प्रांत के कवि थे, जहाँ निर्धनता अट्टहास करती है। वर्ग वैषम्य भी बिहार से अधिक शायद ही किसी रियासतों में मिले। उसके अतिरिक्त इन बेचारे भूखे-नंगों को प्रकृति के खूनी दांतों और पंजों का भी शिकार बनना पड़ता है। इस वातावरण में रहकर दिनकर ही क्या कोई भी संवेदनशील कवि की रचना क्रांति और विप्लव की आग उगलेगी। अत: दिनकर की चेतना में भी साम्यवाद समा गया जो उनकी रचना कुरूक्षेत्र में अपने संपूर्ण रूप में प्रकट हआ है-

वट की विशालता के नीचे जो अनेक वृक्ष
ठिठुर रहे है उन्हें फैलने का वर दो
रस सोखता है जो मही का भीमकाय वृक्ष
उसकी शिरायें तोड़ो डालियाँ कतर दो।

सच तो यह है कि वे जनता के कवि को उनकी पूर्ण सहानुभूति दीन-उपेक्षितों के प्रति थी। जब उन्होंने एक ओर धनपतियों के श्वानों को राजश्री भोग भोगते और कृषकों के बालकों को माता के सम्मुख भूख से विलविलाते देखा तो उनका खून खौल उठा। तब वे अपने ऊपर नियंत्रण नहीं रख पाये और अधीर हो हुंकार उठे-

हटो व्योम के मेघ पंथ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं
दूध, दूध ओ वत्स! तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं।

साम्यवादियों की तरह एक ऐसे आदर्श लोक की सृष्टि दिनकर को काम्य है जहाँ प्रत्येक प्राणी का सुख भाग समान हो और धरा युद्ध की ज्वर-भीति से मुक्त हो जाय दिनकर जन समुदाय के उस विशाल जन-समूह का साथी है जिसका साथी परंपरा से कोई नहीं रहा है। जिसका अधिकार छिनते रहा है। जो जी-तोड़ मेहनत कर भी आधे पेट खाते रहे हैं। उन जन-समुदाय के दु:ख दर्द को देख वे उबल पड़ते हैं उनका दुख दूर करने के लिए क्रांति का गायन करते हैं। भूचाल, बंवडर और उल्काओं के प्रेमी बनते हैं और तात्कालिक घटनाओं, यातनाओं, विषमताओं को अपनी लेखनी में साधते हैं। इसके लिए सरसता सहजता, ओज और कटु व्यंग्य तक को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाते हैं।

नीम अपनी कटुता और रक्त शोधक गुणों के लिए प्रसिद्ध है कवि दिनकर ने अपनी काव्य पुस्तक 'नीम के पत्ते' में कुछ ऐसी तीखी आलोचनायें और व्यंग्यो की रचना की है जिसके द्वारा देश और समाज मे फैले विषमताओं और विसंगतियों का उपचार हो सकता है।

1945 में उत्तरी बिहार में बाढ़ विभीषिका और मलेरिया से लोग मर रहे थे। सरकार और नेताओं की सहायता को बढ़ा-चढ़ा कर समाचार-पत्र छाप रहे थे पर जनता में त्राहिमाम मची थी। वहाँ सहायता के नाम पर सिर्फ दिखावा था। इस पर दिनकर का कटु व्यंग्य है-

नेता परिधन, परिधन सरकार है
बोल मरने का तुझे कौन अधिकार है।

1947 में स्वतन्त्रता तो मिली पर देश को दो टुकड़ों में बाँट कर तो दिनकर का संवेदनशील मन खिन्न हो उठा। विभेद की कुत्सित मानसिकता पर खिन्न होकर दिनकर चुनौती देते हैं-

माँ का अंचल है फटा हुआ,
इन दो टुकड़ों को सीना है
देखा देता है कौन लहू, दे सकता कौन पसीना है?

इतना ही नहीं 1948 में भी आजादी के वर्षगांठ पर गांधी की मौत के बाद कवि दिनकर का हृदय ग्लानि और क्षोभ से भरा था और उनकी कलम उस क्षोभ को व्यक्त करते कही थी-

हाँ खूब मनाओ आजादी की वर्षगांठ
पर नहीं इस खुशी में कि साल भर हुआ उसे
इसलिए कि वह अब तक भी तुमसे छिनी नहीं।

आजादी के बाद जो पद लोलुपता अधिकार-प्रियता और चारित्रिक-पतन हमारे राजनेताओं और अधिकारियों के नसों में दौड़ा था उसके प्रति भी दिनकर ने अपना असंतोष निर्भिक और स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है-

"आजादी आई नहीं विकट कुहराम मचा
है मची हुई अच्छे अच्छों में मारपीट।
कहते हैं जो ये साधु सरीखे पाक साफ
डुब्कियाँ लगा वे भी अब पानी पीते हैं।
बिक रही आग के मोल आज हर जिंस मगर
अफसोस आदमीयता की ही कीमत न रही।''

'हे राम' शीर्षक अपनी कविता में दिनकर करूण रस में डूबे हुए हैं। यूँ भी 1949 की कवितायं अवसाद की छाया में डूबी हुई है। कवि के स्वप्न चंदन को यथार्थ-अनल के ताप ने जला कर रख दिया था। जिनसे उन्हें आशा थी, वे तहखाने में चले गये थे। मोहभंग स्थिति हो गयी थी। जब सूर्य मानव को खिला नही सकता, चाँद शीतलता नहीं दे सकता तो अच्छा है कि राहु उसे ग्रस ले।ऐसी ही मानसिकता में कवि कहता है-

"क्या कहा कि हम घनघोर निराशावादी हैं"
तब तुम्हीं टटोलो हृदय देश का और कहो
लोगो के दिल में अश्रु कहीं क्या बाकी है?"

पर दिनकर की निराशा का शमन हुआ। 1950, 52, 53 आदि की कविताओं में कवि की आशा पुन: जाग उठी जनता और 'जवाहर' पर उनका विश्वास लौट आया। कवि कहता है-

"झूलता तुम्हारी आँखों में जो स्वर्ग हमारी आशा है
तुम पाल रहे हो जिसे वही भारत की अभिलाषा है।"

और फिर यही आशा कविताओं में जन विश्वास, आत्मविश्वास में परिणत हो जाती है।

"जन समुद्र यह नहीं, सिन्धु है यह अमोघ ज्वाला का,
जिसमें पड़कर बड़े बड़े कंगूरे पिघल चुके हैं
लील चुका है यह समुद्र जाने कितने देशों में
राजाओं के मुकुट और सपने नेताओं के भी।"

1953 की कविता 'रोटी और स्वाधीनता' मे कवि दिनकर पुन: अपनी पुरानी प्रखरता और ओज से भरपूर है। फिर वे जन मन को आवाहित करते हैं और दिग्दर्शन देते हैं-

"आजादी केवल नहीं, आप अपनी सरकार बनाना ही
आजादी है उसके विरूद्ध खुलकर विद्रोह मचाना भी।"

श्री भगवतीचरण वर्मा की उक्ति में-दिनकर का व्यक्तित्व अत्यन्त ओजस्वी है जिस तरह पंत जी का नाम लेते ही मधुर कोमल मूर्ति उभरती है, दिनकर का स्मरण करते ही पौरूष और प्रभुत्व साकार हो उठता है। दिनकर निस्संदेह हिन्दी के प्रगति वादी काव्य के सूरज हैं।" उनका प्रकाशमान व्यक्तित्व स्वयं उनकी ही पंक्तियों में साकार है-

सुनूँ क्या सिंधु मैं गर्जन तुम्हारा?
स्वयं युग धर्म का हुँकार हूँ मैं
कठिन निर्घोष हूँ भीषण अषनि का
प्रलय गाण्डीव की टंकार हूँ मैं

एक वाक्य में दिनकर नाम युगधर्म के हुंकार और भूचाल बबंडर के ख्वाबों से भरी हुई तरूणाई का है। सच भारतेन्दु और गुप्त से आगे बढ़कर कवि दिनकर ने देश की दुर्दशा, वर्तमान की विवशता, राजनीतिक दासता, आर्थिक शोषण, अन्याय, अत्याचार आशा निराशा और विश्वास को वाणी दी है। उनकी कविताओं में युग की कसक है और ओज उनकी कविता का विशेश गुण है। यही उनकी समयवद्ध कविताओ को चिरंजीवी बनाएगा।

- हिन्दी विभाग
सुन्दरवती महिला महाविद्यालय भागलपुर
तिमाँ॰ भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

काव्य नायक राष्ट्रकवि 'दिनकर'

– रामजी प्रसाद सिंह

साहित्य जगत में 'दिनकर' एक स्वयं प्रतिमान हैं,
प्रचण्ड तेज मंडित मार्तण्ड के समान हैं।
शौर्य एवं पौरुष के विरल वे गायक हैं,
महानता का आकलन वे गुणों से करते हैं,
जाति एवं वंश को निरर्थक समझते हैं।
काव्य में भाव एवं भाषा की अटूट एक कड़ी हैं,
तुलसी के 'मानस' जैसी अनमोल एक लड़ी है।
वीर रस के साथ ही शृंगार रस बेजोड़ है,
'रश्मिरथी' और 'उर्वशी' का नहीं तोड़ है।
'कुरुक्षेत्र' काव्यकृति साहित्य की धरोहर हैं,
'संस्कृति के चार अध्याय' ज्ञान का सरोवर है।
प्रवाहमान भाषा दिनकर की एक पहचान है,
हिन्दी साहित्य का एक गौरवमय विधान है।
साहित्य को आभामंडित, रचना उनकी करती है,
जीवन के युद्ध में संशय को हरती है।
'कुरुक्षेत्र' वास्तव में आधुनिक युग की गीता है,
जीवन का तत्व ज्ञान मनुज जिससे जीता है।
'रश्मिरथी' की हर पंक्ति जीवन की सुक्ति है,
श्रेष्ठ जीवन जीने की जिसमें हर युक्ति है।
उर्वशी तो प्रेम की एक अद्‌भुत कहानी है,
चेतना के शिखर पर समर्पण की निशानी है।
'परशुराम की प्रतीक्षा' समय की पुकार है,
ओजपूर्ण वाणी में राष्ट्र की हुँकार है।
दिनकर की 'रसवन्ती' रस में डुबाती है,
भाव की तरंगों में संचरण कराती है।
कामियों की कामदा है परम तृप्तयन्ती,
इसीलिये नाम परा इसका 'रसवन्ती'।
दिनकर का राष्ट्र बोध महात्म असीम है,
उनकी मनीषा सर्वकालिक निःसीम है।
अपराजेय भारत का स्वरूप उनमें बसता था,
संस्कृति में आस्था का भाव जो भरता था।
सांस्कृतिक चेतना के वे स्वयं अग्रदूत थे,
भारत माता के वे सच्चे सपूत थे।
समग्रता का भाव उनके चिन्तन में बसता था।
संकीर्ण सोच से जो दूर उन्हें रखता था।
वास्तव में मानवता के सच्चे वे पुजारी थे,
राष्ट्रकवि होने के स्वाभाविक अधिकारी थे।
जन-जन की आशा की पीड़ा से अभिसक्ति थे।
चिन्तन में उनके जन-जन का उत्कर्ष था,
मन-प्राणों में बसता सम्पूर्ण भारत वर्ष था।
मूलतः वे ओज एंव भारतीय के गायक थे,
समग्र मानवता के एक सच्चे नायक थे।
दिग-दिगन्त तक उनकी कीर्ति गूँजेगी,
आनेवाली पीढ़ी उनको सर्वदा पूजेगी।

–तिलक नगर, माड़ीपुर, मुजफ्फरपुर (बिहार)
चलभाष: 969307765

jke/kkjh flg ^fnudj* dh dkyt;h dkO;Ñfr ^gdkj*

– डॉ. बाबूराम

हिन्दी साहित्य में अनेक साहित्यकारों ने विभिन्न रसों का सजीव चित्रण किया है। महाकवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ने प्रमुखतया वीर और श्रृंगार रस चित्रण में अभूतपूर्व प्रतिभा और कलात्मकता का परिचय दिया है। उनकी श्रेष्ठ काव्य-कृतियों में 'रेणुका' 'रसवन्ती' 'द्वन्द्वगीत' 'सामधेनी' 'इतिहास के आंसू' 'धूप और धुआं' 'परशुराम की प्रतिक्षा' 'कुरुक्षेत्र' 'रश्मिरथी' और उर्वशी आदि परिगणित होती हैं। 'हुंकार' में कवि अतीत के गौरव-गान की अपेक्षा वर्तमान दैन्य के प्रति आक्रोश प्रदर्शन की ओर अधिक उन्मुख जान पड़ता है। जिस समय दिनकर जी ने सन् 1938 में 'हुंकार' की रचना की थी उस समय देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था और विदेशी शासक भारतीयों के साथ अमानुशिक अत्याचार करके उनकी स्वातंत्र्य चेतना का निर्मम दमन कर रहे थे। कवि के अवचेतन मानस पटल पर प्राचीन भारत का गौरवपूर्ण चित्र भी अंकित था। उनकी अवधारणा थी कि हम ऋषियों, वीरों और भारतीय पूर्वजों की महान संतान होकर भी दीन-हीन क्यों बने हुए हैं? इसी परिदृश्य के अनुभव के फलस्वरूप कवि के मन में विद्रोह की ज्वाला धधक रही थी, जो संवेदनशील होकर 'हुंकार' के रूप में अंकुरित-पल्लवित होकर फलीभूत हुई।

दिनकर जी को 'हुंकार' की रचना से बड़ा सम्मान मिला, जो स्वयं कवि ने स्वीकार किया है। रामवृक्ष बेनीपुरी ने अपना मंतव्य 'हुंकार' की भूमिका में इस प्रकार अंकित किया है – 'हमारे क्रांतियुग का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व कविता में इस समय दिनकर कर रहा है। क्रांतिवादी को जिन-जिन हृदय मंथनों से गुजरना होता है, दिनकर की कविता उनकी सच्ची तस्वीर रखती है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' अतीत के सुनहले-सुहावने सपनों का परित्याग करके वर्तमान संघर्ष की ओर प्रबलतापूर्वक उन्मुख हुए। उनकी सुप्रसिद्ध रचना 'रेणुका' में राष्ट्रप्रेम की क्रांति की जो चिंगारियां धीरे-धीरे सुलग रही थीं, उन्होंने 'हुंकार' में प्रचण्ड ज्वाला का रूप धारण कर लिया। रण की घड़ी, जलन की बेला में क्रांतिकारी कवि कैसे शान्त रह सकता था? वह शक्तिशाली विपल्वी के रूप में अपनी 'हुंकार' सुनाता है। कवि के हुंकार में विभिन्न प्रकार के विद्रोहपूर्ण स्वर प्रतिध्वनित होते हैं। यही इस श्रेष्ठ क्रांति का मूलाधार प्रतिपाद्य है।

वस्तुत: कहा सकता है कि दिनकर जी बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न, राष्ट्रीय चेतना, आत्मसम्मान, संवेदना, संघर्षशील और पौरुष के राष्ट्रकवि के रूप में सुप्रसिद्ध रहे। उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के नवजागरण में अपने साहित्य के माध्यम से महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। कवि के 'हुंकार' के स्वर उनकी अन्य काव्य-कृतियों में यत्र-तत्र गूंज रहे हैं। 'हुंकार' में कवि के स्वर सर्वाधिक प्रबल रूप में मुखरित होकर इस प्रकार सुनाई पड़ते हैं -

- नये प्रात: के अरुण!
तिमिर-उर में मरीचि संधान करो,
युग के मूक शैल! उठ जागो,
हुंकारो कुछ गान करो।
किसी आहट? कौन पधारा?
पहचानो, टुक ध्यान करो।
जगो भूमि! अति निकट अनागत
का स्वागत-सम्मान करो।

प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

मेरे! दिनकर महान

- आकांशु प्रिया

बोलकर जय, जिसने कलम की।
मिटाया अज्ञानता का संताप।
राग-द्वेष का संगम लेकर।
मिटाया रक्त भूमि का पाप।
गर्जना थी जिसमें 'हुंकार' की।
'उर्वशी' का था प्रेम राग।
उठा लिया जब 'कुठार' हाथ में
देश के दुश्मन गए भाग।
देख व्यथा भूखे बालक की।
हृदय जिसके पिघल जाते हैं।
नहीं मांगते जो दूध! किसी से।
वे स्वयं, स्वर्ग खोजने जाते हैं
बदली जब 'लोकतंत्र' की परिभाषा
टूट गयी जन-जन की आशा
सोई जनता जब जागती है
हमला तब सिंहासन पर करती है
आया जब समय अवसान का
प्रेम से लेकर 'हरिनाम'
दिया जिसने इस युग में
'कलम' को एक नयी पहचान
वो हैं मेरे दिनकर महान।

jk"Vdfo fnudj dk d.k

- डॉ. आशा तिवारी ओझा

''जलद पटल में छिपा किन्तु रवि कब तक रह सकता है
युग की अवहेलना शूरमा कब तक सह सकता है।''

आधुनिक हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीय विचारधारा के पोषक और सामाजिक चेतना के गायक 'दिनकर' उन कवियों में से हैं, जो बिना किसी वाद में बंधे, जन जागरण का शंख फूंकने में सफल रहे हैं। दिनकर का काव्यवैभव 'हुंकार' के साथ-साथ प्रेमोत्पादक भी हैं, उनमें इंद्रधनुष की तरह केवल सात ही नहीं बहुआयामी सांस्कृतिक रंगों का समावेष है, साथ ही भावतरंगों का आरोह व अवरोह विश्राम हेतु तटबन्धों की तलाश करने का आग्रह भी है। किन्तु विश्राम कहाँ? सागर की लहरों को कोई बाँध नहीं सकता है, सूरज की किरणों को कोई माप नहीं सकता है, राष्ट्रकवि की अगाध भाव रश्मियों को कोई कतिपय शब्दों में सहेज नहीं सकता है। दिनकर की काव्य रश्मियों के संवेगों और आवेगों को समेटना भी कुछ कठिन सा प्रतीत होता है।

वस्तुत: राष्ट्रकवि दिनकर की काव्य-रश्मियाँ व्यापक और बहुआयामी हैं। उनके विचारों और भावों का प्रकाश साहित्य जगत को आलोकित कर रहा है। वे आधुनिक युग के जागरूक युग कवि हैं। उनका साहित्य समाज के बिम्ब को समग्रता में प्रस्तुत करता है। 'रश्मिरथी' और 'कुरूक्षेत्र' की 'हुंकार' हो अथवा 'रेणुका', 'रसवन्ती' और 'उर्वशी' की प्रेमिल फुहार हो, गद्य में शुद्ध कविता की खोज हो अथवा 'संस्कृति के चार अध्याय' हो सबमें जीवन का पर्याय है जहाँ सत्यं, शिवम् सुन्दरम् भाषित हो रहा है। ज्ञातव्य है कि स्वयं को युग-काल का चारण कहने वाला कवि युद्ध और शान्ति, हिंसा और अहिंसा, भोग और योग, भाग्य और पुरुषार्थ तथा लोक और लोकोत्तर के द्वन्द्व में हमेशा घिरा रहता है। दिनकर का यह अर्न्तद्वन्द्व उनकी कविताओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। मुक्त भाव की कविता 'उर्वशी' में भूमि ओर भूमा तथा राग और विराग का द्वन्द उलझन में डाल देता है। यथा:

''एक स्वाद हे त्रिदेव लोक में एक स्वाद वसुधा पर।
कौन श्रेष्ठ है कौन हीन कहना बड़ा कठिन है।''

यहाँ काव्य फलक व्यापक होने के बावजूद कवि कोई दर्शन व दृष्टि नहीं दे पाता है। मंजुला राणा के अनुसार- 'दिनकर ने प्रेम की व्यापकता का पर्यटन किया है, जिसमें सम्पूर्ण मानवीय रागों ने स्थान प्राप्त किया है।'-

वस्तुतः एक तरफ दिनकर प्रेम के पुजारी हैं। रस, रंग और राग से भीगें है। तो दूसरी तरफ ओज के गायक और शक्ति के अराधक, भारतीय संस्कृति और प्राचीन गौरव के उन्नायक, राष्ट्र के उद्दीप्त यौवन की पुकार राष्ट्रकवि दिनकर की 'ललकार' और 'हुंकार' में लधुमानव के चित्कार के साथ-साथ विराट मानवतावाद का परिष्कार भी है। लगता है कि व्यष्टि से समष्टि, अणु से महत् और लध से विराट की परिकल्पना ही दिनकर साहित्य की मूल चेतना है। कवि के 'संस्कृति के चार अध्याय' जिन्दगी में पुरुषार्थ के चार अध्याय बन जाते हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। बावजूद इसके पुरुषार्थ के अनन्य साधक दिनकर ने नीलकंठ की तरह जिन्दगी के गरल को भी पीया है। हिमालय की तरह अडिग कवि राष्ट्रवादी 'हुंकार' और पौरुष की ललकार से विषमताओं और कठिनाइयों के आजीवन चुनौती देता रहा। तथापि अपने गर्जन-तर्जन और सिंहनाद से सांस्कृतिक स्पन्दन पैदा करने वाला कवि जिन्दगी के अंतिम दौर में कुछ हारता हुआ सा प्रतीत होता है। लगता है 'हारे को हरिनाम' दिनकर की तुलसी की तरह रामदरबार की विनयपत्रिका है।

साहित्य हो या जीवन दिनकर के विकास की रेखाएँ सरल नहीं हैं। बस दुष्कर और अग्निमय है। ''वे भयानक संघर्षों में जीते है, संघर्षो से तृप्त अनुभूतियों से काव्यरचना करते हैं। उनके इस कथन में पर्याप्त दमखम है-

''मैं कीचड़ से खड्ड्, कंटक से कानन,
और रेगिस्तान से निकलकर
रेशमीनगर तक आ सका हूँ।''

ध्यातव्य है, उनके संघर्षमय जीवन की गाथा 'रश्मिरथी' के कर्ण की तरह है। देखें, तो दिनकर और कर्ण के जीवन में बहुत कुछ साम्यता है। 'रश्मिरथी' के बहाने कवि ने अपने संघर्षमय जीवन का दस्तावेज उपस्थित किया है।

अंगराज कर्ण और अंग प्रदेश की विभूति दिनकर दोनों गुदड़ी के लाल है। दोनों का प्रतिपालन गंगा के किनारे हुआ। धार में बहती हुयी पिटारी अगर कर्ण के लिये पलना बन गयी तो गंगा की धार पर सवार होकर ही दिनकर ने भी प्रारम्भिक शिक्षा को पूरा किया।

रेशमी नगर भागलपुर से दिनकर का लगाव व जुड़ाव आजीवन रहा तभी तो संसद- सदस्य बन जाने के बावजूद वे दिल्ली की दुनिया में खोये नहीं बल्कि उनकी रेशमी यादें बनी रहीं-

''ऐसा टूटेगा मोह एक दिन के भीतर,
इस राग-रंग की पूरी बर्वादी होगी,
जब तक न देश के घर-घर में रेशम होगा।
तब तक दिल्ली के भी तन पर खादी होगी।।''

कर्ण आजीवन संघर्ष में रहा, पीड़ाओं को झेलता रहा किन्तु, उसने सिद्धान्तों से कभी समझौता नहीं किया। यहाँ तक कि भगवान कृष्ण के आकर्षक प्रस्ताव को भी वह ठुकरा देता है किन्त दुर्योधन को दिये गये वायदे और उसकी मित्रता को नहीं तोड़ता है। वह जीवन-मूल्यों की रक्षा हेतु अपने जीवन का बलिदान कर देता है। अगर वह चाहता तो श्री कृष्ण की बात मानकर हस्तिनापुर जैसे विशाल साम्राज्य को शासक बन सकता था। हतभाग्य कर्ण भरी सभा में जनता के बीच जाति के नाम पर लांक्षित और प्रताड़ित होता रहा, उसका अप्रतीम तेज और पुरूषार्थ लहुलुहान और कुंठित होता रहा किन्तु जन्मदात्री माता कुन्ती का वात्सल्य मौन रहा आँचल, संकुचित रहा। कह सकते हैं कि नियति की यह विडम्बना महाभारत के भीषण युद्ध की पूर्व पीठिका है। दिनकर के शब्दों में- ''कौरवों की सभा में यदि संधि की वार्ता कृष्ण और दुर्योधन के बीच न होकर कुन्ती और गान्धारी के बीच हुई होती तो बहुत संभव था कि महाभारत नहीं होता। किन्तु कुन्तियाँ ओर गान्धारियाँ तब भी निश्चेष्ट थी ओर आज भी है।'' कविता दिनकर के जीवन के समानान्तर चलती है। इसलिए इनकी जिन्दगी के उतार-चढ़ाव इनके काव्य में भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। यहीं कारण है कि 'रश्मिरथी', 'कुरूक्षेत्र', उर्वशी, परशुराम की प्रतिक्षा एवं 'हुंकार' में जिन्दगी के जयघोष का उदार स्वर प्रतिध्वनित होता है तो 'कोयला और कवित्व', 'सीपी और शंख', 'आत्मा की आँखे', 'चेतना की शिखा' और

'हारे को हरिनाम' में कवि का थकता और हारता स्वर मुखरित होता है। कवि के शब्दों में - 'केवल कवि ही कविता नहीं रचता, कविता भी बदले में कवि की रचना करती है। यथा- ''कलेजे में जो लगा जाये उसे कविता कहते है'' दिनकर की कविता भारतीय जनता के दिलों में प्रवेश कर गयी है। - हिन्दी साहित्य कोष में कहा गया है कि - ''काव्य की सबसे बड़ी शक्ति उसके चित्रों में ही होती है और कवि की श्रेष्ठता को परिचय भी उसके काव्य में उपलब्ध चित्रों से ही मिलता है।'' रश्मिरथी के कर्ण की जीवन की व्यथा- कथा भी चित्रवत दिनकर अपनी कथा सी प्रतीत होती है। कर्ण को पारिवारिक मान-सम्मान और सुख कभी नहीं मिला, आजीवन इस संताप को झेलनेवाला कर्ण राधेय से कोंन्तेय कभी नहीं बन सका। इधर पारिवारिक विघटन और सन्ताप झेलनेवाला कवि भी खुद को 'रश्मिरथी' में महसूस करने लगा और 'रश्मिरथी' खण्ड-काव्य उनके जीवन को खण्ड-खण्ड में प्रस्तुत करने लगा। ध्यातव्य है, बड़े उत्साह से 'रश्मिरथी' का पाठ स्वयं कवि अपने छात्रों के बीच में करते थे। -''बहुत से छात्रों को निवास स्थान पर बुलाकर 'रश्मिरथी' के कुछ अंशों को भी सुनाया करते थे और कहते - जब मैं कर्ण की वीरता का प्रसंग बखानता था तब बरबस मेरी भुजाएँ फड़क उठती थी।''

कवि ने 16 फरवरी 1950 ई0 को 'रश्मिरथी' खण्ड काव्य लिखना प्रारम्भ किया था। अनुभव की प्रामाणिकता पर भोगे हुए सत्य को दिनकर ने इस खण्ड काव्य में उतारना शुरू कर दिया। 'दिनकर' और 'रश्मिरथी' एक-दूसरे में आकार ग्रहण कर रहे थे। कवि के शब्दों में - ''मैं जो कुछ प्राफेसरी के सन्दर्भ में भोग रहा था उसको इस खण्ड-काव्य में स्थान देने का कार्य करता था। सचमुच कर्ण को सामने रख मैंने अपने आपको ही रखने का प्रयास किया था। मेरा सारा आक्रोश हुए खण्ड-काव्य में मूर्तरूप धारण करता गया।''

1952 ई0 के अप्रैल में 'रश्मिरथी' का प्रकाशन हुआ। तब तक कवि संसद सदस्य बन गये थे तथा लाल किले के कवि सम्मेलनों तथा संसद सदस्यों व आमजनता में काफी लोकप्रिय हो रहे थे। वस्तुतः 'रश्मिरथी' कवि दिनकर की तरह ही तेजोदीप्त रचना है इसमें राष्ट्र व समाज के समसायिक प्रश्नों का उलझन भी है और सुलझन भी। चाहे वह प्रश्न जातिवाद का हो, शोषक और शोषित का हो, कुंवारी माँ का हो, अनाथ बच्चों का हो, शिक्षा का हो, परीक्षा का हो, युद्ध का हो, शान्ति का हो, धर्म और अधर्म का हो अथवा और भी कोई सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक व धार्मिक मूल्यों का हो। दिनकर जी की पैनी दृष्टि सब पर है, उबाल है, तथा सम्भाल भी है।

दिनकर ऐतिहासिक चेतना में सम्पन्न एक क्रान्तदर्शी ऋषिकवि है। अतीत वर्तमान और भविष्य को एक कड़ी में जोड़कर वे भारत का नवनिर्माण करना चाहते हैं। इसके लिए वे महाभारत के सर्वथा उपेक्षित पात्र कर्ण को अपने प्रबन्ध-काव्य 'रश्मिरथी' का नायक बनाते हैं। अभिजात्य वर्ग में जन्म लेने के बावजूद नियति का कुचक्र कर्ण को पग-पग पर झेलना पड़ता है। सीता को तो केवल एक बार अग्नि परीक्षा देनी पड़ी थी किन्तु कर्ण की अग्नि परीक्षा कई बार होती है। इसी में तप कर कर्ण का चरित्र कुन्दन की भाँति निखर उठता है और वह रश्मिरथी बन जाता है। कवि दिनकर के जीवन में भी घात-प्रतिघात आते रहे- पारिवारिक, सामाजिक, और राजनैतिक इन्ही विषमताओं में 'भूचाल', 'बवंडर', 'क्रान्ति के गायक', 'उल्काओं के प्रेमी', दिनकर का जीवन और काव्य दोनों तपकर शुद्ध हो गया, निखरता गया। साहित्य व जीवन में दिनकर को भी अग्नि परीक्षाओं से कई बार गुजरना पड़ा। कर्ण समाज के सर्वथा उपेक्षित, दलित व लांछित वर्ग का प्रतिनिधि है। उसका चरित्र आज के दलित विमर्श की भूमि तैयार कर देता है। यथा-

'' मैं उनका आदर्श किन्तु, जो तनिक न घबरायेंगे।
निज चरित्र बल से समाज में पद विशिष्ट पायेंगे।।''

यह पद विशिष्ट की चाह राधेय को अंगराज बना देती है तो दिनकर को भी दिल्ली के संसद भवन में पहुँचा देती है। विधि की विडंबनावश सूतपुत्र कर्ण राजगुरू द्रोणाचार्य से शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से वंचित हो गया। येन-केन प्रकारेण जाति छिपाकर छल से ही सही, ज्ञानपिपासु कर्ण ने परशुराम जी से शिक्षा तो पाई, किन्तु वह शिक्षा भी शापित हो गयी। निर्दयी समाज के तथा कथित सिद्धान्तों ओर नियमों ने उसे बार-बार डँसा, क्षत-विक्षत किया, लहुलुहान किया। इसी तरह पितृविहीन

बालक दिनकर ने भी काफी संघर्ष किया। मोकामा घाट की तपती रेत ने पैरों में फफोले तो दिये किन्तु 1928 में हाई स्कूल अवश्य पास करा दिया। आगे की पढ़ाई परिवार की गरीबी के कारण रुक गयी। अपने बड़े संयुक्त परिवार के भरण-पोषण हेतु लगातार करीब जीवन भर तरह-तरह की नौकरियाँ करते रहे। कर्ण की प्रतिभा और शौर्य को जन मानस ने सराहा किन्तु राजवंश के नेताओं की आँखों में वह काँटों की तरज चुभने लगा। यथा -

''फिरा कर्ण, त्यों साधु-साधु कह उठे सकल नर-नारी,
राजवंश के नेताओं पर पड़ी विपद अति भारी ।''

इधर दिनकर भी निरन्तर सत्ता और व्यवस्था से जुझते रहे ओर रोजी रोटी के लिये कभी-कभी परिस्थितियों से समझौता करते रहे जैसे कर्ण ने परिस्थितिवश अपने सगे भाइयों को छोड़कर दुर्योधन से मित्रता और समझौता किया था। इस सन्दर्भ में कर्ण का यह कथन द्रष्टव्य है

''सम्राट बनेंगे धर्मराज, या पायेगा कुरूराज ताज,
लड़ना भर मेरा काम रहा, दुर्योधन का संग्राम रहा।
मुझको न कहीं कुछ पाना है,
केवल ऋण मात्र चुकाना है।''-

दिनकर के काव्य व्यक्तित्व का निर्माण अंग्रेजों की गुलामी के दिनों में हुआ था। अतएव गुलामी और उपनिवेशवाद के खिलाफ उनके मन में तीव्र आक्रोश और विद्रोह का भाव था जो उनकी कविताओं में उभरकर सामने आता है। कर्ण के जीवन की भी कुछ यही गाथा है। सामाजिक विडम्बना के शिकार कर्ण के मन में भी आभिजाल कुछ और शासक वर्ग के प्रति क्षोभ और ग्लानि की भावना है। कर्ण के प्रतिशोध की भावना राजतन्त्र की निरंकुशता के खिलाफ एक तरह का नैतिक विद्रोह है। यथा -

''मस्तक ऊँचा किये जाति का नाम लिये चलते हो,
मगर असल में, शोषण के बल से सुख में पलते हो।
अधम जातियों से थर-थर काँपते तुम्हारे प्राण,
छल से माँग लिया करते हो, अँगूठे का दान।''

आज के राजनैतिक माहौल में जहाँ मंडल और कमण्डल का नारा चल रहा है, विभिन्न राजनैतिक दलों का छद्म दलित प्रेम उजागर हो रहा है तथा दलित विमर्श के बैनर तले राजनैतिक और बौद्धिक रोटियाँ सेंकी जा रही है। छल से अँगूठे का दान माँगना एक जोरदार तमाचा है। मदान्ध शासकों की सत्ता लोलुपता, वैभव, विलासिता और भ्रष्टाचार तथा निरंकुशता से भी राष्ट्रवादी कवि दिनकर का मन आहत होता रहता था। कवि की दृष्टि में भारतवर्ष 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा ''सर्वे भवन्तु सुखिन्:'' भाव का संपोषक विश्व की महत्वपूर्ण सार्वभौम इकाई है। विश्व शान्ति में इसकी अहं भूमिका है। आज सर्वनाश को आमंत्रित करते विश्वयुद्ध और अर्न्राष्ट्रीय आतंकवाद से भागने को नहीं उससे लड़ने के लिए कहते हैं-

''ढीली करो धनुष की डोरी, तरकस का कस खोलो,
किसने कहा, युद्ध की वेला गयी, शान्ति से बोलो?
किसने कहा, और मत बेधो हृदय वह्नि के शर से,
भरो भुवन का अंग कुसुम से, कुंकुम से, केशर से?''

पुन:

''वीर वही है जो कि शत्रु पर जब भी खड़्ग उठाता है,
मानवता के महागुणों की सत्ता भूल न जाता है।''

दिनकर का मानवता के प्रति वेदना 'कुरूक्षेत्र' में भी मुखरित है-

''मनु का पुत्र बने पशु भोजन। मानव का यह अंत?
भारत भूमि के नरवीरों की यह दुर्गति हा हन्त?''

अस्तु लघु से विराट भाव और विचारण के संवाहक कवि दिनकर का काव्य-वैभव 'रश्मिरथी' के कलेवर में अत्यन्त महत्ता और उदात्त है। श्रीकृष्ण के विराट रूप की उद्भावना कर कवि ने अपने इस अणु से महत्त् भाव को पुष्ट किया है जो उपनिषद के तत्वों का प्रतिपादन करता है - ''अणो अणीयान, महतो महीयान।''

यथा - ''यह देख, गगन मुझमें लय है,
यह देख, पवन मुझमें लय है,
मुझमें विलीन झंकार सकल,
मुझमें लय है, संसार सकल।''

अस्तु जो जीवन भर उपेक्षा, कलंक और अभिशाप का संताप झेलता रहा, जिसकी लधु चेतना, माता को हृदय के स्नेह सिंचित घर से कभी स्नात् न हो सकी, जिसका कवच और कुण्डल भी जातिवाद, वंशवाद, साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और आतंकवाद से उसे सुरक्षित नहीं रह सका, वह राधेय कर्ण भी 'रश्मिरथी' के अन्तिम सर्ग में महानिर्वाण के समय, व्यष्टि से समष्टि, लघु से विराट और अणु से महत् बन विश्व चेतना में समाहित हो गया। यथा -

''उगी थी ज्योति जग को तारने को,
न जनमा था पुरूष वह हारने को।''

कर्ण की ही तरह राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' भी विश्वज्योति थे, अपराजेय थे, रश्मिरथी थे।

- हिन्दी विभाग
सुन्दरवती महिला महाविद्यायल
ति.माँ. भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर- 812001

उनको प्रणाम

- वैष्णवी शाह

सदियों से वो मनुष्य
जो कुंठित आग में जलते थे
सहते थे असीम वेदना
पर जुँबा से कुछ न कहते थे
रोती बिलखती निरीह जनता का
साथ न कोई देने वाला
पूंजीपतियों के हाथों से
जब छीना गरीबों का निवाला
बढ़ा जब देश पर, अत्याचार
जनता रो-रो करे पुकार
उठा सिमरिया से एक हुंकार
क्रांति पुत्र का हुआ अवतार
गर्जन था जिसमें सिंधु का
था, तेज जिसमें सूर्य का
भारत का जिसने मान बढ़ाया
कालान्तर में 'दिनकर' कहलाया
फैला जब वैमनस्य देश में
रहा नहीं जब कौम होश में
खत्म हुआ जब प्रेम का अध्याय
लिखा 'संस्कृति के चार अध्याय'
शोणित हुई जब धरा कुरूक्षेत्र की
किसी को न थी सुध नीति-अनीति की
तब उठाया एक 'कुठार'
दुष्टों का फिर हुआ संहार
मृतजनों में फूंककर प्राण
बन गया जो 'दिनकर' महान
बढ़ाया जिसने कलम का मान
करू मैं, उनका शत-शत प्रणाम

प्रभा-पुंज की जय हो

– रामसकल विद्यार्थी

जिसकी गूँज सुनायी पड़ती नदी और घाटी में,
जिसका सौरभ ओत-प्रोत है धरती में, माटी में
उसका प्यारा गीत मुखर मन-प्राणों पर लहराऊँ,
'तान, तान फन व्याल कि तुझ पर मैं बांसुरी बजाऊँ।'

उस मुरली को नमन, नमन उस ताल, छंद, सुर लय को,
कोटि-कोटि है नमन धरा को, श्रद्धा और विनय को,
अरुणोदय से अस्ताचल तक नित नूतन परिवेश
धन्य हमारी भाषा हिन्दी, धन्य हमारा देश!

पर्वत-मालाओं से ऊँचा वह जो वहाँ शिखर है,
निखिल व्योम को ललकारे जो वह निश्चय दिनकर है।
दिनकर का है अर्थ दहकते अंगारों की भाषा,
दिनकर का है अर्थ दलित मानवता की परिभाषा।

दिनकर का है अर्थ सुधा से सराबोर रसवन्ती,
नभ को माथे पर फहराती हुई विजय वैजन्ती।
दिनकर नाम परे सचमुच है कुरुक्षेत्र के रण का,
भाषा के सौष्ठव का या फिर मधुर सुनहरे क्षण का।

तेज नाम दिनकर का है, है घासों की रोटी का,
दानवता का नाश करे उस हाड़, मांस, बोटी का।

संस्कृति के अध्याय चार बन गये हमारे सम्बल,
तूफानों में भी मिल जाये जीवन जीने का हल।
अनल-किरीट पहन जब कोई सुधा-बीज बोता है,
ऐस ही प्राणी युग-युग से नर-पुंगव होता है।
खिन्न मनुज को शौर्य-शक्ति का ज्वार बांट जाता है,
अंधियारे के जाल काट जो नई सुबह लाता है।

दिनकर दिन का उन्नायक, रूपायित रश्मिरथी है,
पद-चिह्नों पर चले विश्व वह ऐसा पुण्य-पथी है।
ठहरे पानी में शब्दों के जो नित ज्वार उठाता,
ऐसा शिल्पी मनुज नहीं, वह तो तीरथ बन जाता।

जिसका हर हुंकार सिंधु के गर्जन को ललकारे,
सिद्धि सदा नत मस्तक रहती आकर उसके द्वारे।
हारे को हरिनाम, जीत का मूल यही तो स्वर है,
भावबोध हो गया अगर सारा जीवन भास्वर है।

नीलकुसुम की अयि रेणुके, पहनो चूनर धानी,
रस-फुहार बन रसो, बसो उर में उर्वशी सयानी।
सुमन-बाटिका की जय हो, कविता-निकुंज की जय हो,
जय भारत की, जयति भारती, प्रभा-पुंज की जय हो।

Vkt] Økfr vkj eY;ckèk
d dfo ^fnudj*

–डॉ॰ दिनेश चमोला 'शैलेश'

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' हिंदी के छायावादोत्तर काल के कवियों में सबसे अग्रिम पंक्ति के राष्ट्रवादी क्रांतिधर्मा कवि थे। आपकी कविताओं में जहाँ राष्ट्रीयता के स्वाभिमान की अभिव्यक्तिपरक पराकाष्ठा उद्भासित होती हैं, वहीं क्रांति, ओज व विद्रोह की त्रिवेणी आपकी उफनती हुई काव्यगंगा को उत्तुंगता व मूल्यों की स्थायित्व देने वाली सुदृढ़ आधारशिला। लेखनी में जीवन मूल्यों की उदात्तता समेटे इस क्रांतिधर्मा कवि का आविर्भाव समूची हिंदी कविता के लिए एक सांस्कृतिक व ओज के अभिवन पुनर्जागरण की तरह था जिसने अपनी रचनात्मक ऊर्जा व रचनाधर्मिता के नए प्रतिमानों को गढ़ इस ऊर्जाधारा को न केवल गति दी, बल्कि जीवनमूल्यों के दुर्जय पथ पर भी पदार्पण किया जहां से राष्ट्र-शब्द उसकी वाणी की उर्वेरा शक्ति दूसरों को चिंतन-सृजन व भाव-स्फूर्ति की आधार सामग्री सुलभ कराने को सामर्थ्य जुटाती रही।

रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म सिमरिया गांव के एक निम्न मध्यवर्गीय किसान परिवार में 23 सितम्बर, 1908 को हुआ। 'दिनकर' का यह गांव बिहार प्रदेश के पुराने मुंगेर (बेगूसराय) जिले में अवस्थित है जो मिथिलांचल का प्रसिद्ध तीर्थ भी है। 'दिनकर' का लालन-पालन एक संस्कारवान परिवार में हुआ। इनके पितामह का नाम शंकर राय, पिता का नाम बाबू रविराय व माता का नाम मनुरूप देवी था। आस-पास के गांवों में इनके पिता मानस मर्मज्ञ के रूप में जाने जाते थे। इनके हिंदी प्रेम के बीज-नयन का प्रमाण सन् 1928 में हाई स्कूल की परीक्षा में पूरे प्रदेश में सर्वाधिक हिंदी विषय के अंक एवं तदविषेयक प्राप्त 'भूदेव स्वर्ण पदक' से भी होता है। इनकी पहली कविता हिंदी सेवी संपादक पं॰ मातादीन शुक्ल के संपादन में जबलपुर में प्रकाशित 'छात्र सहोदर' में प्रकाशित हुई थी। इसी दौरान उन्होंने अपना नाम 'दिनकर' भी रखा। इनकी पहली कविता पुस्तक 'प्रणभंग' (1929) 21 वर्ष की अवस्था में प्रकाशित हुई। रचनाधर्मिता की यह ऊर्ध्वमुखी यात्रा फिर बालक 'दिनकर' की ओजस्वी लेखनी से अपने स्वरूप व क्षेत्र का विस्तार देती हुई पद्य से गद्य व साहित्य से अन्यान्य विधाओं को महिमामंडित, गौरवान्वित करती रही, 'रेणुका', 'हुंकार', 'रश्मिरथी', 'उर्वशी', 'कुरुक्षेत्र', 'संस्कृति के चार अध्याय' सहित अनेक उत्कृष्ट पुस्तकें 'दिनकर' के ओजस्वी लेखन के रूप में हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं।

'दिनकर' की कविताएं जीवनमूल्यों की रत्नगर्भा भाव वसुंधरा से उपजी हैं जो अपने साथ स्वाभिमान, त्याग व उत्सर्ग की उत्कट अभिलाषा लिए अपने जीवन लक्ष्य को उकसाती प्रतीत होती हैं। वे अपने आदर्शों की रक्षा व लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्राणोत्सर्ग तक करने का भी संकोच नहीं करते। आत्म स्वतंत्रता व मूल्यबोध के संरक्षण की उदात्तता को कवि की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है:–

छोड़ो मत अपनी आन, शीश कट जाए
मत झुको अनय पर भले व्योम फट जाए
दो बार नहीं यमराज कंठ धरता है
मरता है जो एक बार मरता है
तुम स्वयं मृत्यु के मुख पर चरण धरो रे
जीना हो मरने से नहीं डरो रे

'दिनकर' के लिए कविता का प्रतिमान दुर्लभ जीवन के सुख-वैभवों को गिरवी रख चंद स्वार्थ के टुकडों में निर्काणता नहीं है; वरन् जीवन मूल्यों का संरक्षण सर्वोपरि है। उनके लिए भौतिकता से कहीं ऊपर उठकर आदर्श चरायणता के साथ अपने मतंव्य व गतंव्य को प्राप्त करना पौरुष का परिचायक है। मूल्यपरक एक उपलब्धि मूल्यहीन सैकड़ों भौतिक उपलब्धियों से कई गुणा श्रेष्ठतर व स्थायी है। मूल्यबोध की गुणता से रहित जीवन की समस्त भौतिक निधियों को वे नितांत श्रीविहीन मानते हैं। उनकी क्रांतिधर्मिता का उर्वर वैचारिकता के प्रवाह को निम्नलिखित पंक्तियों में अनुभूत किया जा सकता है। जब आहवान् के स्वर में वे कहते हैं:–

चोटें खाकर विफरो, कुछ अधिक तनो रे
धधको स्फुलिंग में बढ़ अंगार बनो रे
उद्देश्य जन्म का नहीं कीर्ति या धन है
सुख नहीं, धर्म भी नहीं, न तो दर्शन है
विज्ञान ज्ञान बल नहीं न तो चिंतन है
जीवन का अंतिम ध्येय स्वयं जीवन है
सबसे स्वतंत्र रस जो भी अनध पिएगा
पूरा जीवन केवल वह वीर जियेगा

जीवन की विषमताएं, विपरीतताएँ भावुक कवि को हतोत्साहित नहीं करती बल्कि उसके सुदृढ़ पौरुष की परीक्षा ले सफलताओं के निकष को छू लेने के लिए उत्प्रेरक सीढ़ियां बनकर उसका मार्ग प्रशस्त करती हैं। 'दिनकर' का कवि मन स्थूल जड़ताओं के भीतर छिपे उस चैतन्य स्वरूप से साक्षात्कार करने का हिमायती है जिसे भौतिक नश्वरता करने का साहस भी नहीं कर सकती। वे केवल कायिक विराटता ओढ़े खोखले राष्ट्र की कल्पना नहीं करते बल्कि उस चेतन सत्ता से ओतप्रोत संस्कारधानी राष्ट्र के पक्षधर जहां मूल्यादर्श इन सबकी सीमा फांद शाश्वतता का शंखनाद कर जीव व जीवन की अमरत्व का शुभ संदेश देने के लिए व्यग्र हों। अपने इस द्वंद्वात्मक उहापोह का संवाद वह इस आहवान के साथ कुछ यूं करते हैं:–

तुझको या तेरे नदीश, गिरि, वन को नमन करूं मैं?
मेरे प्यारे देश! देह या मन को नमन करूं मैं?
किसको नमन करूं मैं भारत? किसको नमन करूं मैं?
भू के मानचित्र पर अंकित त्रिभुज, यही क्या तू है?
नर के नभश्चरण की दृढ़ कल्पना नहीं क्या तू है?
भेदों का ज्ञाता, निगूढ़ताओं का चिर ज्ञानी है
मेरे प्यारे देश! नहीं तू पत्थर है, पानी है
जड़ताओं में छिपे किसी चेतन को नमन करूं मैं?

जीवन की अनुकरणीय उपलब्धियाँ कवि के लिए क्षणिक भी सुख व संतुष्टि का भाव जागने वाली नहीं हैं। वे उस जीवन व कर्म को अभिनंदनीय व वंदनीय मानते हैं जो दीपस्तंभ बन भटके हुओं को दिशा-दृष्टि दें, द्वेष, दंभ व वैमनस्य के अंगारे उगल रहे हृदयों में प्रेम, करुणा व अपनत्व की फुहार कर ले; जो मैत्री प्रेम सौहार्द व मानवता के संरक्षण में किंचित भी अपना अवदान सुनिश्चित करे; आदर्श न्याय व मूल्यों की स्थापनाओं की रक्षा के लिए स्वयं के उत्सर्ग तक की भी कोई परवाह न करे; ऐसे पुरूष व उनका पौरुष; उनका उत्प्रेरक जीवन कवि के लिए कुछ महत्व का है। इस राष्ट्रीय प्रेमाभिव्यक्ति का एक समेकित दृष्टिकोण कवि की इन ओजपूर्ण पंक्तियों में निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है:–

दो हृदय के तार जहां भी जो जन जोड़ रहे हैं
मित्रभाव की ओर विश्व की गति को मोड़ रहे हैं
घोल रहे हों जीवन-सरिता में प्रेम रसायन
खोल रहे हों देश-देश के बीच मुंदे वातायन
आत्मबंधु कहकर ऐसे जन-जन को नमन करूं मैं
उठे जहाँ भी घोष शांति का, भारत, स्वर तेरा है
धर्म-दीप हो जिसके भी कर, मैं वह नद तेरा है
तेरा है वह वीर, सत्य पर जो अड़ने आता है
किसी न्याय के लिए प्राण अर्पित करने जाता है
मानवता के इस ललाट-बंदन का नमन करूं मैं।

'दिनकर' की ओजस्वी कविता जहां युवाओं व पाठकों में नई ऊर्जा व शक्ति का संचार करती है, वहीं उत्साहहीन व चुके-टूटे हृदयों में फिर से जीवनमूल्यों की प्राणप्रतिष्ठा कर अपने शौर्य व पराक्रम को जगाने का भी कार्य करती है। विपत्ति भावुक कवि के ऊर्ध्वगामी विकासशील जीवन के लिए कोई अवरोध नहीं बल्कि सफलताओं की दहलीज सदृश है। विघ्नों से पराजय स्वीकारना कवि के लिए कायरता है तथा इससे दो'चार होना पराक्रमी व सूरमा होने का प्रतीक। एक बानगी इन पंक्तियों में देखी जा सकती है:

सच है, विपत्ति जब आती है
कायर को भी दहलाती है
सूरमा नहीं विचलित होते
क्षण एक नहीं धीरज खोते
विघ्नों को गले लगाते हैं
कांटों में राह बनाते हैं

क्रांतिकारियों को जीवनसिद्धि कंटकाकीर्ण विघ्न-बाधायुक्त विथियों को चीरकर प्राप्त होती है। कवि भौतिक शक्तियों से भी ऊपर अपने बुलंद हौसलों को करार देता है जिसके समक्ष प्रतिद्वंद्वी शक्तियां घुटने टेक उसे अपने गंतव्य व मंतव्य तक पहुंचने का मार्ग प्रशस्त करने को विवश हो जाती हैं। कवि की स्वदेश-प्रेम में पगी हुई ये कविताएं समर्थवान पौरुष का आह्वान करती हुई अवरोधों पर पार पाने के आमंत्रण के साथ-साथ मनुष्य में अद्भुत शक्ति व ऊर्जा का संचार करती हुई प्रतीत होती हैं, जब वह कहता है:–

है कौन विघ्न ऐसा जग में
टिक सके आदमी के मग में
खम ठोक ठेलता है जब नर
पर्वत के जाते पांव उखड़
मानव जब जोर लगाता है
पत्थर पानी बन जाता है।

अद्भुत त्याग, अतुलनीय पराक्रम, अनथक समर्पण से अपने लक्ष्य को गले लगाने वाले वे अमर मौन साधक कवि की करुणा, श्लाघ प्रतिष्ठा व समादर के प्रतिमान बन जाते हैं जो निष्काम सेवा में जीवन को सफल कर जाते हैं, जो बेमोल अपना सर्वस्व न्यौछावर कर गए, ऐसे अमर, बलिदानियों, देशप्रेमियों व मूल्यबोध की स्थापना करने वाले जीवन मूल्यों को कवि शब्दब्रह्म का अमृत पिलाकर युग-युगों तक अमरत्व दे उनकी श्रेष्ठता, गुणत्ता के जयघोष के नंदन, अभिनंदन से संपूर्ण चराचर सृष्टि का परिचय कराना चाहता है, जबकि वह संपूर्ण पारदर्शिता में दृढ़ संकल्पित हो कहता है:

कलम, आज उनकी जय बोल!
जो अनगणित लघु दीप हमारे,
तूफानों में एक किनारे,
जल-जलकर बुझ गए किसी दिन
मांगा नहीं स्नेह मुंह खोल
कलम, आज उनकी जय बोल।

कवि के लिए युवा शक्ति राष्ट्र का अक्षय ऊर्जा भंडार है। इसके संरक्षण व विकास से ही किसी देश के जीवन विकास का रथ अपने मनोकामनाओं के राजमार्ग पर गति पकड़ सकता है। जिसका युवा संगठित है वह राष्ट्र शक्ति संपन्न है। अपनी संजीवनी रूपी भावशक्ति से कवि मूल्योन्मुखी युवाशक्ति का आहवान कर प्रगति पथ पर अग्रसर हो मजबूत राष्ट्र के निर्माण में सहचर व सहभावी बन कुछ नया इतिहास रचने का आमंत्रण देता है जिनकी निष्ठा, समर्पण व शक्ति के समक्ष शेष-अशेष शक्तिहीन हो घुटने टेक देता है। ऐसी ओजपूर्ण वाणी में उन युवाओं का आहवान देखिए–

सहम करके चुप हो गए थे समुंदर
अभी सुनके तेरी दहाड़
अभी हिल रही थी, जहां हिल रहा था
जभी हिल रहे थे पहाड़
अभी क्या हुआ, किसके जादू वे आ करके
शेरों की सी दी जुबान?
खड़ा हो जवानी का झंठा उड़ा
ओ मरे देश के नौजवान।

राष्ट्रकवि 'दिनकर' की कविता में राष्ट्रीयता व स्वाभिमान के भाव कूट-कूटकर स्वत: ही अंतर्निहित हैं, यह कवि के कर्तव्यपरायण, स्वाभिमानी व राष्ट्रोन्मुख व्यावहारिक चरित्र का प्रमाण है। अतीत की गौरवशाली क्रांतिधर्मिता कवि की वर्तमान गर्वानुभूति की आधारशिला है। अपने अतीत के पराक्रमी व शौयपूर्ण इतिहास का स्मरण करते हुए कवि अपने राष्ट्रीय चरित्र का महिमामंडित गुणगान कर हिंद देश की गौरवगाथा को अक्षुण्ण रखते हुए अपने देश के नौजवानों को स्वाभिमान के धधकते हुए अंगारों का उपहार दे संसार को ललकारने का संदेश इन क्रांतिकारी भावों में देता है–

गरज कर बता सबको मारे किसी के
मरेगा नहीं हिंद देश
लहू की नदी तैर कर आ रहा है
कहीं से कहीं हिंद देश
लड़ाई के मैदान में चल रहे ले के
हम उसका उड़ता निशान
खड़ा हो जवानी का झंडा उठा
ओ मरे देश के नौजवान।

मूल्यबोध की कच्ची सामग्री में पगी राष्ट्रकवि 'दिनकर' की कविता का शब्द-शब्द अपने में स्वाभिमान व राष्ट्रप्रेम को जीती लगती है। कवि के लिए कविता केवल अपनी बोझिल भावनाओं को केवल अनुभूतियों व कोमल भावनाओं के केनवस पर अंकित कर भाव-प्रसव की पीड़ा से उन्मुक्त होना मात्र नहीं है बल्कि कविता उनके लिए अपने अस्तित्व व सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण का एक दिव्यास्त्र भी है जो अपने मूल्यों व अस्तिव की रक्षा के लिए जीवन व प्राणोत्सर्ग तक करने में गर्व व आनंद का बोध कराता है। कवि उद्देश्य की प्राप्ति, मूल्यरक्षा के लिए जहां बार-बार बलि जाने के लिए व्यग्र है वही भाईचारा व मानवीय सरोकारों के संवर्धन के लिए भी स्वयं को क्षण-क्षण युग व समाज की धड़कन से संबद्ध पाता है। कुचक्रों से घिरे समाज की चैतन्यता का संदेश कवि इन भावप्रवण शब्दों में प्रदान करता है:–

तिमिरपुत्र ये दस्यु कहीं कोई दुष्कांड रचें ना।
सावधान! हो खड़ी देश भर में गांधी की सेना।
बलि देकर भी बली! स्नेह का यह व्रत साधो रे।
मंदिर और मस्जिद दोनों पर एक तार बाँधो रे।
समर शेष है नहीं पाप का भागी केवल व्याघ्र।
जो तटस्थ हैं समय लिखेगा उनका भी अपराध।

अतीत का मूल्योन्मुखी इतिहास, पराक्रम व शौर्य कवि के लिए वर्तमान का शक्तिपुंज बन भावी पीढ़ियों को जीवन मूल्यों से सुसंस्कारित करने के लिए न केवल ललकारती है। अपितु अपनी ओजमय वाणी से हारे हुओं को भी अपने गौरवशाली अतीत का शंखनाद कर उनके भीतर सोए हुए पराक्रमी भारत को जागृति का शंखनाद भी करता है। केवल पुरातनता का चमत्कारहीन आंडबर कवि की कविता के संघर्ष को चीरकर भी नित नूतनता की पराकाष्ठा नहीं प्रदान कर सकता–उनकी अनुभूतियों को आडबंरहीन चरित्र उस नूतन व अभिनव कल्पनाशक्ति का शाश्वत अभिनंदन करने को आतुर है जो नवजागरण व अभिनव कल्पना-शक्ति का पूंज बनकर इतिहास व समय को मोड़ देने की सामर्थ्य अपने भीतर समाए रहता है। तभी कवि भारत के उन अग्निधर्मा ऋषियों को चेतना-शक्ति का वंदन, अभिनंदन आहवान के स्वरों में इन क्षणों को समय शिला पर शाश्वत रूप से अंकित कर देने का आहवन इन ओजपूर्ण शब्दों में इस प्रकार करता है:

हो कहाँ अग्निधर्मा
नवीन ऋषियो? जागो
कुछ नई आग
नूतन ज्वाला की सृष्टि करो।
शीतल प्रमाद में ऊंघ रहे हैं जो, उनकी
चिन्गारी को दृष्टि करो।।

कवि के लिए राष्ट्रप्रेम व अतीत की उपलब्धियों की गौरव गाथा केवल चेतन जैविक सत्ता से ही प्राप्त नहीं होता बल्कि अपनी तन्हाइयों में भी जीवन मूल्य, ओज व आदर्श की रक्षा करता हुआ ध्वज भी उसी प्रकार वंदनीय, अभिनंदनीय व मूल्यों का रक्षा कवच है जिसकी क्रांतिधर्मिता स्वयं राष्ट्रप्रेम का जीवंत उद्गाता है। 'ध्वजा वंदना' में कवि की ओजस्वी वाणी की एक-बानगी देखिए जो भारतीयता के साथ-साथ मौलिकता व स्वतंत्रता का भी स्वयं परिचायक है:

नमो, नमो नमो!
नमो स्वतंत्र भारत की ध्वजा नमो, नमो!
नमो नगाधिराज-शृंग की विहारिणी!
नमो अनंत सौख्य शक्ति-शीला-धारिणी।
प्रणय-प्रसारिणी, नमो अरिष्ट वारिणी।
नमो मनुष्य के शुभेषणा-प्रचारिणी!
नवीन सूर्य की नई प्रभा, नमो, नमो!

राष्ट्रकवि 'दिनकर' की कविता में जहां भारत के गौरवपूर्ण अतीत की सौंधी महक कूट-कूटकर भरी हुई है, वहीं उनकी ओजपूर्ण व क्रांतिधर्मी रचनाओं में जीवनमूल्यों के संरक्षण की प्रतिबद्धता संपूर्ण उदात्तता के साथ परिलक्षित होती है। चाहे 'रेणुका', 'हुंकार' 'रसवन्ती', 'सामधेनी' के दौर की कवि के चेतनोम्मुख दौर की विचारोत्तेजक कविताएं हों अथवा 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी' अथवा 'उर्वशी' जैसी शीर्षस्थ व सशक्त प्रबंधात्मक कृतियां जीवनमूल्यों व आदर्शों के संरक्षण के साथ राष्ट्र गौरव, स्वाभिमान व राष्ट्रीयता का स्वर इनकी केंद्रक भूमिका के रूप में स्वत: स्फूर्त रहा है राष्ट्रकवि दिनकर के कविता दर्शन ने हिंदी कविता धारा को नए तेवर, शिल्प-विधान व गरिमा-महिमा ही प्रदान नहीं किए अपितु जीवन मूल्यों की एक विराट थाती भी उपहार में दी जो, युग-युगों तक मानवीय सरोकारों को दिशा-दृष्टि देती रहेगी। ऐसे महाकवि ही उत्कृष्ट रचनाधर्मिता व साधना को कोटि-कोटि नमन!!!

संपर्क: 'अभिव्यक्ति' 157, गढ़ विहार,
फेज-1, मोहकमपुर, देहरादून

मेरी पायल झनकार रही तलवारों की झनकारों में,
अपनी आगमनी बजा रही मैं आप क्रुद्ध हुंकारों में;
मैं अहंकार-सी कड़क ठठा हँसती विद्युत् की धारों में
बन काल-हुताशन खेल रही पगली मैं फूट पहाड़ों में;
अँगड़ाई में भूचाल, साँस में लंका के उनचास पवन।

– दिनकर

jk"Vdfo fnudj

– डॉ. कुमार विमल

हिन्दी के ओजस्वी कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म 23 सितम्बर 1908 ई. में बिहार के तत्कालीन मुंगेर जिले के 'सिमरिया' नामक गाँव में हुआ था। दिनकर का रचना-काल सन् 1927 ईस्वी से अप्रैल, 1974 ईस्वी (देहावसान-वर्ष) तक अर्थात् कुल 47 वर्षों का रहा है।

दिनकर जी मुख्यत: गर्जन-तर्जन के कवि थे। वे उस 'मन्यु' की उपज थे, जिस 'मन्यु' ने भारत के नवजागरण को जन्म दिया था। इसी 'मन्यु' की भाव-भूमि और अनल-धर्मिता से उन्हें लोकप्रियता मिली और अक्षय यश मिला। उनकी 'अनल-धर्मिता' की बानगी देखें

''ज्योतिर्धर कवि मैं ज्वलित सौर मंडल का
मेरा शिखंड अरुणाभ किरीट अनल का।''
अथवा
''मैं विभा-पुत्र जागरण-गान है मेरा,
जग को अक्षय आलोक-दान है मेरा।''

इसी अनल-तत्व ने दिनकर की कविता को महाप्राण बना दिया है और उसे कृशानुद्दीपन की क्षमता से इस प्रकार भर दिया है –

''बजा इस बार दीपक-राग कोई आखिरी सुर में,
छिपा इस बीन में ही आगबाला तार है साथी!''

कवि इतना ही कहकर चुप नहीं हो जाता। वह सभी अग्निधर्मा कवियों को कृशानुद्दीपन के लिए इन ओज भरे शब्दों में ललकारता है –

''हो कहाँ अग्निधर्मा नवीन ऋषियो! जागो,
कुछ नई आग, नूतन ज्वाला की सृष्टि करो।''

इस प्रकार दिनकर की कविताओं का मुख्य स्वर क्रांति का स्वर था और स्वतंत्रता-संघर्ष के लिए अपने देशवासियों, विशेषकर युवा-शक्ति को ललकारने वाला ओज-भरा नाद-निनाद था। इसी भाव-बोध के उद्बोधन, आह्वान, हुंकार और सिंहनाद ने दिनकर को लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचाया था और तत्कालीन राष्ट्रीय काव्य-धारा के इन उत्कृष्ट कवियों- मैथलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', कुमारन् आशान्, सुब्रह्मण्य भारती, भास्कर रामचंद्र तांबे, कुवेंपु (पुट्टा), गोपबंधु, लक्ष्मीकांत महापात्र, वल्लतोल, अंबिका गिरि रायचौधरी, कुसुमाग्रज, गुरजाडा अप्पाराव, दाशरथि और काजी नजरूल इस्लाम जैसे राष्ट्रीय कवियों के बीच अग्रगण्य बना दिया था।

यह लक्ष्य करने योग्य है कि राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय काव्य-धारा के समर्थ कवि दिनकर के चिंतन में सन् 1953 ईस्वी से ही एक बड़ा परिवर्तन लक्षित होने लगा था। राष्ट्रीय भावना के कवि के रूप में प्रसिद्ध दिनकर के अनेक भाषणों और लेखों से यह ध्वनित होने लगा है कि अब उनकी दृष्टि में राष्ट्रीयता उतनी ही ग्राह्य हो सकती है, जितनी मात्रा में वह अतंर्राष्ट्रीय भावनाओं और हित के विकास में बाधक नहीं हो। शायद, उनकी यह धारणा बन गई कि वैश्विक राजनीति के बदले हुए परिवेश में अब राष्ट्रीयता प्रतिक्रियावादियों के इस्तेमाल का औजार बन गई है। उनकी यह आमूलचूल परिवर्तित धारणा 'नील कुसुम' में संकलित 'राष्ट्र-देवता का विसर्जन' शीर्षक कविता में व्यक्त हुई है, जिसकी रचना उन्होंने 26 जनवरी, 1953 ई. में की थी।

दिनकर अपने काव्य-प्रबंध के लिए युगोपयुक्त कथा-वस्तु के चयन में निपुण थे। उनकी यह निपुणता हमें 'कुरुक्षेत्र' और 'रश्मिरथी' के प्रकरण में मिलती है। इन दोनों महत्त्वपूर्ण कृतियों की कथा-वस्तु या विषय-वस्तु 'युद्ध' के इर्द-गिर्द घूमती है। यह पहलू ध्यान देने योग्य है, क्योंकि वह युग दो भयंकर विश्व-युद्धों को झेल चुका था। उस समय के बुद्धिजीवियों, कवियों और लेखकों का कर्तव्य था कि वे ऐसे युद्धों के न्यायपूर्ण अथवा अन्यायपूर्ण होने के बारें में अपने विचारों से लोगों को अवगत कराएं। नॉम चॉम्स्की ने 'द रिस्पॉन्सिबिलिटि ऑव इन्टेलेक्चुअल्स' शीर्षक के अपने प्रसिद्ध निबन्ध में बलपूर्वक कहा है कि युद्ध के प्रसंग में 'सही' और गलत को बताना बुद्धिजीवियों का बहुत बड़ा दायित्व है। दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' और 'रश्मिरथी' की रचना के द्वारा निश्चय ही इस गुरुतर दायित्व को पूरा किया है। जीविका और गृहस्थी की रूक्ष वास्तविकताओं से जूझते हुए कवि दिनकर पर नियति का यह क्रूर व्यंग्य था कि 'कुरूक्षेत्र' और 'रश्मिरथी' जैसे श्रेष्ठ युद्ध-काव्य तथा 'विपथगा' जैसी उत्कृष्ट क्रांतिकारी कविता के ओजस्वी कवि को फिरंगी सरकार के 'नेशनल वार फ्रंट' में 'साँग पब्लिसिटी' के ऑर्गेनाइजर के पद पर काम करना पड़ा था।

आधुनिक हिन्दी कविता के युद्ध-काव्यों-यथा, 'आर्यावर्त' (मोहन लाल महतो वियोगी), 'उन्मुक्त' (सियाराम शरण गुप्त), 'अंधा युग' (धर्मवीर भारती), 'प्रभास कृष्ण' (केदार नाथ मिश्र 'प्रभात') 'अशोक' (रामदयाल पांडेय) इत्यादि के बीच 'कुरुक्षेत्र' (दिनकर) का विशिष्ट स्थान है। 'कुरुक्षेत्र' एक विचार-प्रधान युद्धोत्तर काव्य है। युद्धोत्तर काव्य का तासीर आसन्न युद्ध-पूर्व काव्य और युद्धकालीन काव्य से अलग होता है।

'परशुराम की प्रतीक्षा' के पूर्व के दिनकर को हम युद्ध-काव्य का महात्मा गाँधी-युगीन कवि कह सकते हैं। महात्मा गाँधी का मंतव्य था कि हिंसा से मिली विजय पराजय के समतुल्य होती है। महात्मा गाँधी के इस विचार-सूत्र की बारम्बार आवृत्ति दिनकर के युद्ध काव्य में अनेकत्र मिलती है। युद्ध-काव्य के संदर्भ में दिनकर के प्रिय कथ्य-बिंदु इस प्रकार हैं – युद्ध की कारणीयता-अकारणीयता, हिंसा की व्यर्थता, धर्म की हानि, युद्ध की विभीषिका और विनाश-लीला, मनुष्य के हृदयस्थ देवता (शुभांश) का उदय इत्यादि। इन कथ्य-बिंदुओं को दिनकर 'प्रण-भंग', 'कलिंग-विजय' और 'कुरुक्षेत्र' में ही नहीं, 'मगध-महिमा' नाम्नी पद्य नाटिका में भी दुहराते रहे हैं, जो 'रश्मिरथी' (1952 ईस्वी) से लगभग चार वर्ष पूर्व सन् 1948 ईस्वी में रचित नाटिका है। 'मगध-महिमा' के सातवें दृश्य में युद्ध के उपरान्त विजयी, किन्तु, परिताप-दग्ध अशोक के विह्वल गीत की ऐसी अनेक पंक्तियाँ दिनकर के युद्ध-सम्बन्धी उक्त मंतव्य को व्यक्त करती हैं –

''जय की वासने उद्दाम!
देख ले भर आँख निज दुष्कृत्य के परिणाम!''

,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,

"रण का एक फल संहार।
मातृ-मुख की वेदना, वैधव्य की चीत्कार ।"
,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,

"जीतते संग्राम हम पहले स्वयं को मार"
"पापी खड्ग घोर कठोर!
जोड़ना संबंध क्या जय से, दया को छोड़?
खोजना क्या कीर्ति अपने को लहू में बोर?"

ज्ञातव्य है कि जिस समय 'कुरुक्षेत्र' की रचना की गई थी, उस समय तक इस सर्वसहा धरती पर दो भयंकर विश्व-युद्ध घटित हो चुके थे। इन त्रासद विश्व-युद्धों पर, तत्कालीन पृष्ठभूमि में, गंभीर रूप से विचार करने वाले चिंतकों में बर्ट्रेंड रसेल तथा ओस्वाल्द स्पेंग्लर प्रमुख थे। दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' के रचना-काल में बर्ट्रेंड रसेल का अध्ययन विशेष रूप से किया था। 'कुरुक्षेत्र' के षष्ठ सर्ग में बर्ट्रेंड रसेल का-खासकर उनकी पुस्तक 'अथॉरिटी एंड इंडिविजुअल' तथा 'हैज मैन अ फ्यूचर' शीर्षक निबंध में व्यक्त विचारों का स्पष्ट प्रभाव कई स्थानों पर मिलता है। बर्ट्रेंड रसेल की एक और पुस्तक 'न्यू होप्स फॉर अ चेंजिंग वर्ल्ड' का भी प्रभाव 'कुरुक्षेत्र' में कई स्थानों पर मिलता है। बर्ट्रेंड रसेल की तीन खण्डों में प्रकाशित 'आटो बायोग्राफी' में उनके युद्ध-संबंधी विचार मिलते हैं, जिनका प्रभाव दिनकर के युद्ध-काव्य में लक्षित होता है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि विश्व के सभी देशों और राष्ट्रों को अब साम्राज्यवाद के विभिन्न रूपों में सैनिक साम्राज्यवाद, आर्थिक साम्राज्यवाद और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का परित्याग कर शांति की स्थापना के लिए 'विश्व-युद्ध' अथवा 'सीमित युद्ध' के विरूद्ध प्रण-बद्ध होना होगा, हमें समस्याओं के निदान और समाधान की क्षमता को बढ़ाना होगा, विभिन्न राष्ट्रों और गुटों के बीच पारस्परिक विश्वसनीयता का वातावरण पैदा करना होगा, धार्मिक ध्रुवीकरण को रोकना होगा, अपेक्षित मात्रा में निःशस्त्रीकरण की नीति को अपनाना होगा तथा मानव-हृदय में बसे हुए 'शुभांशो' के देवता के संकेतों पर चलना होगा। तभी युद्ध की संभावनाएँ समाप्त होगी और रण-भीति समाप्त होंगी। दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' के षष्ठ सर्ग के अंत में उचित ही लिखा है -

"श्रेय होगा मनुज का समता-विधायक ज्ञान,
स्नेह-सिंचित न्याय पर नव विश्व का निर्माण
एक नर में अन्य का निःशंक दृढ़ विश्वास"
....

"युद्ध की ज्वर-भीति से हो मुक्त,
जबकि होगी सत्य ही वसुधा सुधा से युक्त।
श्रेय होगा सुष्ठु विकसित मनुज का वह काल,
जब नहीं होगी धरा नर के रुधिर से लाल।"

इसमें संदेह नहीं कि दिनकर रचित युद्ध-काव्यों में 'कुरुक्षेत्र' उनकी एतद् सम्बन्धित अन्य कृतियों की अपेक्षा अधिक चिरंजीवी सिद्ध होगा।

d#{k=% fgUnh dk iFke ;) & dk0;

प्रो. गोपेश्वर सिंह

विद्यापति के बाद बिहार प्रान्त से उठने वाले हिन्दी कवियों में दिनकर दूसरे हैं, जिन्हें अखिल भारतीय प्रतिष्ठा मिली। वे अपने समय के कवि के रूप में न सिर्फ जाने गए, बल्कि माने भी गए। वे अपने समय के हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं। 'मधुशाला' के कवि बच्चन और'हुंकार' के कवि दिनकर को अलग-अलग कारणों से व्यापक लोकप्रियता मिली। ऐसी लोकप्रियता कवि जीवन के प्रारम्भ में दूसरे अन्य कवियों को न मिली। यद्यपि हाला, साकी आदि के कारण बच्चन का प्रारम्भ में विरोध भी हुआ, लेकिन दिनकर की लोकप्रियता निर्विवाद रही। स्वाधीनता आन्दोलन की लहर पर सवार इस कवि को राष्ट्रीयता प्रधान कविताओं के कारण जनता ने सिर माथे पर उठा लिया। मैनेजर पाण्डेय का यह कहना सही है कि 'पं. जवाहरलाल नेहरू राजनीति में युवा हृदय सम्राट थे तो हिन्दी कविता के युवा हृदय सम्राट दिनकर थे।'

दिनकर के काव्य में एक वैचारिक द्वन्द्व निरन्तर विद्यमान है। रवीन्द्र और इकबाल, मार्क्स और गांधी, हिंसा और अहिंसा, युद्ध और शान्ति, धरती और स्वर्ग, पत्नी और प्रेयसी आदि शब्द-युग्म दिनकर के वैचारिक द्वन्द्व के प्रमुख आधार हैं। वे मार्क्स के लाल रंग में गांधी का सफेद रंग मिलाकर अपना वैचारिक रंग तैयार करते हैं। वे न शुद्ध रूप से हिंसा के उपासक हैं और न अहिंसा के। दिनकर के लिएये बातें देश काल के सापेक्ष हैं। यही कारण है कि उनमें किसी वाद के प्रति दुराग्रह न होकर अपने समय के ज्वलंत प्रश्नों को भिन्न वैचारिक दृष्टियों से देखने-समझने की निरन्तर बेचैनी दिखाई देती है। वे घोषित रूप में न तो प्रगतिशील हैं और न प्रयोगवादी, न ही कवितावादी। राजनीति में जो स्थिति पं. जवाहरलाल नेहरू की है, वही साहित्य में दिनकर की। पं. नेहरू राजनीति में जिस तरह गांधीवाद और समाजवाद को मिलाकर नया राजनीतिक रसायन तैयार करते हैं, उसी तरह दिनकर अपने समय के प्रमुख साहित्यिक वादों प्रगतिवाद, प्रयोगवाद एवं नई कविता, में से किसी एक के हिमायती न होकर अपने लिए नया काव्य मार्ग ढूँढ़ते हैं, यह अकारण नहीं है कि आज़ादी मिलने के बाद उनके प्रिय नेता नेहरू हैं: और 'लोकदेव नेहरू' नाम से पुस्तक लिखकर वे अपनी वैचारिक पसन्द का इजहार भी करते हैं।

वैसे तो 'हुंकार' से लेकर 'उर्वशी' तक दिनकर की प्रायः सभी कृतियाँ प्रकाशित होने के साथ ही पर्याप्त रूपसे चर्चित हैं, जिन्हें व्यापक लोकप्रियता भी मिली और व्यापक रूप से विरोध और विवाद का सामना भी करना पड़ा। विवाद का कारण 'कुरुक्षेत्र' में युद्ध और शान्ति तथा 'उर्वशी' में पत्नी और प्रेयसी के द्वन्द्व से गुजरने के बाद दिनकर का अपना वैचारिक समाधान था। कुछ अध्येताओं की दृष्टि में यह सर्वथा मौलिक था, तो कुछ की राय में पुरानी मान्यताओं की आवृत्ति भर। 'कुरुक्षेत्र' अपने प्रकाशनकाल से ही दिनकर की एक चर्चित और विवादास्पद काव्यकृति है। विवाद का मुख्य आधार कुरुक्षेत्र का प्रबन्ध और वैचारिक द्वन्द्व है। कुछ आलोचकों की राय में कुरुक्षेत्र प्रबन्ध की दृष्टि से असफल कृति है तो कुछ की राय में इसकी वैचारिक निष्पत्ति 'गीता', 'महाभारत' और स्वयं दिनकर की अपनी कविता 'कलिंग विजय' से भिन्न नहीं है। नगेन्द्र और नन्ददुलारे वाजपेयी जैसे आलोचकों ने कुरुक्षेत्र की प्रशंसा की है, तो रामविलास शर्मा और नलिन शर्मा जैसे आलोचकों ने इसके प्रबन्ध और विचारों पर प्रश्नचिन्ह लगाया है। 'कुरुक्षेत्र' की भूमिका में दिनकर ने लिखा है, 'कुरुक्षेत्र के प्रबन्ध की एकता उसके वर्णित विचारों को लेकर है। दरअसल इस पुस्तक में मैं सोचता ही रहा हूँ। भीष्म के सामने पहुँचकर कविता जैसे भूल-सी गई हो। फिर भी, 'कुरुक्षेत्र' न तो दर्शन है ओर न किसी ज्ञानी के प्रौढ़ मस्तिष्क का चमत्कार। यह तो अन्ततः एक साधारण मनुष्य का शंकाकुल हृदय ही है, जो मस्तिष्क के स्तर पर चढ़कर बोल रहा है। दिनकर के इस कथन पर रामविलास शर्मा की टिप्पणी है, यह कहना बड़ा कठिन है कि शंकाकुल हृदय मस्तिष्क पर चढ़कर बोल रहा है या मस्तिष्क ही शंकाकुलहोकर हृदय में खलबली मचाने उतर आया है। पुस्तक पढ़ने से एक बात स्पष्ट जान पड़ती है कि कवि के विचार उलझगए हैं और जो समाधान भीष्म पहले प्रस्तुत करते हैं, उनका अन्तिम समाधान उससे काफी भिन्न है। प्रश्न है कि क्या सचमुच दिनकर के विचार 'कुरुक्षेत्र' में उलझे हुए हैं या आलोचकों ने अपनी धारणाओं के निकष पर उन्हें देखा-परखा है? आगे के अनुच्छेदों में इस प्रश्न पर विचार किया गया है।

हिंसा और अहिंसा तथा युद्ध और शान्ति मानव सभ्यता की शाश्वत समस्याएँ हैं। भारतीय दर्शन और साहित्य में इन समस्याओं से उत्पन्न प्रश्नों पर निरन्तर चिन्तन हुआ है। महावीर-बुद्ध से लेकर आधुनिक युग में महात्मा गांधी तक हिंसा-अहिंसा के प्रश्नों से जूझते रहे हैं। उन्होंने अहिंसा को मानव सभ्यता का उज्ज्वल और अनिवार्य पक्ष माना है। हिंसा-अहिंसा की ही तरह युद्ध और शान्ति के प्रश्न ने भी चिन्तनशील मनुष्य को लगातार उद्वेलित किया है। इस उद्वेलन का ही परिणाम महाभारत जैसा महान् महाकाव्य है। इस उद्वेलन का ही परिणाम आधुनिक युग में रूस के महान लेखक लियो तोल्सतोय की महान रचना 'युद्ध और शान्ति' है। शान्ति मानव जीवन का स्थाई भाव है। अब प्रश्न है कि युद्ध क्यों? यह प्रश्न युद्ध की विनाशलीला को देखने वाले हर संवेदनशील चिन्तक के सामने उपस्थित हुआ है। यही 'क्यों' दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' की रचना का मूल कारण है। महाभारत के युधिष्ठिर के माध्यम से युद्ध की व्यर्थता और विनाशलीला दिनकर के वैचारिक द्वन्द्व का आधार बनकर उपस्थित हुई है।

प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक मानव सभ्यता विकास की अनेक मंज़िलों से गुजरी है। गति के क्षेत्र में बैलगाड़ी से चलकर मानव सुपरसॉनिक विमान तक पहुँचा है। उसने विकास की न जाने कितनी मंजिलों को पार किया है। विकास की इन मंजिलों में आदि मानव और आज के मनुष्य में इतना बड़ा अन्तर उपस्थित कर लिया है कि आदि मनुष्य शायद ही अपने आधुनिक रूप को पहचान सके। लेकिन युद्ध अपने विध्वंसक और वीभत्स रूप में मानवसमाज में सदा बना रहा। युद्ध के कारण लाखों-करोड़ों का खून बहता रहा। उसकी व्यर्थता को मनुष्य समझता रहा। युधिष्ठिर, महावीर, बुद्ध, अशोक, ईसा, तोल्सतोय, गांधी आदि सभी महापुरुषों ने युद्ध का विरोध किया और युद्ध विरोधी दर्शन प्रस्तुत किये। पर, युद्ध रुका नहीं। उसका रूप क्रूर से क्रूरतम होता गया, युद्ध की विनाशलीला और वीभत्स एवं भयानक होती गई, संहार के नए-नए अस्त्र-शस्त्र विकसित हुए। एक तरफ मानव सभ्यता का विकास और दूसरी तरफ उसकी आदिम युद्ध पिपासा। यह सिलसिला रुका क्यों नहीं? मानव जब सभ्य हुआ तो युद्ध विमुख क्यों नहीं हुआ? यह प्रश्न दिनकर के सामने था। इस पागल कर देने वाले प्रश्न से टकराते हुए 'कुरुक्षेत्र' की रचना हुई। दिनकर के शब्दों में, 'युद्ध निन्दित और क्रूर कर्म है, किन्तु उसका

दायित्व किस पर होना चाहिए? उस पर, जो अनीतियों का जाल बिछाकर प्रतिकार को आमन्त्रण देता है? या उस पर जो जाल को छिन्न-भिन्न कर देने के लिए आतुर है? पाण्डवों को निर्वासित करके एक प्रकार की शान्ति की रचना तो दुर्योधन ने भी की थी, तो क्या युधिष्ठिर महाराज को इस शान्ति को भंग नहीं करना चाहिए था? भीष्म और युधिष्ठिर का आलम्बन लेकर मैंने इस पागल कर देने वाले प्रश्न को, प्रायः उसी प्रकार उपस्थित किया है, जैसा मैं उसे समझ सका हूँ। इसलिए, मैं जरा भी दावा नहीं करता कि 'कुरुक्षेत्र' के भीष्म और युधिष्ठिर, ठीक-ठीक महाभारत के ही भीष्म और युधिष्ठिर हैं।'

कुरुक्षेत्र के भीष्म और युधिष्ठिर आलंबन हैं। मुख्य समस्या युद्ध और शान्ति की है। युद्ध क्यों और किसलिए? शान्ति किसकी और किस तरह की? मानव जीवन का लक्ष्य अगर शान्ति है तो फिर युद्ध क्यों? अनीति के प्रतिकार का एकमात्र रास्ता क्या युद्ध ही है? ये प्रश्न 'कुरुक्षेत्र' के युधिष्ठिर के मन में उमड़-घुमड़ रहे हैं-

रक्त से छाने हुए इस राज्य को
वज्र से कैसे सकूँगा भोग मैं?
आदमी के खून में यह है सना
और है इसमें लहू अभिमन्यु का।

महाभारत का युद्ध जीतने के उपरान्त युधिष्ठिर 'विजय' इस छोटे से शब्द को कुरुक्षेत्र में बिछी हुई लाशों से तोल रहे थे। और तब उन्हें अपनी विजय व्यर्थ लग रही थी। इतने जनसंहार के बाद प्राप्त विजय ने युधिष्ठिर को अस्थिर कर दिया था। मृत दुर्योधन उन्हें व्यंग्य-बाण चुभाता दीख रहा था। धर्मराज को तब अपनी जीत व्यर्थ लगने लगी:

यह महाभारत वृथा, निष्फल हुआ
उफ! ज्वलित कितना गरलमय व्यंग्य है?
पाँच ही असहिष्णु नर के द्वेष से
हो गया संहार पूरे देश का।

इस उद्विग्न मनःस्थिति में युधिष्ठिर को जब कुछ न सूझा तो वे शर शय्या पर पड़े, पितामह भीष्म के पास जा पहुँचे। भीषण नरसंहार से उनके भीतर जो उथल-पुथल मची थी, वह भीष्म के सामने भी प्रश्नों की शक्ल में फूट पड़ीं-

हाय, पितामह, हार किसकी हुई है यह?
ध्वंस-अवशेष पर सिर धुनता है कौन?
कौन भस्मराशि में विफल सूख ढूँढ़ता है
लपटों से मुकुट का पट बुनता है कौन?
और बैठ मानव की रक्त सरिता के तीर
नियति के व्यंग्य भरे अर्थ गुनता है कौन?
कौन देखता है शवदाह बन्धु बान्धवों का?
उत्तरा का करुण विलाप सुनता है कौन?

महाभारत के युद्ध में आत्मीय जनों के संहार से, राज्य सत्ता प्राप्त करने की, युधिष्ठिर की आकांक्षा धूल में मिल गई है। भीषण रक्तपात के पश्चात प्राप्त राज-सिंहासन से युधिष्ठिर इतने विरक्त हो गए हैं कि उन्हें भीख माँग कर खाना उचित लगता है। युद्ध की व्यर्थता बार-बार उनके सामने उजागर हो रही है। युधिष्ठिर युद्ध को प्राचीन अभिशाप मानते हैं। उनके मन में प्रश्न उमड़ता-घुमड़ता है कि आखिर मनुष्य इस अभिशाप से मुक्त क्यों नहीं होता? पश्चाताप की अग्नि में जलती हुई युधिष्ठिर की आत्मा रो कर पूछती है-

कृष्ण कहते हैं युद्ध अनल है, किन्तु मेरे
प्राण जलते हैं, पल-पल परिताप से;
लगता मुझे है, क्यों मनुष्य बच पाता नहीं
दह्यमान इस पुराचीन अभिशाप से?

दग्ध हृदय और उद्विग्न मन वाले युधिष्ठिर अपने भीतर की व्यथा को ढोते हुए कभी अकेले में तड़पते हैं और कभी विकल हो पितामह भीष्म के पास दौड़ते हैं। अकेले रोते हुए वे 'महाभारत' के युधिष्ठिर नहीं रह जाते। वे युद्ध विरोधी उन महापुरुषों के प्रतीक बन जाते हैं, जो प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक युद्ध के विरुद्ध, शान्ति के लिए लड़ते रहे हैं। इसलिए 'कुरुक्षेत्र' का प्रारम्भ प्रश्न के साथ होता है: ''वह कौन रोता है वहाँ इतिहास के अध्याय पर।' इतिहास के अध्याय पर रोनेवाला वह व्यक्ति कौन है? यह रोनेवाला व्यक्ति महाभारत के युधिष्ठिर तो हैं ही, दिनकर के अपने शब्दों में यह 'युद्ध' के इतिहास पर रोनेवाला कोई भी व्यक्ति हो सकता है। युधिष्ठिर, बुद्ध, महावीर, अशोक, ईसा, तुलसीदास, गांधी, टॉल्सटॉय, बर्टेंड रसल, रोमां रोलां ये सभी महापुरुष युद्ध विरोधी हुए हैं। ये बड़े नाम हैं। असंख्य साधारण लोग भी

युद्ध के इतिहास पर रोते रहे हैं। यहाँ लक्ष्य कोई एक व्यक्ति नहीं है। जो भी युद्ध विरोधी है, वह यहाँ कर्ता यानी रोने वाला माना जा सकता है।''

निष्कर्ष यह कि युधिष्ठिर के बहाने युद्ध या हिंसा के रास्ते स्वत्व और अधिकार पाने के कर्म पर दिनकर ने प्रारम्भ में प्रश्नचिह्न लगाया है। युद्ध की व्यर्थता का बोध युधिष्ठिर को परेशान करता है। उनके युद्ध विरोधी विचार हिंसा और भीषण नरसंहार के लिए उन्हें धिक्कारते हैं। उनकी अन्तरात्मा उनसे तरह-तरह के सवाल करती है। स्वर्ग से दुर्योधन व्यंग्यपूर्ण हँसी हँसता दीखता है। युधिष्ठिर एक अजीब उदासी और उद्विग्नता की मन:स्थिति में सिर धुनते हैं। इतिहास के पृष्ठों पर रोता हुआ युधिष्ठिर या उन सरीखा कोई भी युद्ध विरोधी इतिहास पुरुष भीषण मानसिक द्वन्द्व में उलझा हुआ दिखाई देता है। इतिहास के पृष्ठ पर युद्ध और शान्ति को चलने वाली सदियों पुरानी वैचारिक बहस को 'कुरुक्षेत्र' में नए सिरे से उठाते हुए दिनकर ने आधुनिक मानव को इस प्रश्न पर सोचने को पुन: विवश किया है।

'कुरुक्षेत्र' का प्रकाशन 1946 में हुआ था। स्पष्ट है कि इसकी रचना कुछ और पहले हुई होगी। 'कुरुक्षेत्र' की रचना पर द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका की छाया न पड़ी हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यद्यपि भारत यूरोप से दूर था। लेकिन अंग्रेजों का उपनिवेश होने और ब्रिटेन के युद्ध में शामिल होने के कारण भारत और भारतीय जनता का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित होना स्वाभाविक था। महायुद्ध के ही कारण दिनकर को युद्ध प्रचार विभाग में काम करना पड़ा और फौज में भर्ती होने के लिए प्रचार साहित्य लिखना पड़ा। दिनकर साहित्य की अध्येता सावित्री सिन्हा ने कुरुक्षेत्र की रचना की पृष्ठभूमि की चर्चा करते हुए लिखा है, ''द्वितीय महायुद्ध में भीषण संहार, हाहाकार और त्रास ने दिनकर को इस विषय पर सोचने को बाध्य किया। अपनी दुर्बलताओं और परिसीमाओं से लड़ने में ही मनुष्य सबसे निरीह होता है। पारिवारिक परिस्थितियों की विषमताओं के दबाव से उन्हें युद्ध प्रचार विभाग में कार्य करना पड़ा। नियति का व्यंग्य देखिए कि जिस युवा कवि की कृतियाँ देश के लिए जेल जाने वाले नवयुवकों की जेबों में रहती थीं, जिसके सशक्त और ओजपूर्ण स्वर जनता में क्रान्ति की लहर उत्पन्न कर रहे थे, वही कवि परिस्थितियों के हाथ का खिलौना बनकर युद्ध प्रचार विभाग में योग देने को अपना गला साफ कर रहा था। 'कुरुक्षेत्र' की रचना ही इस बात का प्रमाण है कि दिनकर का मन उन दिनों कितना द्वन्द्व ग्रस्त रहा होगा। जो भी हो, उन्हीं बाह्य परिस्थितियों और मानसिक संघर्षों के फलस्वरूप हिन्दी में विचारात्मक काव्य की नींव पड़ी और हिन्दी का प्रथम युद्ध काव्य 'कुरुक्षेत्र' लिखा गया।''

उस द्वन्द्व की अभिव्यक्ति युधिष्ठिर के माध्यम से होती है। 'कुरुक्षेत्र' का युद्ध उचित था या अनुचित? यह मूल प्रश्न युधिष्ठिर के सामने है। तरह-तरह के विकल्पों पर विचार करते हुए और अन्तत: महारभारत के युद्ध को व्यर्थ मानते हुए, परिताप से जलते हुए वे शरशैय्या पर लेटे भीष्म के पास जाते हैं। भीष्म के विचार स्पष्ट हैं। यद्यपि वे स्वयं जीवन भर कर्तव्य और आत्मा की पुकार के द्वन्द्व में फँसे रहे हैं। लेकिन अर्जुन के बाणों से कायल होकर वे निर्द्वन्द्व हो चुके हैं। पहले वे युद्ध को मानव समाज का अनिवार्य अंग मानते हैं। जैसे तूफान प्रलय-सा नाद करता हुआ आता है और पेड़ों-पौधों को झकझोरता-उखाड़ता है, पशु-पक्षियों को तबाहकर डालता है, वैसे ही युद्ध भी है। तूफान प्रकृति के प्राण का आवेगमय विस्फोट है। युद्ध कुछ उसी तरह मानव-समाज में राजनीतिक उलझनों से पैदा होता है-

यों ही, नरों में भी विकारों की शिखाएँ आग-सी
एक में मिल एक जलती हैं प्रचण्ड वेग से,
तप्त होता क्षुद्र अर्न्तव्योम पहले व्यक्ति का,
और तब उठता धधक समुदाय का आकाश भी
क्षोभ से, दाहक घृणा से, गरल, ईर्ष्या, द्वेष से।

तूफान से बड़े वृक्ष तो उखड़ते हैं, लेकिन जिसकी जड़ें जमीन में गहरी धँसी हैं, वह उससे भयभीत नहीं होता। उसकी पत्तियों-डालियों को तूफान तोड़ डालता है। शोक और निर्वेद की मन:स्थिति में पेड़ प्रश्न करता है कि प्रकृति तूफान क्यों भेजती हैं? जिस तरह तूफान का आना सहज स्वाभाविक है, उसी तरह इस प्रश्न का उठना भी। यहाँ भीष्म नियतिवादी हैं। उनके विचार किसी गतिशील चिन्तन का परिणाम न होकर नियतिवाद के अधीन हैं। नंद दुलारे वाजपेयी ने ठीक ही कहा है, ''...भीष्म की युद्ध सम्बन्धी यह धारणा बहुत कुछ नियतिवादी और अज्ञेय है। हम इतना

ही जान पाते हैं कि युद्ध प्राकृतिक विकारों का विस्फोट हैं। वे विकार कैसे उत्पन्न होते हैं, उनका स्वरूप क्या है अथवा उनके प्रतिरोध का क्या उपाय है, इसका कोई निर्देश नहीं प्राप्त होता। इसके साथ ही भीष्म कहते हैं कि युद्ध एक संक्रामक रोग है। एक चिनगारी सहसा कितना बड़ा विध्वंस उत्पन्न कर देगी, कहा नहीं जा सकता। युद्ध की ललकार सुनकर प्रतिशोध का भाव गरज उठता है, रक्त खौलने लगता है और तलवार स्वयं हाथ में आ जाती है। स्पष्ट है कि कवि ने युद्ध को एक प्राकृतिक पदार्थ माना है। वह नियति है और अज्ञात समय में बिना कार्य कारण का हवाला दिए फूट पड़ती है। वह रहस्यमय और जड़ है। उसके सम्बन्ध में यह प्रश्न उठता ही नहीं कि वह पुण्य है या पाप। वह पुण्य और पाप से परे हैं।''

लेकिन दिनकर का विचार-प्रवाह यहीं रुकता नहीं। वे युद्ध सम्बन्धी दूसरी वैचारिक भूमियों की भी यात्रा करते हैं। अपने नियतिवादी चिन्तन से आगे भीष्म युधिष्ठिर से भिन्न बात कहते हैं:

युद्ध को, तुम निन्द्य कहते हो मगर
जब तलक हैं उठ रहीं चिनगारिया
भिन्न स्वार्थों के कुलिश-संघर्ष की,
युद्ध तब तक विश्व में अनिवार्य हैं।

भीष्म बताते हैं कि तप, करुणा, क्षमा, विनय, त्याग आदि की बातें व्यक्तिगत हैं। लेकिन जहाँ समुदाय का हित सर्वोपरि होता है, वहाँ व्यक्तिगत भावों को त्यागना पड़ता है। युधिष्ठिर के भीतर जो व्यक्तिगत भाव हैं, वही उन्हें हिला रहे हैं, वही कल्याण भाव कौरवों के नाश पर रो रहे हैं। समुदायगत भावों के तहत तो महाभारत का होना अनिवार्य था। व्यक्ति-धर्म के वशीभूत हो पाण्डवों को वन जाना पड़ा, अपनी स्त्री का चीरहरण देखना पड़ा आदि। जो पांडवों के हितैषी थे, निश्चित रूप से उन्हें उसकी त्याग-क्षमावाली नीति अच्छी नहीं लगी। तप, करुणा, क्षमा, त्याग आदि गुण वैरागी योगियों के धर्म हैं। इस धर्म के सहारे हिंस्र पशुओं का सामना नहीं किया जा सकता। आत्मबल से मनुष्य अपने मनोविकारों से लड़ सकता है, दुराचारियों से संग्राम नहीं जीत सकता-

कौन केवल आत्मबल से जूझकर
जीत सकता देह का संग्राम हैं?
पाशविकता खड्ग जग लेती उठा
आत्मबल का एक वश चलता नहीं।

इसलिए भीष्म युधिष्ठिर की बातों को कायरता की श्रेणी में रखते हैं-

कायरों-सी बात कर मुझको जला मत, आज तक
है रहा आदर्श मेरा वीरता, बलिदान ही
जाति मन्दिर से जलाकर शूरता की आरती
जा रहा हूँ विश्व से चढ़ युद्ध के ही थान पर।

आत्मबल तथा क्षात्र धर्मोचित बतलाने के उपरान्त भीष्म युद्ध के कारणों की चर्चा करते हैं। यहाँ भीष्म नियतिवादी नहीं दीखते। वे स्पष्ट घोषणा करते हैं कि युद्ध का जिम्मेदार वह है जो अन्यायी है। न्याय के लिए युद्ध करना पुण्यकर्म है:

चुराता न्याय जो, रण को बुलाता भी वही है,
युधिष्ठिर! स्वत्व की अन्वेषण पातक नहीं है।
नरक उनके लिए जो पाप को स्वीकारते हैं;
न उनके हेतु जो रण में उसे ललकारते हैं।

भीष्म युद्ध को अन्याय के प्रतिकार का उत्तममार्ग मानते हैं। उनके लिए न्यायार्थ किया जानेवाला युद्ध पुण्य कर्म हैं। एक न्यायप्रिय और शान्तिप्रिय व्यक्ति कभी भी युद्ध नहीं चाहता। लेकिन दुराचारी को शान्ति प्रियता नहीं रोक पाती। महाभारत का युद्ध रोकने के लिए युधिष्ठिर ने सारे प्रयास किए, त्याग-क्षमा सबका परिचय दिया, लेकिन दुर्योधन ने इसे पाण्डवों की कायरता समझा। दुर्जन विनय को हमेशा कायरता समझते हैं। इसी के साथ प्रतिशोध और वैर शोधन के भाव भी युद्ध के प्रचुर कारण हैं इसलिए 'महाभारत नहीं था द्वन्द्व केवल दो घरों का'। युद्ध का एक बड़ा आधार मनुष्य का अहंकार है:

पूजनीय को पूज्य मानने में, जो बाधा-क्रम हैं
वही मनुज का अहंकार है, वही मनुज का भ्रम है।

भीष्म के अनुसार इस अहंकार ने महाभारत को आमंत्रित किया। युधिष्ठिर का उद्विग्न मन भीष्म की बातों से शान्त नहीं होता। भीषण नरसंहार बार-बार युधिष्ठिर के सामने आ जाता है। लोगों की आहें-कराहें और स्त्रियों का विलाप भीष्म के तर्कों पर भारी पड़ता है:

मनु का पुत्र बने पशु-भोजन! मानव का यह अन्त!
भरतभूमि के नर-वीरों की यह दुर्गति, हा-हन्त!

युधिष्ठिर के लिए युद्ध के औचित्य-अनौचित्य का द्वन्द्व इतना बड़ा है कि यदि वे जानते कि इतने बड़े नरसंहार का फल धन और राजपाट है तो द्रौपदी क्या कृष्ण की भी बात नहीं मानते। इसलिए अब तक जो हुआ, सो हुआ। अब वे मन के राग का एक रण ढालेंगे:

यह होगा महारण राग के साथ,
युधिष्ठिर हो विजयी निकलेगा,
नर-संस्कृति की रण छिन्न लता पर,
शान्ति-सुधा-फल दिव्य फलेगा,
कुरुक्षेत्र की धूल नहीं इति पन्थ की
मानव ऊपर और चलेगा,
मनु का यह पुत्र निराश नहीं
नव धर्म प्रदीप अवश्य जलेगा।

भीष्म और युधिष्ठिर के संवाद के बीच 'कुरुक्षेत्र' का षष्ट सर्ग है जो तरह-तरह के प्रश्नों से भरा पड़ा है। यह सर्गकवि का स्वतन्त्र चिन्तन है। प्रबन्ध के बीच मुक्तक से लगनेवाले इस सर्ग में नीति-अनीति, हिंसा-अहिंसा, न्याय-अन्याय आदि के बीच चलने वाले द्वन्द्व की विस्तार से चर्चा है। दुनिया इतनी बदल गई, मनुष्य कंदराओं से निकलकर आकाश में विचरण करने लगा, लेकिन उसकी आदिम पशुता ज्यों-की-त्यों हैं:

अपहरण, शोषण वहीं, कुत्सित वही अभियान,
खोजना चढ़ दूसरों के भस्म पर उत्थान,
शील से सुलझा न सकना आपसी व्यवहार,
दौड़ता रह रह उठा उन्माद की तलवार।

इसलिए कवि भगवान से प्रश्न करता है। समतावादी इस प्रश्न में उसकी आकांक्षा भी निहित हैं:

साम्य की वह रश्मि स्निग्ध, उदार,
कब खिलेगी, कब खिलेगी विश्व में भगवान?
कब सुकोमल ज्योति से अभिसिक्त
हो सरस होंगे जली-सुखी रसा के प्राण?

अन्तिम सर्ग में भीष्म के सुलझे हुए विचार सामने आते हैं। भीष्म के विचार से युद्ध का मूल कारण संसार में असमानता और मानव-मानव के बीच विभेद है-

न्यायोचित सुख सुलभ नहीं
जब तक मानव-मानव को
धैर्य कहाँ धरती पर, तब तक
शान्ति कहाँ इस भव को?
जब तक मनुज मनुज का यह
सुख भाग नहीं सम होगा
शमित न होगा कोलहाल
संघर्ष नहीं कम होगा।

भीष्म मानव सभ्यता के उस काल को याद करते हैं, जब अमीरी-गरीबी, राजा-प्रजा, ऊँच-नीच, धर्म-जाति आदि के आधार पर मानव-मानव में भेद नहीं किया जाता था। प्रकृति की गोद में सभी सुख चैन से थे। फिर भोग और संचय का युग आया और मानव-मानव में विभेद बढ़ता गया। भीष्म युद्ध को अनीति के प्रतिकार का उचित मार्ग मानते हैं और युधिष्ठिर को यह नेक सलाह देते हैं कि वह टूटे हुए समाज को जोड़ने और रोते हुए मनुष्य के आँसू पोछने के काम में जुट जाएँ। यही मनुष्यता की सबसे बड़ी सेवा है:

जिस तप से तुम चाह रहे, पाना केवल निज सुख को
कर सकता है दूर वही तप, अमित नरों के दुख को।

अन्त में भीष्म कहते हैं कि धर्मराज तुम आशा का प्रदीप जलाकर स्नेह बलिदान के पथ पर आगे बढ़ो, घायल मनुष्यता के घाव पर मरहम लगाओ, प्रेम का प्रचार करो और तब एक दिन यह धरती प्रेम के प्रसाद से स्वर्ग बन जाएगी। दुनिया का दुख-दर्द, आध्यात्मिकता शक्ति द्वारा नहीं, मनुष्यता के उन्नयन से दूर होगा। युधिष्ठिर को यही काम करना है,क्योंकि तमाम युद्धों के बावजूद दुनिया का विकास होता गया है। युद्ध अभिशाप है, लेकिन उससे घबराकर पलायनवादी होने की आवश्यकता नहीं है। भीष्म के विचार अत्यन्त आधुनिक है। दिनकर ने प्राचीनता की रक्षा करते हुए आधुनिक युग की समस्याओं को भी बड़ी कुशलता से उठाया है। नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है, ''कुरुक्षेत्र में उन्होंने नवयुग की नवयुवक-जागृति और न्याय और समता के लिए उत्पीड़ितों की क्रान्ति की जो जोरदार आवाज उठाई है, उस सामयिक संदेश का हम स्वागत करते हैं।''

'कुरुक्षेत्र' में युद्ध और शक्ति का प्रश्न तो केन्द्र में है ही, विज्ञान और हृदय का द्वन्द्व भी प्रमुख है। भीष्म के भीतर बुद्धि और हृदय का द्वन्द्व जीवन भर रहा। अन्त समय में उनकी समझ में आया कि उन्हें हृदय की ही बात माननी चाहिए थी। संसार में जो भीषण रक्तपात हैं, उसका प्रमुख कारण दिनकर विज्ञान के विकास के साथ हृदय पक्ष की उपेक्षा को मानते हैं। रामविलास शर्मा इसे दिनकर की असंगति मानते हैं। लेकिन आज विज्ञान का वरदान के साथ-साथ अभिशाप वाला रूप भी हमारे सामने स्पष्ट है। ऐसी स्थिति में दिनकर की बातें अधिक प्रासंगिक लगती है

युद्ध और शान्ति, हिंसा और अहिंसा, पुण्य और पाप तथा बुद्धि और हृदय 'कुरुक्षेत्र' के दो पक्ष हैं। दोनों पक्षों का वैचारिक द्वन्द्व ही इसकी रचनाभूमि का मुख्य आधार है। दिनकर न हिंसावादी हैं न अहिंसावादी। उनकी पाप-पुण्य की परिभाषा भी काल सापेक्ष हैं। उन्होंने न पूरी तरह से मार्क्स का अनुसरण किया है, न पूरी तरह से गांधी का। तोलस्तोय के उपन्यास युद्ध और शान्ति में एक पात्र कहता है, ''जब दुनिया के बुरे लोग एक हो सकते हैं तो अच्छे लोग क्यों नहीं?'' किसलिए? निसन्देह अच्छाई के लिए। कुरुक्षेत्र का भी यही वैचारिक निष्कर्ष है। न्याय प्रेमी लोग की अन्याय के विरुद्ध एकजुटता आवश्यक है। उस एकजुटता की कीमत युद्ध ही क्यों न हो। युद्ध अन्याय के प्रतिकार का धर्म संगत मार्ग है।

आलोचना की पुरानी शब्दावली में कहें तो दिनकर कर्म वीरता को धारण करनेवाले कवि हैं। कर्मवीरता जो अन्याय-अत्याचार के प्रतिकार का मार्ग हैं इसके जरिए मानव समाज में फैली असमानता दूर की जा सकती है और स्थायी शान्ति स्थापित की जा सकती है। 'कुरुक्षेत्र' इसी कर्म-वीरता को प्रतिष्ठित करनेवाला प्रबन्ध है। भीष्म इसी के प्रतीक पुरुष हैं। वे मानते हैं कि शान्ति के लिए समता आवश्यक है:

शान्ति नहीं तब तक जब तक,
सुख भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
नहीं किसी को कम हो।

'शुद्ध कविता की खोज' नामक पुस्तक में दिनकर के विश्व कविता के गहन अध्ययन का परिचय मिलता है। साथ ही भारत की प्राचीन एवं आधुनिक कविता का भी। अपनी इसे विलक्षण पुस्तक के जरिए दिनकर, भारत और विश्व के काव्य जगत में शुद्धकवितावादी आन्दोलन और आग्रह का विरोध करते हैं और अपने भीतर कुछ प्रतिशत कलावादी आग्रहों के बावजूद अपने को कविता की सामाजिकता के पक्ष में खड़ा करते हैं। उनकी हर काव्य कृति के केन्द्र में समाज और मनुष्य है। 'कुरुक्षेत्र' समता और शान्ति की स्थापना कवि-आकांक्षा की विलक्षण कृति है और 'उर्वशी' से अधिक प्रासंगिक भी है।

सी-17 (29-31), छात्र मार्ग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

yk dHkk"kk dk Lo:i

– *अभय कुमार सिंह*

भाषा – भाव की अभिव्यक्ति का एक माध्यम है, और भाव मनुष्य के षड्-विकारों से उत्पन्न होते हैं – लोभ, क्रोध, मोह, घृणा, राग और द्वेष। ये विचार, स्वयं में या अपने साथ दूसरे विकारों से मिलकर, अभिव्यक्ति पाने के लिए जो माध्यम ढूँढ़ते हैं – वही 'भाषा' है।

मनुष्य विभिन्न देश-काल के अंदर भिन्न-भिन्न बोलियों का सहारा लेते आया है। 'बोली' अपने व्याकरण को पाकर 'भाषा' का स्वरूप धारण करती है, जिस कारण उसका स्वरूप मानकीकृत हो जाता है जो अभिव्यक्ति को ठोस रूप प्रदान करती है। यानी, हम जो बोलते हैं – जो हमारे उद्‌गार हैं, वे सही-सही सुननेवाले या पढ़ने वाले के बीच सम्प्रेषित हो जाए – यही भाषा का उद्देश्य है। यदि बोली या भाषा संकुचित है – उसमें शब्दों के अभाव हैं तो उसे बोलनेवालों के पास अभिव्यक्ति का अभाव है। और यदि अभिव्यक्ति को शब्दों का टोटा पड़ जाए, तो मनुष्य शब्द का सहारा छोड़कर हाव-भाव, फिर शारीरिक या फिर लाठी-बंदूक पर उतरता है। इस मायने में, सार्थक भाषा का अभाव – एक बच्चे को सभ्य मानव बनाने में सबसे बड़ा अवरोधक है। 'भाषा' का अभाव टकराव को जन्म देती है।

यदि हमारा देश एक लोकतंत्र है – तो इसका क्या अर्थ है! 'लोकतंत्र' एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था है जो नागरिकों को विचार की अभिव्यक्ति की गारंटी देता है। तब, संविधान -प्रदत्त उस गारंटी का हाल क्या हो – जिसमें विचार व्यक्त करने की आजादी तो है-लेकिन जिस माध्यम में व्यक्त करना है वही क्षीण है, रोग-ग्रस्त है या अपर्याप्त है। दुनिया में आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था, ऐसा अकारण नहीं कि – 3Rs की बात करता है -Reading, Writing & Arithmetic-

देश में उन लोगों पर ध्यान दें जिनकी तमाम उम्र 2000-3000 शब्द-कोष के व्यवहार करते गुजर जाती है। यदि क्षेत्रीय गरीबी या आर्थिक विषमता का आधार ढूँढ़ा जाए, तो सबसे बड़ा कारण भाषायी अभाव या भाषायी दरिद्रता है। जहाँ एक व्यक्ति अपने अन्दर के उन भावों को अभिव्यक्त नहीं कर सकता क्योंकि उसके पास शब्दों का अभाव है।

आर्थिक तंगी से भी ज्यादा छटपटाहट तब होती होगी – जब कोई आदमी अपने अंदर के भाव को व्यक्त नहीं कर पाता होगा। फिर, आधुनिक 21वीं सदी – जो मूलत: शहरों की सभ्यता है- उसमें क्या आज भी वह व्यक्ति असभ्य बना खड़ा नहीं है। फिर, सभ्यता के जो गुण हैं! उनसे वह कितना अनभिज्ञ, कितना दूर खड़ा है। 'निराला' ने सरस्वती वंदना में वस्तुत: अभिव्यक्ति की शक्ति को ही तो मांगा है:-

''नव -गति, नव-लय, ताल-छंद नव,
नवल-कंठ नव, जलद - मन्द्र - रव,
नव -नभ के नव - विहग वृन्द को,
नव पर, नव स्वर दे।
वर दे, वीणावादिनी, वर दे।''

निराला का 'नव-नभ' लोगों के लिए आजाद भारत के अंदर मिलने वाली 'नई कल्पनाओं का आकाश' है तथा 'विहग-वृंद', शब्दों के विहग हैं। आजाद भारत में लोग नई कल्पनाएं कर सकेंगे -उम्मीद के जीवन की, नई सफलताओं की, नई उपलब्धियों की। परन्तु, वे शब्दों के 'विहग' कहाँ हैं? यह प्रश्न आज भी पिछड़े प्रदेशों व क्षेत्रों के बीच शिक्षा की स्थिति पर एक विराट किन्तु, सच्चा प्रश्न चिन्ह् है।

इसी संदर्भ में यह प्रश्न सर्वथा समयोचित है कि देशवासियों के बीच संवाद की सार्थक लोक भाषा का आज भी अभाव क्यों है! क्या यह देश की एकता और अखंडता में बाधक नहीं है।

बहुधा ऐसी भ्रांति है – अहिन्दी भाषा-भाषियों के बीच कि हिन्दी – मातृभाषा वाले लोग, दूसरी मातृभाषाओं पर खुद को थोपने का प्रयास कर रहे हैं – जब कभी भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्वरूप देने पर चर्चा की जाती है। इस प्रकार जब भी – एक राष्ट्रभाषा को लेकर चर्चा होती है, तभी हिन्दी विरोध का स्वर भी उठने लगता है। फलस्वरूप, आज भी इस देश के अंदर कोई एक संपर्क भाषा नहीं है, जिसके जरिए देशवासी विभिन्न क्षेत्रों के बीच अबाध संपर्क कर सकें। इस विकट समस्या के पीछे दो प्रमुख कारण हैं-

(1) जितनी भ्रांति हिन्दी-भाषी क्षेत्र में इस बात को लेकर है कि हिन्दी वस्तुत: राष्ट्रभाषा है, और जो यह नहीं मानते उन्हें यह मानना होगा; उतनी ही भ्रांति अहिन्दी-भाषियों के बीच मातृभाषा के प्रश्न को लेकर है। अहिन्दी -भाषी ऐसा मानते हैं कि इस देश में हिन्दी बहुसंख्य लोगों की मातृभाषा है, और वे अपनी मातृभाषा, उनकी मातृभाषा पर थोपना चाहते हैं। परंतु, यह सही नहीं है। सच तो यह है कि हिन्दी इस देश के अंदर बहुत ही कम लोगों की मातृभाषा है। यदि, हिन्दी-भाषी राज्यों को भी ले, मसलन, बिहार, यू.पी., मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि तो वहाँ भी लोगों की मातृभाषा भोजपुरी, मगही, मैथिली, ब्रजभाषा, बुंदेलखण्डी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी आदि भाषाएं हैं।

'हिन्दी' इन सभी प्रदेशों के लिए 'प्रथम भाषा' है, मातृभाषा नहीं। और यदि, हिन्दी भाषियों के बीच भी 'हिन्दी' 'प्रथम भाषा' है, तो अहिन्दी भाषियों के लिए भी यह 'प्रथम भाषा' क्यों नहीं हो सकती?

प्रश्न, प्रथम भाषा को लेकर है न कि मातृभाषा को लेकर। इस संदर्भ में यदि इस विषय का आकलन करें तो किसी विवाद के लिए कोई जगह शेष नहीं बचती।

(2) हिन्दी को लेकर जो दूसरी गलत अवधारणा है कि हिन्दी कुछ विशिष्ट प्रदेशों की, जहाँ काम-काज हिन्दी में हो रहे हैं -अपनी भाषा है। दरअसल, हिंदी एक बनाई हुई यानी कि कृत्रिम भाषा है। इसका प्रयोग अमीर खुसरो ने 'हिन्दवी' के रूप में किया जो संभवत: आधुनिक हिन्दी का आदि स्वरूप है। तदुपरान्त, भाषा के रूप में हिन्दी का संस्थागत विकास ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रयास के साथ शुरू हुआ जब मिश्र-बंधुओं को हिन्दी अनुवाद के लिए कंपनी में नौकरी दी गई। गांधी जी ने 'हिन्दी' के 'हिन्दुस्तानी' स्वरूप को जन आंदोलन का प्रमुख भाषा बनाया।

यदि हिन्दी को 'कृत्रिम' भाषा कहा जाए तो इसका मतलब सिर्फ इतना है कि आधुनिक हिन्दी वस्तुत: 'खड़ी बोली' का मानकीकृत रूप है। वही 'खड़ी बोली' जो कुरूक्षेत्र व उसके आस-पास बोली जाने वाली एक बोली रही है, और जो संस्कृत से उद्‌भूत उन सत्रह (17) देशी-बोलियों के समूह वाली बोलियों में एक है।

हिन्दी और उर्दू वाक्य विन्यास में समान हैं। सिर्फ शब्दों के स्रोत जहाँ उर्दू में अरबी और फारसी है, वहीं हिन्दी ज्यादातर तत्सम और तद्भव शब्दों को धारित किए हुए है। परन्तु, अरबी और फारसी के, इस देश के अंदर लंबे अंतराल तक, राज-काज की भाषा के रूप में व्यवहृत होने के कारण, हिन्दी अनेक अरबी और फारसी शब्दों का संवहन करती है। यदि हिन्दी विरोध इस आधार पर है कि बहुसंख्यकों की मातृभाषा दूसरे भाषायी समुदायों पर नहीं थोपी जा सकती, तो यह पूरे तौर पर तथ्यहीन है, क्योंकि, हिन्दी भाषी राज्यों के अंदर भी हिन्दी सीखनी पड़ती है। यह खुद-ब-खुद नहीं आती, क्योंकि लोगों की मातृभाषा हिन्दी के आधुनिक स्वरूप से इतर है। और, यदि इसे सीखनी ही है, तो फिर अहिन्दी भाषी क्यों नहीं सीख सकते। लोकभाषा के विकास में जो भ्रमित अवधारणाएँ हैं, वे ही सबसे बड़े बाधक हैं। इसे समन्वय व आपसी समझ से दूर किया जा सकता है ताकि लोग विभ्रम से बाहर निकलें और एक सार्थक प्रयास करें कि अबाध आवागमन, रोजगार आदि के लिए देशवासियों को अभिव्यक्ति का एक व्यावहारिक माध्यम मिल सके।

अगला प्रश्न यह है कि क्या आज की हिन्दी एक समर्थ भाषा है?

इसका उत्तर भी सकारात्मक है क्योंकि हिन्दी देश के दो महत्वपूर्ण भाषायी किनारों के बीच से प्रवाहित होती है। यदि एक किनारा संस्कृत और उससे अद्‌भूत 17 देशी-बोलियों का समूह है, जो तत्सम्, तद्‌भव और देशज शब्दों का भंडार प्रदान करती है, तो दूसरा किनारा उर्दू का है, जो अरबी, फारसी और विदेशज शब्दों का भंडार-स्तम्भ है। तब यह कहना दंभ भरने जैसा नहीं होगा कि हिन्दी न सिर्फ एक विस्तृत भू-भाग से जुड़ी हुई बल्कि, एक विशाल काल-खंड से भी जुड़ी हुई भाषा है। यदि देश और काल की इस विराटता को धारण किए यह भाषा प्रयोग में है तो इसकी समर्थता पर प्रश्न-चिन्ह लगाना एक नादानी-भरी बात है। हिन्दी न सिर्फ भारतीय उप महाद्वीप में बल्कि असंख्य लोगों व अन्यत्र देशों में भी बोली या समझी जाती है। इतना बड़ा फलक, भारत के अंदर बोली जाने वाली और किसी भी भारतीय भाषाओं के पास नहीं है।

एक और प्रश्न यह भी उठाया जाता रहा है कि हिन्दी के साथ दक्षिण भारत की भाषाएं जुड़ी हुई नहीं जान पड़ती परन्तु, यह सत्य है कि शनै: शनै: दक्षिण में भी हिन्दी का विस्तार हुआ है। दक्षिण की भाषाओं से जुड़ाव का एक कारण, दोनों ही जगह, संस्कृत शब्दावली का व्यवहृत होना है।

अंतर वाक्य-विन्यास और लिपि के कारण बढ़ जाता है इसके लिए हिन्दी को पूर्णतया एक समेकित भाषा बनाने हेतु दक्षिण की, व अन्य क्षेत्रों की भाषाओं से अर्थपूर्ण और सहज शब्द निकालकर एक प्रयोग-योग्य शब्दावली बनाई जाए। इससे हिन्दी की सम्प्रेषणियता तो बढ़ेगी ही साथ में अहिन्दी भाषाओं के साथ भी दूरी कम होगी। इस प्रयास में फिल्म, विज्ञापन, समाचार-पत्र, टेलीविजन, क्षेत्रीय भाषायी संस्थान, क्षेत्रीय भाषाओं के लेखक आदि समूह को एक वृहत्तर स्टेक होल्डर (भागीदार) के रूप में जोड़ना समयोचित होगा।

इस सामासिक प्रयास से उद्‌भूत जो भाषा का स्तर होगा उसमें भी सामासिकता समाहित होगी और उसकी पहचान भी सब लोगों के बीच बन सकेगी।

इसे एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय मुद्दा बनाया जाए और इस विचार को गांव-गली, शहर-कस्बे, खेत-खलिहान, नुक्कड़-चौराहे तक फैलाया जाए। उम्मीद है इस दिशा में जो बहस निकलेगी वह आधुनिक हिन्दी के एक सार्थक स्वरूप को नवीकरण करने में सहायक होगी।

लोकभाषा के महत्व को राष्ट्रीय अस्मिता के रूप में पहचान मिले, उसके प्रति वही भाव और सम्मान हो जो तिरंगे और राष्ट्र गान के लिए हमारे मन में है।

संपर्क:
आयकर आयुक्त, कोच्ची

e j ijd fnudj th

- पद्‌मा सचदेव

दिनकर जी,

एक दिन मैं उनसे मिलने गई तो बड़ी प्रसन्न मुद्रा में थे। जैसे अभी-अभी कविता लिखकर उठे हों। बहुत सहजता से अपने हाथ में जैसे तंबाकू मल रहे हों। कहने लगे अरे! आजकल इच्छा होती है तुम्हारे सरदार की तरह दाढ़ी बढ़ा लें, एक वट-वृक्ष से पीठ लगाकर बैठे रहें दो चार ठो चेला हो। और चिन्तामुक्त जीवन बिताएँ।

चिन्तामुक्त जीवन की कल्पना से बेहद सुखी थे। इतने वर्ष मन की कल्पना की दुनिया को कलम से उकेरते गृहस्थी ढो रहे थे। कभी-कभी हंसकर कहते-

पेट मसरुफ़ है क्लर्की में, दिल है इरान और टर्की में

फिर ज़ोर से हँस कर कहते ग्यारह लड़कियों की शादी कर चुके हैं। जब मैं पहली बार उनके घर गई थी तो मैंने एक नवजात शिशु के रोने की आवाज़ सुनी थी। वह उनकी छोटी पोती थी। उसका नाम उन्होंने पद्‌मा रखा और मुझे कहने लगे तुम्हारी तरह गोरी भले न हो। पर तुम्हारी तरह कवयित्री हो।

पीले रंग से उन्हें बहुत प्यार था। एक बार उनकी बहु ने मुझे कहा अरविन्द के बाबा मद्रास गये थे पीले रंग की ग्यारह साड़ियाँ ले आये हैं इनका क्या करूं?

मैंने कहा भाभी दो-दो बिटियों को दीजिए बाकी सुसराल में उसकी दूसरी देवरानियों, जेठनियों, ननदों को दे दीजिये। मैंने बाद में दिनकर जी से कहा आप तो ग्यारह ही पीली साड़ियाँ ले आये। उस समय मौज में थे कहने लगे पीला रंग हर सांवली स्त्री पर सजता है। फिर उनका ठहाका। पुरानी दिल्ली जलेबियाँ खाने जा रहे थे। मुझे रास्ते में करोल बाग छोड़ना था, जलेबियों के स्वाद में भूल गये। खूब जलेबी खा ली तो उन्हें ध्यान आया होगा मैं पीछे बैठी हूँ, बोले क्या तुम जलेबी खाओगी। मैंने कहा जरूर खाउंगी, आधी जलेबी दे दी। फिर उनका ठहाका जिससे कमरे में सूरज उतर आता था। इतने महान लेखक कभी बिलकुल बच्चा हो जाते थे।

जो अंत तक अपने भीतर बच्चा बचा कर रखता है उस मनुष्य के क्या कहने।

संपर्क: बी-242, चितरंजन पार्क, नई दिल्ली

vk;&lekt

- रामधारी सिंह 'दिनकर'

स्वाभिमान का उदय

सत्यार्थ-प्रकाश के एकादश समुल्लास में स्वामी दयानन्द ने ब्राह्म-समाज और प्रार्थना-समाज के विषय में निम्नलिखित बातें लिखी हैं–

"जो कुछ ब्राह्म-समाज और प्रार्थना-समाजियों ने ईसाई मत में मिलने से थोड़े मनुष्यों को बचाये और कुछ-कुछ पाषाणादि मूर्त्ति-पूजा को हटाया, अन्य जालग्रन्थों के फन्दों से भी बचाये इत्यादि अच्छी बातें हैं। परन्तु, इन लोगों में स्वेदश-भक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयों के आचरण बहुत-से लिये हैं। खान-पान, विवाहादि के नियम भी बदल दिये हैं। अपने देश की प्रशंसा और पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही, उसके बदले पेट भर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अँगरेजों की प्रशंसा भर पेट करते हैं। ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते। प्रत्युत, ऐसा कहते हैं कि बिना अँगरेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई विद्वान् नहीं हुआ। आर्यावर्त्ती लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं। वेदादिकों की प्रतिष्ठा तो दूर रही, परन्तु, निन्दा करने से भी पृथक् नहीं रहते, ब्राह्म-समाज के उद्देश्य के पुस्तक में साधुओं की संख्या में ईसा, मूसा, मुहम्मद, नानक और चैतन्य लिखे हैं। किसी ऋषि-महर्षि का नाम भी नहीं लिखा।"

केशवचन्द्र और रानाडे की तुलना में दयानन्द वैसे ही दीखते हैं, जैसे गोखले की तुलना में तिलक। जैसे राजनीति के क्षेत्र में हमारी राष्ट्रीयता का सामरिक तेज, पहले-पहल, तिलक में प्रत्यक्ष हुआ, वैसे ही संस्कृति के क्षेत्र में भारत का आत्माभिमान स्वामी दयानन्द में निखरा। ब्राह्म-समाज और प्रार्थना-समाज के नेता अपने धर्म और समाज में सुधार तो ला रहे थे, किन्तु उन्हें बराबर यह खेद सता रहा था कि हम जो कुछ कर रहे हें, वह विदेश की नकल है। अपनी हीनता और विदेशियों की श्रेष्ठता के ज्ञान से उनकी आत्मा, कहीं-न-कहीं, दबी हुई थी। अतएव, कार्य तो, प्रायः उनके भी वैसे ही रहे, जैसे स्वामी दयानन्द के, किन्तु आत्महीनता के भाव से अवगत रहने के कारण वे दर्प से नहीं बोल सके। यह दर्प स्वामी दयानन्द में चमका। रूढ़ियों और गतानुगतिकता में फँसकर अपना विनाश करने के कारण उन्होंने भारतवासियों की कड़ी निन्दा की और उनसे कहा कि तुम्हारा धर्म पौराणिक संस्कारों की धूल में छिप गया

है। इन संस्कारों की गंदी पत्तों को तोड़ फेंको। तुम्हारा सच्चा धर्म वैदिक धर्म है, जिस पर आरूढ़ होने से तुम फिर से विश्व-विजयी हो सकते हो। किन्तु, इससे भी कड़ी फटकार उन्होंने ईसाइयों पर और मुसलमानों पर भेजी, जो दिन-दिहाड़े हिन्दुत्व की निन्दा करते फिरते थे। ईसाई और मुस्लिम पुराणों में घुस कर उन्होंने इन धर्मों में भी वैसे ही दोष दिखला दिये जिनके कारण ईसाई और मुसलमान हिन्दुत्व की निन्दा करते थे। इससे दो बातें निकली। एक तो यह कि अपनी निन्दा सुनकर घबरायी हुई हिन्दू-जनता को यह जान कर कुछ सन्तोष हुआ कि पौराणिकता के मामले में ईसाइयत और इस्लाम भी हिन्दुत्व से अच्छे नहीं हैं। दूसरी यह कि हिन्दुओं का ध्यान अपने धर्म के मूलरूप की ओर आकृष्ट हुआ एवं वे अपनी प्राचीन परम्परा के लिये गौरव और अनुभव करने लगे।

आक्रामकता की ओर

राममोहन और रानाडे ने हिन्दुत्व के पहले मोर्चे पर लड़ाई लड़ी थी जो रक्षा या बचाव का मार्चा था। स्वामी दयानन्द ने आक्रामकता का थोड़ा-बहुत श्रीगणेश कर दिया, क्योंकि वास्तविक रक्षा का उपाय तो आक्रमण की ही नीति है। सत्यार्थ-प्रकाश में जहाँ हिन्दुत्व के वैदिक रूप का गहन आख्यान है, वहाँ उसमें ईसाइत और इस्लाम की आलोचना पर भी अलग-अलग दो समुल्लास हैं। अब तक हिन्दुत्व की निन्दा करने वाले लोग निश्चिन्त थे कि हिन्दू अपना सुधार भले करता हो, किन्तु, बदले में हमारी निन्दा करने का उसे साहस ही नहीं होगा। किन्तु, इस मेधावी एवं योद्धा संन्यासी ने उनकी आशा पर पानी फेर दिया। यही नहीं, प्रत्युत, जो बात राममोहन, केशवचन्द्र और रानाडे के ध्यान में भी नहीं आयी थी, उस बात को लेकर स्वामी दयानन्द के शिष्य आगे बढ़े और उन्होंने घोषणा कि कि धर्मच्चुत हिन्दू प्रत्येक अवस्था मे अपने धर्म में वापस आ सकता है एवं अहिन्दू भी यदि चाहें तो हिन्दू-धर्म में प्रवेश पा सकते हैं। यह केवल सुधार की वाणी नहीं थी, जाग्रत हिन्दुत्व का समर-नाद था। और, सत्य ही, रणारूढ़ हिन्दुत्व के जैसे निर्भीक नेता स्वामी दयानन्द हुए, वैसा और कोई नहीं हुआ।

इतिहास का क्रम कुछ ऐसा बना कि स्वामी दयानन्द की गिनती, महाराणा प्रताप, शिवाजी और गुरु गोविन्द की सरणी में की जाने लगी। किन्तु स्वामी दयानन्द मुसलमानों के विरोधी नहीं थे। स्वामीजी का जब स्वर्गवास हुआ, तब सुप्रसिद्ध मुस्लिम नेता सर सैयद अहमद खाँ ने जो समवेदना और शोक प्रकट किया, उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि मुस्लिम जनता के बीच भी स्वामीजी का यथेष्ट आदर था। स्वामीजी के बाद आर्य-समाज और मुस्लिम-सम्प्रदाय के बीच का सम्बन्ध अच्छा नहीं रहा, यह सत्य है; किन्तु, स्वामीजी के जीवन-काल में ऐसी बात नहीं थी।

सच पूछिये तो स्वामीजी केवल इस्लाम के ही आलोचक नहीं थे, वे ईसाइयत और हिन्दुत्व के भी अत्यन्त कड़े आलोचक हुए हैं। सत्यार्थ-प्रकाश के त्रयोदश समुल्लास में ईसाई मत की आलोचना है और चतुर्दश समुल्लास में इस्लाम की। किन्तु, ग्यारहवें और बारहवें समुल्लासों में तो केवल हिन्दुत्व के ही विभिन्न अंगों की बखिया उधेड़ी गयी है और कबीर, दादू, नानक, बुद्ध तथा चार्वाक एवं जैनों और हिन्दुओं के अनेक पूज्य पौराणिक देवताओं में से एक भी बेदाग नहीं छूटा है। वल्लभाचार्य और कबीर पर तो स्वामीजी इतना बरसे हैं कि उनकी आलोचना पढ़ कर सहनशील लोगों की भी धीरता छूट जाती है। किन्तु, यह सब अवश्यम्भावी था। यूरोप के बुद्धिवाद ने भारतवर्ष को इस प्रकार झकझोर डाला था कि हिन्दुत्व के बुद्धि-सम्मत रूप को आगे लाये बिना कोई भी सुधारक भारतीय संस्कृति की रक्षा नहीं कर सकता था। स्वामीजी ने बुद्धिवाद की कसौटी बनायी और उसे हिन्दुत्व, इस्लाम और ईसाइयत पर निश्छल भाव से लागू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि पौराणिक हिन्दुत्व तो इस कसौटी पर खंड-खंड हो ही गया, इस्लाम और ईसाइयत की भी सैकड़ों कमजोरियाँ लोगों के सामने आ गयी।

किसी का भी पक्षपात नहीं

चूँकि ईसाइयत और इस्लाम हिन्दुत्व पर आक्रमण कर रहे थे इसलिए, हिन्दुत्व की ओर से बोलने वाला प्रत्येक व्यक्ति ईसाइयत या इस्लाम अथवा दोनों का द्रोही समझ लिया गया। किन्तु इस प्रसंग से अलग हटने पर स्वामी दयानन्द विश्व-मानवता के नेता दीखते हैं। उनका उद्देश्य सभी मनुष्यों को उस दिशा में ले जाना था, जिसे वे सत्य की दिशा समझते थे। उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाश की भूमिका में

स्वयं लिखा है कि "जो जो सब मतों में सत्य बातें हैं, वे वे सब में अविरुद्ध होने से उनका स्वीकार करके जो जो मत-मतान्तरों में मिथ्या बातें हैं, उन उन का खंडन किया है। इसमें यह भी अभिप्राय रखा है कि जब मत-मतान्तरों की गुप्त बातें प्रकट बुरी बातों का प्रकाश कर विद्वान्-अविद्वान् सब साधारण मनुष्यों के सामने रखा है, जिससे सब से सब का विचार होकर परस्पर प्रेमी हो के एक सत्य मतस्थ होवें। यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मत-मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न करके यथातथ्य प्रकाश करता हूँ, वैसे ही, दूसरे देशस्थ या मतोन्नति वालों के साथ भी बर्त्तता हूँ। जैसे स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में बर्त्तता हूँ वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों के भी बर्त्तना योग्य है। क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता, तो जैसे आजकल के स्वमत की स्तुति, मंडन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा, हानि और बन्द करने में तत्पर होते हैं, वैसे मैं भी होता, परन्तु, ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं।" अन्यत्र चौदहवें समुल्लास के अन्त में भी स्वामीजी ने कहा है कि "मेरा कोई नवीन कल्पना व मत-मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है। किन्तु, जो सत्य है, उसे मानना-मनवाना और जो असत्य है, उसे छोड़ना-छुड़वाना मुझको अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यवर्त्त के प्रचलित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता। किन्तु, मैं आर्यावर्त्त वा अन्य देशों में जो अधर्म-युक्त चाल-चलन हैं, उनको स्वीकार नहीं करता और जो धर्मयुक्त बातें हैं, उनका त्याग नहीं करता, न करना चाहता हूँ क्योंकि ऐसा करना मनुष्य धर्म के विरुद्ध है।"

सुधार नहीं, क्रान्ति

उन्नीसवीं सदी के हिन्दू-नवोत्थान के इतिहास का पृष्ठ-पृष्ठ बतलाता है कि जब यूरोपवाले भारतवर्ष में आये, तब यहाँ के धर्म और संस्कृति पर रूढ़ि की पर्त्ते जमी हुई थी एवं यूरोप के मुकाबले में उठने के लिए एक आवश्यक हो गया था कि ये पर्त्ते एकदम उखाड़ फेंकी जायँ और हिन्दुत्व का वह रूप प्रकट किया जाय जो निर्मल और बुद्धिगम्य हो। स्वामीजी के मत में यह हिन्दुत्व वैदिक हिन्दुत्व ही हो सकता था। किन्तु, यह हिन्दुत्व पौराणिक कल्पनाओं के नीचे दबा हुआ था। उस पर अनेक स्मृतियों की धूल जम गयी थी एवं वेद के बाद के सहस्त्रों वर्षों में हिन्दुओं ने जो रूढ़ियाँ और अन्ध-विश्वास अर्जित किये थे उनके दूहों के नीचे यह धर्म दबा पड़ा था। राममोहन राय, रानाडे, केशवचन्द्र और तिलक से भिन्न स्वामी दयानन्द की विशेषता यह रही कि उन्होंने धीरे-धीरे पपड़ियाँ तोड़ने का काम न करके, उन्हें एक ही चोट से साफ कर देने का निश्चय किया। *परिवर्तन जब धीरे-धीरे आता है, तब सुधार कहलाता है। किन्तु, वही जब तीव्र वेग से पहुँच जाता है, तब उसे क्रान्ति कहते हैं।* दयानन्द के अन्य समकालीन सुधारक केवल सुधारक मात्र थे, किन्तु, दयानन्द क्रान्ति के वेग से आये और उन्होंने निश्छल भाव से यह घोषणा कर दी कि हिन्दू-धर्म-ग्रंथों में केवल वेद ही मान्य हैं, अन्य शास्त्रों और पुराणों की बातें बुद्धि की कसौटी पर कसे बिना मानी नहीं जानी चाहिये। छह शास्त्रों और अठारह पुराणों को उन्होंने एक ही झटके में साफ कर दिया। वेदों में मूर्त्तिपूजा, अवतारवाद, तीर्थों और अनेक पौराणिक अनुष्ठानों का समर्थन नहीं था, अतएव, स्वामीजी ने इन सारे कृत्यों और विश्वासों को गलत घोषित किया।

वेद को छोड़कर कोई अन्य धर्म-ग्रन्थ प्रमाण नहीं है, इस सत्य का प्रचार करने के लिए स्वामीजी ने सारे देश का दौरा करना आरम्भ किया और जहाँ-जहाँ वे गये, प्राचीन परम्परा के पंडित और विद्वान उनसे हार मानते गये। संस्कृत भाषा का उन्हें अगाध ज्ञान था। संस्कृत में वे धारावाहिक रूप से बोलते थे। साथ ही, वे प्रचंड तार्किक थे। उन्होंने ईसाई और मुस्लिम धर्म-ग्रंथों का भी भलीभाँति मन्थन किया था। अतएव, अकेले ही, उन्होंने तीन-तीन मोर्चों पर संघर्ष आरम्भ कर दिया। दो मोर्चे तो ईसाइयत और इस्लाम के थे, किन्तु तीसरा मोर्चा सनातन धर्मी हिन्दुओं का था, जिनसे जूझने में स्वामीजी को अनेक अपमान, कुत्सा, कलंक और कष्ट झेलने पड़े। उनके प्रचंड शत्रु ईसाई और मुसलमान नहीं, सनातनी हिन्दू ही निकले और, कहते हैं, अन्त में इन्हीं हिन्दुओं के षड्यंत्र से उनका प्राणान्त भी हुआ। दयाननद ने बुद्धिवाद की जो मशाल जलायी थी, उनका कोई जवाब नहीं था। वे जो कुछ कह रहे थे, उनका उत्तर न तो मुसलमान दे सकते थे, न ईसाई, न पुराणों पर पलने वाले हिन्दू पंडित और विद्वान। हिन्दू-नवोत्थान अब पूरे प्रकाश में आ गया था और अनेक समझदार लोग, मन-ही-मन, यह अनुभव करने लगे थे कि, सच ही, पौराणिक धर्म में कोई सार नहीं है।

आर्य-समाज की स्थापना

सन् 1872 ई॰ में स्वामीजी कलकत्ते पधारे। वहाँ देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशवचन्द्र सेन ने उनका बड़ा सत्कार किया। ब्राह्मसमाजियों से उनका विचार-विमर्श भी हुआ, किन्तु, ईसाइयत से प्रभावित ब्राह्म-समाजी विद्वान् पुर्नजन्म और वेद की प्रामाणिकता के विषय में स्वामीजी से एकमत नहीं हो सके। कहते हैं कलकत्ते में ही केशवचन्द्र सेन ने स्वामीजी को यह सलाह दी कि यदि आप संस्कृत छोड़ कर हिन्दी में बोलना आरम्भ करें तो देश का असीम उपकार हो सकता है। तभी से स्वामीजी के व्याख्यानों की भाषा हिन्दी हो गयी और हिंदी-प्रान्तों में उन्हें अगणित अनुयायी मिलने लगे। कलकत्ते से स्वामीजी बम्बई पधारे और वहीं 10 अप्रैल सन् 1875 ई॰ को उन्होंने आर्य-समाज की स्थापना की। बम्बई में उनके साथ प्रार्थना समाजवालों ने भी विचार-विमर्श किया। किन्तु, यह समाज तो ब्राह्म-समाज का ही बम्बई-संस्करण था। अतएव, स्वामीजी से इस समाज के लोग भी एकमत नहीं हो सके।

बम्बई से लौटकर स्वामीजी दिल्ली आये। वहाँ उन्होंने सत्यानुसन्धान के लिए ईसाई, मुसलमान और हिन्दू पंडितों की एक सभा बुलायी। किन्तु, दो दिनों के विचार-विमर्श के बाद भी लोग किसी निष्कर्ष पर नहीं आ सके। दिल्ली से स्वामीजी पंजाब गये। पंजाब में उनके प्रति बहुत उत्साह जाग्रत हुआ और सारे प्रान्त में आर्य-समाज की शाखाएँ खुलने लगीं। तभी से पंजाब आर्यसमाजियों का प्रधान गढ़ रहा है।

थियोसोफ़ी और स्वामी दयानन्द

जब थियोसोफ्सिट लोग भारत आये, तब थोड़े दिन उन लोगों ने भी आर्य-समाज से मिलकर काम किया। किन्तु थियोसोफिस्टों की भी बहुत-सी बातें स्वामीजी के सिद्धान्तों के विपरीत पड़ती थीं। अतएव, वे लोग भी आर्य-समाज से अलग हो गये। किन्तु, अलग होने पर भी स्वामीजी पर थियोसोफिस्टों की भक्ति ज्यों-की-त्यों बनी रही। स्वामीजी के देहावसान के बाद मादाम ब्लेवास्की ने लिखा था कि "जन-समूह के उबले हुए क्रोध के सामने कोई संगमर्मर की मूर्त्ति की स्वामीजी से अधिक अडिग नहीं हो सकती थी। एक बार हमने उन्हें काम करते देखा था। उन्होंने अपने सभी विश्वासी अनुयायियों को यह कह कर अलग हटा दिया कि तुम्हें हमारी रक्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। भीड़ के सामने वे अकेले ही खड़े हो गये। लोग उतावले हो रहे थे, क्रुद्ध सिंह के समान वे स्वामीजी पर टूट पड़ने को तैयार थे। किन्तु, स्वामीजी की धीरता, ज्यों-की-त्यों, बनी रही। ... यह बिल्कुल सही बात है कि शंकराचार्य के बाद से भारत में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जो स्वामी जी से बड़ा संस्कृतज्ञ, उनसे बड़ा दार्शनिक, उनसे अधिक तेजस्वी वक्ता और कुरीतियों पर टूट पड़ने में उनसे अधिक निर्भीक रहा हो।" स्वामीजी की मृत्यु के बाद थियोसोफिस्ट अखबार ने उनकी प्रसंशा करते हुए लिखा था कि "उन्होंने जर्जर हिन्दुत्व के गतिहीन ढूह पर भारी बम का प्रहार किया और अपने भाषणों से लोगों के हृदयों में ऋषियों और वेदों के लिए अपरिमित उत्साह की आग जला दी। सारे भारतवर्ष में उनके समान हिन्दी और संस्कृत का वक्ता दूसरा कोई और नहीं था।"

आर्य-समाज की विशेषता

कहा जाता है कि जैसे सिक्ख-धर्म सनातन-धर्म का अरबी अनुवाद है, वैसे ही, आर्य-समाज भी इस्लाम का संस्कृत-टीका है। सिक्ख-धर्म के विषय में यह उक्ति कुछ दूर तक सही समझी जा सकती है, किन्तु, आर्य-समाज के विषय में यह कहाँ तक सत्य है, यह बताना कठिन है। स्वामीजी ने ईश्वर, जीव और प्रकृति, तीनों को अनादि माना है, किन्तु, यह तो इस्लाम से अधिक भारतीय योग-दर्शन का मत है। भिन्नता यह है कि स्वामीजी यह नहीं मानते कि भगवान पापियों के पाप को क्षमा करते हैं। बल्कि, भगवान की कृपा के सहारे पाप करने की बात के लिए उन्होंने इस्लाम और ईसाइयत की बार-बार आलोचना की है। हाँ, जिन बुराइयों के कारण हिन्दू-धर्म का ह्रास हो रहा था तथा अन्य धर्मों के लोग जिन दुर्बलताओं का लाभ उठा कर हिन्दुओं को ईसाई बना रहे थे, उन बुराइयों को स्वामजी ने अवश्य दूर किया, जिससे हिन्दुओं के सामाजिक संगठन में वही दृढ़ता आ गयी जो इस्लाम में थी। स्वामीजी ने छुआछूत के विचार को अवैदिक बताया और उनके समाज ने सहस्त्रों अन्त्यजों को याज्ञोपवीत देकर उन्हें हिन्दुत्व के भीतर आदर का स्थान दिया। आर्य-समाज ने नारियों की मर्यादा में वृद्धि की एवं उनकी शिक्षा-संस्कृति का प्रचार करते हुए विधवा-विवाह का भी प्रचलन

किया। कन्या-शिक्षा और ब्रह्मचर्य का आर्य-समाज ने इतना अधिक प्रचार किया कि हिन्दी-प्रान्तों में साहित्य के भीतर एक प्रकार की पवितावादी भावना भर गयी और हिन्दी के कवि कामिनी-नारी की कल्पना मात्र से घबराने लगे। पुरुष शिक्षित और स्वस्थ हों, नारियाँ शिक्षिता और सबला हों, लोग संस्कृत पढ़ें और हवन करें, कोई भी हिन्दू-मूर्त्ति-पूजा का नाम न ले, न पुरोहितों, देवताओं और पंडों के फेर में पड़े, ये उपदेश उन सभी प्रान्तों में कोई पचास साल तक गूँजते रहे, जहाँ आर्य-समाज का थोड़ा-बहुत भी प्रचार था।

यह विस्मय की बात है कि स्वामीजी ने संहिताओं को तो प्रमाण माना, किन्तु, उपनिषदों पर वही श्रद्धा नहीं दिखायी। वेद से उनका अभिप्राय केवल "चारों वेद (विद्या-धर्म-युक्त, ईश्वरप्रणीत संहिता, मंत्र-भाग) और चारों वेदों के ब्राह्मण, छह अंग, छह उपांग, चार उपवेद और 1127 वेदों की शाखा से है। इसी प्रकार, युग-युग में पूजित गीता को उन्होंने कोई महत्व नहीं दिया और कृष्ण, राम आदि को तो परम पुरुष माना ही नहीं। वर्णाश्रम का आधार उन्होंने गुण-कर्म को माना। उन्होंने 'देव' का अर्थ विद्वान, 'असुर' का अविद्वान, 'राक्षस' का पापी और 'पिशाच' का अनाचारी माना। पुरुषार्थ को उन्होंने प्रारब्ध से बड़ा बताया तथा सुख-भोग को स्वर्ग तथा दुःख-भोग को नरक कहा। यह हिन्दू-धर्म की बुद्धिवादी टीका थी। यह विज्ञान की कसौटी पर चढ़े हुए हिन्दुत्व का निखार था।

किन्तु, स्वामीजी ने भी देश में एक नूतन अन्ध-विश्वास को जन्म दिया। उनके पूर्व भी वेद हिन्दुओं के पूज्य ग्रन्थ थे और आज भी वे पूज्य हैं। किन्तु, पूज्य होने के मानी यह तो नहीं हैं कि वेद में त्रिकाल का ज्ञान समाहित है। स्वामीजी ने कहा है कि वेद हिन्दुओं के पूज्य ग्रंथ हैं और आज भी वे पूज्य हैं। किन्तु, पूज्य होने के मानी यह तो नहीं हैं कि वेद में त्रिकाल का ज्ञान समाहित है। स्वामीजी ने कहा है कि वेद में केवल धर्म की बातें नहीं है, उसमें विज्ञान को भी सारी बातें प्रच्छन्न हैं। पुरणों, शास्त्रों और स्मृतियों के पाश से मुक्त करके जनता को वेदों की ओर ले जाने का यह ढंग प्रशंसनीय अवश्य था, किन्तु वेदों को सभी ज्ञानों का कोष मान लेने से लोगों के ज्ञानोन्मेष में बाधा भी पड़ी। आश्चर्य की बात है कि श्री अरविन्द ने स्वामी दयानन्द का समर्थन ही नहीं किया है, प्रत्युत, यह भी शिकायत की है कि स्वामीजी ने वेदों के महत्व को घटाकर ही कहा है।

आर्यवाद का एक दुष्परिणाम

उन्नीसवीं सदी के नवोत्थान से एक और बात निकली, जिसका कुफल देश को आज भी भोगना पड़ रहा है। जब इस्लाम और ईसाइयत से हिन्दुत्व संघर्ष कर रहा था, उस समय नेताओं, सुधारकों और पंडितों ने हिन्दुत्व की ओर से जो कुछ प्रमाण दिये, संस्कृत से लेकर दिये और यह ठीक भी था, क्योंकि सारे देश में फैले हुए हिन्दुत्व की भाषा संस्कृत थी। पीछे, जो यूरोपीय इतिहासकार भारत के अतीत का इतिहास तैयार करने लगे, उसमें भी मूल उद्धरण संस्कृत से ही आये। किन्तु, स्वामी दयानन्द ने तो संस्कृत की सभी सामग्रियों को छोड़कर केवल वेदों को पकड़ा और उनके सभी अनुयायी भी वेदों की दुहाई देने लगे। परिणाम इसका यह हुआ कि वेद और आर्य, भारत में ये दोनों सर्वप्रमुख हो उठे और इतिहासवालों में भी यह धारणा चल पड़ी कि भारत की सारी संस्कृति और सभ्यता वेदवालों अर्थात् आर्यों की रचना है। भारत में जो अनेक जातियों का समन्वय हुआ था, उसकी ओर उस समय किसी ने देखा भी नहीं। हिन्दू केवल उत्तर भारत में ही नहीं बसते थे और न यही कहने का कोई आधार था कि हिन्दुत्व की रचना में दक्षिण भारत का कोई योगदान नहीं है। फिर भी, स्वामीजी ने आर्यावर्त्त की जो सीमा बाँधी है, वह विन्ध्याचल पर समाप्त हो जाती है। आर्य-आर्य कहने, वेद-वेद चिल्लाने तथा द्राविड़ भाषाओं में सन्निहित हिन्दुत्व के उपकरणों से अनभिज्ञ रहने का ही यह परिणाम है कि आज दक्षिण भारत में आर्य-विरोधी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है। हिन्दू सारे भारत में बसते हैं तथा उनकी नसों में आर्य के साथ द्राविड़ रक्त भी प्रवाहित है। हिन्दुत्व के उपकरण केवल संस्कृत में ही नहीं, प्रत्युत, संस्कृत के ही समान प्राचीन भाषा तमिल में भी उपलब्ध है और दोनों भाषाओं में निहित उपकरणों को एकत्र किये बिना हिन्दुत्व का पूरा चित्र नहीं बनाया जा सकता। इस सत्य पर यदि उत्तर के हिन्दू ध्यान देते तो दक्षिण के भाइयों को वह कदम उठाना नहीं पड़ता, जिसे वे आज उपेक्षा और क्षोभ से विचलित होकर उठा रहे हैं।

हिन्दुत्व की वीर भुजा

यह दोष चाहे जितना बड़ा हो, किन्तु, आर्य-समाज हिन्दुत्व की खड्गधर बाँह साबित हुआ। स्वामीजी के समय से लेकर, अभी हाल तक, इस समाज ने सारे हिन्दी-प्रान्त को अपने प्रचार से औट डाला। आर्य-समाज के प्रभाव में आकर बहुत-से हिन्दुओं ने मूर्ति-पूजा छोड़ दी, बहुतों ने अपने घर के देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को तोड़कर बाहर फेंक दिया, बहुतों ने श्राद्ध की पद्धति बन्द कर दी, शास्त्रों और पुराणों को अपने यहाँ से विदा कर दिया। जो विधिवत् आर्य-समाजी नहीं बने, शास्त्रों और पुराणों में उनका भी विश्वास हिल गया और वे भी, मन-ही-मन, शंका करने लगे कि राम और कृष्ण ईश्वर हैं या नहीं और पाषाणों की पूजा से मनुष्य को कोई लाभ हो सकता है या नहीं। आर्य-समाजियों ने जगह-जगह अपने उद्देश्यानुकूल विद्यालय स्थापित किये, जिनमें संस्कृत की विशेष रूप से पढ़ाई होती है और जहाँ के स्नातक स्वामी दयानन्द के उद्देश्यों के मूर्तिमान रूप बन कर बाहर आते हैं। इन विद्यालयों में कन्या और युवक ब्रह्मचर्य-वास भी करते हैं।

आगे चलकर आर्य-समाज ने शुद्धि और संगठन का भी प्रचार किया। सन् 1921 ई॰ में भोपला (मालाबार) मुसलमानों ने भयानक विद्रोह किया और उन्होंने पड़ोस के हिन्दुओं को जबर्दस्ती मुसलमान बना लिया। आर्य-समाज ने इस विपत्ति के समय संकट के सामने छाती खोली और कोई ढाई हजार भ्रष्ट परिवारों को फिर से हिन्दू बना लिया। इसी काण्ड के बाद आर्य-समाजियों ने राजस्थान के मलकाना राजपूतों की शुद्धि आरम्भ की, जिससे मुस्लिम-सम्प्रदाय में क्षोभ उत्पन्न हुआ और लोग कहने लगे कि आर्य-समाजी मुसलमानों से शत्रुता कर रहे हैं। किन्तु, शत्रुता की इसमें कोई बात नहीं है। जब अन्य धर्मवालों को यह अधिकार है कि वह चाहे जितने हिन्दुओं को क्रिस्तान या मुसलमान बना सकते हैं, तब धर्म-भ्रष्ट हिन्दुओं को फिर से हिन्दू बना लेने में ऐसा क्या अन्याय है? किन्तु आर्य-समाजियों के इस साहस से मुसलमान बहुत घबराये एवं भारतीय एकता का संकट कुछ पीछे की ओर घुड़क गया।

आर्य-समाजियों ने अपने साहस का दूसरा परिचय सन् 1937 ई॰ में दिया जब हैदराबाद की निजाम-सरकार ने यह फरमान जारी किया था कि हैदराबाद-राज्य में आर्य-समाज का प्रचार नहीं होने दिया जायगा। इस आज्ञा के विरुद्ध आर्य-समाजियों ने सत्याग्रह का शस्त्र निकला और, एक-एक करके, कोई बारह हजार आर्यसमाजी सत्याग्रही जेल चले गये।

ईसायत और इस्लाम के आक्रमणों से हिन्दुत्व की रक्षा करने में जितनी मुसीबतें आर्य-समाज ने झेली हैं, उतनी किसी और संस्था ने नहीं। सच पूछिये तो उत्तर भारत में हिन्दुओं को जगा कर उन्हें प्रगतिशील करने का सारा श्रेय आर्य-समाज को ही है। पंडित चमूपति ने सत्य ही कहा है कि "आर्य-समाज के जन्म के समय हिन्दू कोरा फुसफुसिया जीव था। उसके मेरुदंड की हड्डी थी ही नहीं। चाहे कोई उसे गाली दे, उसकी हँसी उड़ाये, उसके देवताओं की भर्त्सना करे या उसके धर्म पर कीचड़ उछाले, जिसे वह सदियों से मानता आ रहा है, फिर भी, इन सारे अपमानों के सामने वह दाँत निपोर कर रह जाता था। लोगों को यह उचित शंका हो सकती थी कि वह आदमी भी है या नहीं, इसे आवेश भी चढ़ता है या नहीं अथवा यह गुस्से में आकर प्रतिपक्षी की ओर घूर भी सकता है या नहीं। किन्तु, आर्य-समाज के उदय के बाद, अविचल उदासीनता की यह मनोवृत्ति विदा हो गयी। हिन्दुओं का धर्म एक बार फिर जगमगा उठा है। आज का हिन्दू अपने धर्म की निन्दा सुनकर चुप नहीं रह सकता। जरूरत हुई तो धर्म-रक्षार्थ वह अपने प्राण भी दे सकता है।"

– साभार: 'संस्कृति के चार अध्याय'

lLÑfr d pkj v/;k;%

euhf"k;k d fopkj

'संस्कृति के चार अध्याय' का प्रत्येक अध्याय स्वाध्यायशील लेखक के गहन चिन्तन-मनन का प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह जैसा ज्ञानवर्द्धक है, वैसा ही रोचक भी। इतिहास और उपन्यास की तरह आकर्षक और मनोरंजक प्रतीत होता है। हिन्दी में ऐसा ग्रंथ अब तक मैंने नहीं पढ़ा था। हिन्दी संसार में यह बिहार का गौरव बढ़ाने वाला सिद्ध होगा।

- आचार्य शिवपूजन सहाय, पटना

आपने इस युग में फिर से सागर-मंथन करके रख दिया, जिसकी बड़ी आवश्यकता थी। मैं तो कहूँगा कि इसे पढ़े बिना हिन्दी के सामान्य पाठकों का अध्ययन ही अधूरा रह जायेगा। आपने भारतीय मानव का युग-युग-व्यापी विस्तार, उसकी गहराई, ऊँचाई और उसका उद्वेलन एवं उत्थान-पतन, इन पृष्ठों में बाँधकर हिन्दी जगत के अतिरिक्त समस्त देश की, इस बहुभाषी देश की बड़ी सेवा की है।

- पंडित सुमित्रानन्दन पंत, इलाहाबाद

कई दिनों से सोच रहा था कि आपके द्वारा उपस्थापित, दीर्घकालीन भारतीय संस्कृति की धारावाहिक परंपरा के इस सुन्दर चित्रण को किस शब्द के द्वारा प्रकट करूँ। मैं ठीक शब्द नहीं पा सका हूँ, पर इसे मैं भारतीय संस्कृति की मोहिनी मूर्ति कहने की ओर ही प्रलुब्ध हूँ। आपकी यह पुस्तक इतिहास की तथ्य-परीक्षा मात्र नहीं है। मेरी दृष्टि में यह एक प्राणवती मानवीय प्रयत्न धारा की मोहिनी मूर्ति है। मोहिनी अर्थात् मुग्ध कर देने वाली। अनेक दुर्दिनों, विपत्तियों, संपत्तियों के भीतर से भारतीय संस्कृति ने जो विचित्र, वैभवमयी मूर्ति धारण की है, वह आपकी पुस्तक से प्रत्यक्ष हो उठती है।

- डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, काशी

यह दिनकर जी ने एक बिल्कुल नये और अनोखे ढंग की पुस्तक हिन्दी में लिखी है। दिनकर जी का प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय है और जिस परिश्रम से उन्होंने इस काम को किया है, वह हिन्दी साहित्य में एक नया अध्याय शुरू करता है।

- डॉ. बालकृष्णकेसकर, मंत्री, भारत सरकार, नई दिल्ली

इस पुस्तक को हम अपने देश के किसी कोने के किसी भी देश भाई के हाथ में अर्पित कर अपने लिए, अपनी भाषा के लिए गर्व अनुभव कर सकते हैं। एक अच्छा कवि, अच्छा गद्य लेखक भी हो सकता है, यह विरल है। किन्तु वह इस क्षेत्र में कुछ ऐसा कमाल कर दे कि इस क्षेत्र के धुरंधर आचार्यों को भी कुछ सोचने-समझने को बाध्य होना पड़े, यह सबसे बड़ी बात है।

हिन्दी के ऊपर एक जिम्मेवारी आ गई है, उसे भारत की सांस्कृतिक एकता की भाषा बनना है। अतः दिनकर ने हिन्दी में इस पुस्तक को लिखकर उसकी जिम्मेवारी निभायी है। हम कह सकते हैं कि राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी ने यह प्रथम पुस्तक देश को अर्पित की है, जिसमें देश अपने संपूर्ण रूप की झलक पा सकता है।

- नई धारा, पटना

श्री दिनकर ने इस ग्रन्थ की रचना कर देश और दुनिया की मूल्यवान सेवा की है। यह पुस्तक उनके कृतित्व का एक ज्योतिर्मान स्तम्भ बनकर सदा जीवित रहेगी। इसे लिखकर उन्होंने अपनी आत्मा को अपने देश युगान्तरगामिनी जनता की प्रगतिशील आत्मा के साथ तदाकार किया है। दिनकर की कीर्ति शायद उनके काव्य से भी अधिक उनके इस ग्रन्थ में अमर होकर रहेगी।

- धर्मयुग, बम्बई

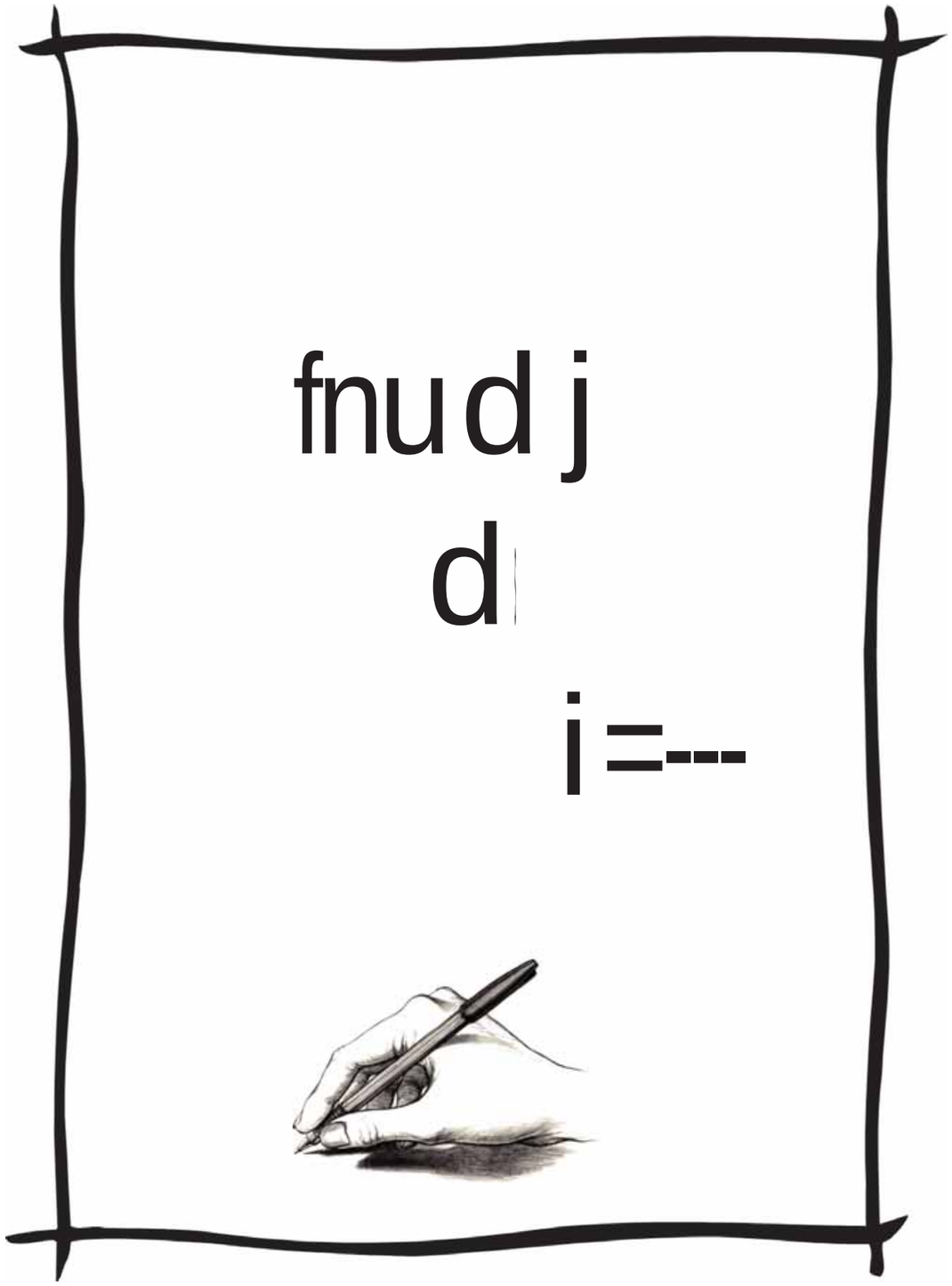

पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी के प्रति

मुँगेर
5-12-35

श्रद्धेय चतुर्वेदी जी,

प्रणाम!

मैं प्राय: सकुशल पहुँचा। केवल रास्ते में टिकिट इनवैलिड हो जाने से पेनल्टी के 5 रू 7 आने देने पड़े।

मैंने बच्चन की प्रतिभा और अभिव्यक्ति के विषय में बहुत सोचा है।

He seems to be the harbinger of still latter sentiments in our literature.

आप बच्चन पर लिखते हुए सरस्वती में प्रकाशित पगध्वनि कनिका का अंतिम पद अवश्य लिखा करें क्योंकि वह उस कविता की जान है।

मैंने बेनीपुरी जी को भी संवाद भेज दिया है। पूर्णिया सम्मेलन के सभापतियों का चुनाव, जैसे मैंने सुना है, प्राय: खत्म हो चला है। फिर भी मैंने संदेश भेजे हैं।

हाँ, यहाँ मुँगेर में एक परिषद् है। इस बार फरवरी के किसी सप्ताह में उसका वार्षिकोत्सव होने जा रहा है। उसके सभापतित्व के लिए लोगों ने बाबा राहुल से प्रार्थना की है। यह मुझे मालूम नहीं था। अगर बाबा ने अस्वीकार किया तो मैं प्रेमचन्द जी के लिए आखिरी कोशिशें करूँगा। हम लोगों का विचार है कि उस अवसर पर नवीन जी, सुदर्शन जी, जोशी जी, महादेवी या सुभद्रा जी भी जरूर रहें। आपका रहना तो Criminally necessary होगा। मैं आपका spare नहीं कर सकता चाहे वर्मा जी की वैशाखी ही मुझ पर क्यों न पड़े। अतएव आप finally लिखिए कि उत्सव की तिथि कब रखी जाय। आप दो सप्ताह की अवधि देकर लिखें कि 'पहली से 14 तक या 15 से 28 तक के बीच रखो' जिससे और लोगों की सुविधा का भी विचार किया जा सके। वसन्तोत्सव का रंग जरा यहाँ भी रहना चाहिए। मेरा जिला यही न है!

प्रेमचन्द जी, जोशी जी तथा सुदर्शन जी के लाने का कुछ भार आप पर भी रहेगा। हम लोग व्यय का प्रबंध करेंगे। आप ऐसा करें कि वे सब जरूर आवें।

कलकत्ते से लौटकर मैंने एक नई दृष्टि से यहाँ की परिस्थिति का अध्ययन शुरू किया है। मुझे ऐसा लगता है कि मेरे प्रांत में प्रान्तीयता है ही नहीं। हम लोग बुद्धू ठीक हैं लेकिन जैसा कि मनोरंजन जी ने कहा था यह बुद्धू शब्द बुद्ध से निकला है। बिहारियों के हृदय में सारे भारतवर्ष के लिए आदर है। मैं समझता हूँ प्रेमचन्द जी, पंतजी, भगवतीचरण जी, चतुरसेन जी, मिलिन्द जी आदि सज्जनों के नाम जिस आदर से बिहार में लिए जाते हैं वैसा और प्रांतो में शायद ही हो। यू.पी. के अनेक साहित्यिक इस बात को जानते हैं कि जब-जब यहाँ (बिहार में) कोई उत्सव होने लगा है लोग उनके पास काशी, प्रयाग, कानपुर और लखनऊ तक दौड़े हैं। वे नहीं आये यह उनकी शोभा है। यह चेष्टा घृणा नहीं बल्कि महान आदर का द्योतक है। आज जो कुछ हो रहा है वह accidental है और उसका कोई आधार नहीं।

मैं 12 तक यहाँ हूँ। 16 से 23 तक पो. ऑ. शेखपुरा जिला मुँगेर में रहूँगा। बीच के तीन दिन इधर-इधर बीतेंगे। आप कृपया 12 तक पत्रोत्तर यहाँ ही के पते पर दें। 12 के बाद 23 तक पो. ऑ. शेखपुरा, सब-रजिस्ट्रार आफिस के पते पर।

आशा है रेणुका की एक कापी जोशी जी को मिल गई होगी। मैं परसों घर जाऊँगा और वहाँ से कापियाँ लाकर आपकी सेवा में भेजूँगा।

विश्व-वाणी में समालोचना जल्द निकलनी चाहिए। साथ का पत्र वर्मा जी को दे दें।

धन्य कुमार जी को वन्दे।

आपका
दिनकर

डॉ शिव मंगल सिंह 'सुमन' के प्रति

चौधरी टोला, पटना
27-10-53

प्रिय भाई!

मेरी एक पोती तीन साल की है। दूसरी भी हुई है, जिसकी आज छठी है। शाम को श्रीमती जी ने गर्म दूध से अपना चेहरा जला लिया। उनका उपचार चल रहा है। इस प्रकार, घर में सुख और दु:ख दोनों विद्यमान हैं। और पस्ती में बैठे-बैठे मुझे तुम्हारी याद आ रही है। अय हर आदमी से साँसो का हिसाब माँगने वाले, कुछ अपनी साँसों का भी हिसाब दो। तुम कविताएँ कम लिखने लगे हो। साल में एक दर्जन नहीं लिखोगे तो फिर जवानी को धिक्कार। चालीस के बाद तो तीन लिखना भी दूभर हो जाएगा। और अपनी भाषा में प्रशंसक कम, निन्दक अधिक जन्म लेते हैं। इकबाल ने, शायद, सोलह साल कविता की कोई पुस्तक उर्दू में नहीं निकाली थी और इलियट के वेस्ट लैंड से फोर क्वार्ट्रेट तक की दूरी भी बीस साल की है। मगर, हिन्दी में कोई ऐसा करे तो उसकी मृत्यु का ढिंढोरा सब लोग पीटने लगते हैं।

हिन्दी कविता की प्रगति अवरूद्ध है। हर बारह साल के बाद नये क्षितिज का निर्माण होना चाहिए, आशा के विरूद्ध दिशा से किसी कवि को उतरना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि तुम अपने आपसे एक प्रश्न करो कि तुमने अपने हिस्से के नये क्षितिज का निर्माण कर लिया या वह काम अभी बाकी है। मेरे ख्याल से, तुम्हारा क्षितिज अभी तक पूर्ण रूप से उभर कर सामने नहीं आया है।,

और कवि की संकीर्णता की वृद्धि कवि-सम्मेलनों में होती है, यह तुम जान लो। हम सभी लोगों को भागना चाहिए इन सम्मेलनों से। मैं तो कोशिश करके हार गया, मगर, कवि-सम्मेलनों से छुटकारा नहीं मिलता। बेबसी है। फिर भी जिस सत्य को अनुभव करता हूँ, तुम्हें बता रहा हूँ। मैं तुम्हारा गुरु नहीं, अग्रज नहीं, एक पीठ का भाई हूँ, इसलिए, हर बात कह सकता हूँ और तुम्हें भी यही अधिकार देता हूँ।

कविता की भूमि जकड़ी जा रही है। ऐसी चीजों की जरूरत है जो आलोचकों को अनुपस्थित मानकर लिखी जाएँ, जिन्हें जनता आसानी से समझ सके और समझ कर आनंद उठा सके। और ऐसी चीजों की भी जरूरत है जिनके

भीतर से कवि अपने आप पर आरी चलाता हो, अपने आप को चीरता हो, जिनके भीतर से उसके दिमाग के फटने की आवाज सुनायी देती हो। आशा है, संकेत समझ रहे हो।

और आज ही एक कविता लिखी है जिसका नाम 'संकेत' रखा है। दो पद उसके ये हैं:

दूँ तुमको जीभ उधार? सूर्य, क्या बोलोगे?
भाषा जिनकी मौजूद, भाव वे जूठे हैं।
हैं भेद अछूते जो, उनको कहना चाहो
तो वाणी के साधन समस्त ये झूठे हैं।
संकेतो से आगे वाणी की राह नहीं,
कुछ लाभ नहीं किरणों को मुखर बनाने से।
रव की झंकारों से न भेद खुल पायेगा,

सस्नेह

श्री रामानुज प्रसाद सिंह के प्रति

वारसा
30.11.55

प्रिय भोला,

लंदन से भेजा हुआ पत्र मिला होगा। वारसा हम 24 को आए और तभी से पार्टियों, सम्मेलनों, मुलाकातों आदि में व्यस्त रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय डेलिगेशन में जाने के लिए स्वास्थ्य मजबूत चाहिए। बड़ा परिश्रम करना पड़ता है।

परसों International evening of poetry नाम से एक अंतर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन हुआ, जिसमें 30 देशों के कोई 44 कवि वर्तमान थे। सूची में मेरा नम्बर 12वाँ था। किन्तु, तुम्हें जान कर खुशी होगी कि कवि सम्मेलन भारत वर्ष के हाथ रहा। अपनी भाषा की कविता तो सब को प्यारी लगती है। जहाँ अनेक भाषाओं का सम्मेलन हो, वहां ध्वनि और अनुवाद से व्यंजित अर्थ ही काम करता है। इस काम में हिन्दी बड़ी ही क्षमता वाली भाषा सिद्ध हुई। परसों ही वारसा यूनिवर्सिटी में मेरा Indian Poetry पर भाषण भी हुआ।

2-12 को हम लंदन जायेंगे और वहाँ 10 तक रहेंगे। फिर हम पेरिस, जेनेवा, रोम आदि होते हुए 22 दिसम्बर तक बम्बई पहुँचना चाहते हैं।

यहाँ का जीवन मुक्त, प्रफुल्लित और उल्लास से युक्त है। राजनीति की बातें कोई नहीं बोलता। कवि, गायक और कलाकार यहाँ की जनता के सर्वश्रेष्ठ सदस्य हैं। वे ही अमीर भी हैं। युवक दल बाँध कर देश और सरकार को मुक्त सहयोग दे रहे हैं और सारा देश जोर से प्रगति कर रहा है। मामूली-से-मामूली कलाकार को जनता इतने आनन्द से उछालती है कि चित्त प्रसन्न हो जाता है। कला की पूजा मैंने यहीं देखी।

तुम्हारा
रामधारी

हजारीप्रसाद द्विवेदी के प्रति

साउथ एवेन्यू, नयी दिल्ली
४-१२-५७

मान्यवर द्विवेदी जी,

हिन्दी की राजनीति, सद्यः दुर्बल दीखती है। तमिलनाडु और बंगाल पूरे जोर पर हैं। समाचार आप पढ़ ही रहे होंगे। प्रचार पुस्तिकाएँ भी प्राप्त हो रही होंगी। अतएव, हिन्दी तथा अन्य देशी-भाषाओं की ओर से भी कुछ कहा जाना चाहिए। बिहार-सम्मेलन का अधिवेशन ७-८ को मुँगेर में है। उसमें एक दिन आप भी आ जायें तो अच्छा रहे। काशी में जो सम्मेलन हो रहा है उसके प्रस्ताव दिल्ली में छपने चाहिए। प्रयाग में परिषद् जो कुछ कहे, उसे भी दिल्ली में छपना चाहिए। प्रत्येक प्रस्ताव की प्रतिलिपि गृहमंत्रालय को जानी चाहिए। देश में जो स्थिति उत्पन्न की जा रही है, वह विघटन को उत्तेजना देगी। असल में, समस्या क्या है? हम हिन्दी को किसी पर भी नहीं लादने की बात बार-बार कह चुके हैं और हम उस पर आरूढ़ भी हैं। फिर भी लोग हिन्दी वालों को भाषा-साम्राज्यवादी कह रहे हैं। Give the dog a bad name and then hang him. मैं तो सोचता हूँ कि हिन्दी-देश की राजभाषा हुई है या नहीं अथवा उसे राजभाषा होना चाहिए या नहीं, इसका निर्णय अहिन्दी-भाषियों पर ही छोड़ देना चाहिए। वे यदि चाहें तो हिन्दी को राजभाषा बना लें। अन्यथा उन्हें जो निर्णय पसन्द हो, वही कर लें। किन्तु, इतने से ही समस्या का समाधान नहीं होता। संविधान में देश ने एक निर्णय किया और नेताओं ने कहा कि उस निर्णय को काममें लाना चाहिए। हिन्दी-प्रान्तों को इस काम में कठिनाई कम दीखी। अतः, उन्होंने अपने विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बदल दिया। कुछ अन्य भाषा-क्षेत्रों में भी विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम वहाँ-वहाँ की क्षेत्रीय भाषा बनादी गयी है। अब मुख्य प्रश्न यह है कि उन विश्वविद्यालयों से जो ग्रेजुएट तैयार हो रहे हैं, उनके लिए केन्द्रीय नौकरियों के दरवाजे खुलेंगे या नहीं? बंगाल और तमिलनाडु, अंग्रेजी का पल्ला नहीं छोड़ना चाहते। तो उनके लिए अंग्रेजी का माध्यम बना रहने दीजिये। किन्तु, जो न्याय बंगाल और तमिलनाडु चाहते हैं, वही न्याय हिन्दी-प्रान्तों समेत गुजरात और महाराष्ट्र को भी चाहिए। अन्यथा स्थिति यह हो जायगी कि इन प्रान्तों के युवक अधिकाधिक संख्या में बेकार होते जायेंगे और उनके इलाके उन लोगों के चारागाह बने रहेंगे जो अंग्रेजी में हुशियार हैं। यह स्थिति अन्याय की स्थिति होगी और इन प्रान्तों को जनता उसे स्वीकर नहीं करेगी। फिर जो सरकार, छोटे आन्दोलनों से भीत हो कर, राजभाषा के प्रश्न पर निराशाजनक निर्णय करेगी, उसे अत्यन्त भीषण आन्दोलन का सामना करना पड़ेगा और इन आन्दोलनों से देश की एकता को चोट पहुँचेगी, अतएव कुशल का एकमात्र मार्ग यही है कि केन्द्रीय नौकरियों के दरवाजे अंग्रेजी समेत उन सभी भाषाओं के लिए खोल दिये जायें जिनमें स्नातक तैयार होते हों। निराशाजनक निर्णयों से हिन्दी-प्रान्तों में जो भाव उदित होने वाला है उसकी सूचना अभी से दिल्ली से दे दी जानी चाहिए। लोग एकतरफा भय से सहमे जा रहे हैं। भाषणों, लेखों, वक्तव्यों और प्रस्तावों को दिल्ली में छपवाने की बहुत आवश्यकता है।

आपका
दिनकर

डॉ. विवेकी राय के प्रति

आर्यकुमार रोड, पटना-4
1.1.58

प्रिय राय जी,

आज दिल्ली से लौटने पर आपका 20-12-57 का कृपा पत्र मिला। आपकी कृपा है कि इतनी गम्भीरता से मेरी प्रवृत्तियों पर विचार करते रहते हैं।

शासन की छाया मेरे लिए नयी नहीं है। हाँ, मेरे आलोचकों को यह बुरा अवश्य लगा कि मैं संसद का सदस्य क्यों हो गया। मैं स्कूल का शिक्षक था, सब-रजिस्ट्रार था, युद्ध के समय प्रचार अफसर था, कांग्रेसी सरकार का प्रचार अफसर था और सबके बाद में प्रोफेसर। क्या ये सभी पद रचनात्मक प्रतिभा के उपयुक्त थे? और तो और, आपने प्रोफेसरी करते हुए कितने कवियों को अच्छी कविताएँ लिखते देखा है? मगर, जब मैं इन पदों पर था, लोग समझते थे, मैं ठीक जगह पर हूँ। केवल अब उन्हें लगता है कि मैं खतरों के बीच हूँ। ठीक जगह कवि को कहाँ मिलती है? कविता का मेल किसी भी पद से नहीं बैठता और साहस तथा शक्ति हो तो सभी पदों से बैठता है। कम से कम, मेरा तो यही अनुभव है।

नौकरी (और उसके साथ लक्ष-मूल्य पेंशन का मोह) मैंने 1952 में छोड़ी। तब से मेरी पुस्तकें कौन-कौन निकली हैं ? नील कुसुम, संस्कृति के चार अध्याय, नीम के पत्ते, दिल्ली, रेती के फूल, चक्रवाल, उजली आग, देश-विदेश, सीपी और शंख, नये सुभाषित, राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता, वेणुवन और काव्य की भूमिका (प्रेस से निकली नहीं है, महीने भर में आ जायेगी।) उर्वशी काव्य पर काम चल रहा है। पाँच साल में 14 पुस्तकें क्या कम होती हैं? मगर, अब हिन्दी में पढ़ता कौन है? लोग यही देखने में मशगूल हैं कि मिट्टी के पाँव किसके कितने निकलते हैं। और संसद की सदस्यता को एक समय मैंने भी भूषण समझा था। नहीं तो उसके लिये क्लास-1 की नौकरी क्यों छोड़ता ? किन्तु वह शौक भी अब पूरा हो गया। और अब यह भूषण भी किसी भी समय उतर सकता है बिना किसी सोच-विचार के। 'सुमन'-माल जिमि कंठ ते गिरत न जान्यौ नाग।'

आपने 'दिल्ली' कविता में जोश का जो उतार देखा है, वह उतार नहीं, चढ़ाव का दृष्टान्त है। सुबह के समय फूल पर शबनम होती है, मगर, दोपहरी के फूल पर तो शबनम होती नहीं। इतने से भेद को ह्रास समझना ठीक नहीं है। साहित्य में जजमेंट देना परिपक्व बुद्धि का काम है। बल्कि, कविता पर निर्णय देना कविता रचने से भी अधिक बड़ा काम है। आपके सामने मेरे और भी कई परम भावुक मित्र हैं जो 'रसवन्ती' और 'रेणुका' में भावुकता का अभाव देख कर मुझे कोसते रहते हैं। और यह सत्य है कि मैं भावुकता की भूमि से आगे निकल गया हूँ। मैं वापस जाना चाहता भी नहीं। जिसकी 'रसवन्ती', 'रेणुका', 'हुंकार' और 'कुरुक्षेत्र' के आप आशिक रहे हैं, उसके 'नील कुसुम' को भी सहानुभूति से देखिये। अपने पचासवें वर्ष में आकर कोई अविकसित मनुष्य ही भावुकता को अपनी सम्पत्ति मानेगा। यों, 'नील कुसुम' में भी भावुकता से लदी कई कविताएँ हैं जिनके कारण मेरी प्रशंसा नहीं, आलोचना की जानी चाहिए।

गाँव की सेवा से आपका क्या तात्पर्य है, मैं नहीं जानता। गाँव वाले आपको क्या करने के लिए कहते हैं ? मुझसे तो वे बहुत काम लेते हैं और फिर कलह-प्रपंच आदि से बाज भी नहीं आते। गाँव नरक है। अपने गाँव की नारकीयता कम करने में मैं बचपन से लगातार जुटा रहा हूँ। लेकिन, सुधार होता नहीं। मैं ग्राम-सेवा के बारे में आपको कोई राय नहीं दे सकता। हाँ, साहित्य-सेवा कहीं भी रह कर की जा सकती है यदि अपने लिये आप चार-छः घंटे का एकांत निकाल सकें। एकांत नहीं तो साहित्य-सेवा नहीं। एकांत उपलब्ध है तो सारी साधना चल सकती है।

कमलापति जी वाला पत्र आपने कहाँ देखा?

आपका
दिनकर

लोकनायक जयप्रकाश नारायण के प्रति

पटना ९-११-५८

मान्यवर जयप्रकाश जी!

प्रणाम।

मानवीय गुणों पर जोर देते हुए आपने अभी हाल में जो बयान दिया है उसकी कतरन मैंने पास रख ली है और उसे कई बार पढ़ गया हूँ। अजब संयोग की बात है कि जब आपका बयान निकला, मैं धर्म और विज्ञान पर एक निबन्ध लिख रहा था जो ४० पेज तक गया है, मगर, अभी कुछ अधूरा है। बयान पढ़कर मुझे लगा कि आप जिस चीज को इतनी अच्छी भाषा में और इतनी सुस्पष्टता के साथ कह रहे हैं, मेरी असमर्थ भाषा भी उसी के आसपास चक्कर काट रही है। इस बयान पर लोगों की क्या प्रतिक्रिया है, यह भी मुझे मालूम है। लेकिन, हर बड़े काम की राह में लोक-मत कुछ बाधक बनकर आता है और उनकी उपेक्षा किए बिना ये काम किए नहीं जा सकते। वर्तमान सभ्यता अनेक रूढ़ियों को तोड़कर आगे बढ़ी है, लेकिन, मुझे अब पूरा सन्देह हो रहा है कि वह खुद एक प्रकार की रूढ़ि में जा फँसी है, जिसका उपयुक्त भाषा के अभाव में, मैं 'बुद्धि की रूढ़ि' नाम देता हूँ। अगर मनुष्य को विकसित होना है तो उसे इसरूढ़ि से भी निकलना होगा। बट्रेण्ड रसल ने लिखा है कि आदमी में तीन प्रवृत्तियाँ होती हैं, instinct to live, instinct to think and instinct to feel. ये मैं अपनी भाषा में रख रहा हूँ। Feel शायद उसने नहीं कहा है। इस प्रवृत्ति का नाम उसने spirit की प्रवृत्ति दिया है। इन तीनों में समन्वय हुए बिना मनुष्य का दोषहीन विकास नहीं हो सकता। रसल और हक्सले के अलावे, मैंने Alexis Carel की Man: The Unknown नामक किताब में भी यही देखा कि वैज्ञानिक सभ्यता गलत दिशा की ओर जा रही है और मैं मान गया हूँ कि कैरेल का कहना बिल्कुल ठीक है। एक धारा है जो सबको बहाए लिए जा रही है। जरूरत है उन पुरुषों की जो इस बहाव में बहने से इनकार कर दें। आपने अपना पाँव जमा लेने का इरादा किया है, इसलिए, मैं आपका सादर अभिनन्दन करता हूँ। युद्ध-काव्य के विषय में भी आपका सुझाव बेनीपुरी से मिला है।

आपका
दिनकर

सम्पादकः धर्मयुग

नवम्बर, 1972

धर्मयुग के 22 अक्तूबर, 1972 वाले अंक में अपने बारे में आदरणीय पंडित पद्मकांत जी का कठोर पत्र मैंने पढ़ा। 'रिसि अति बड़ि लघु चूक हमारी।' सरकारी कृपा चाहने वाले व्यक्ति पद्मकांत जी ही थे, यह मंतव्य मेरा नहीं था, लेकिन डायरी में मैंने काट-कूट तो की है, जोड़ा कुछ भी नहीं है। मैं मानता हूँ कि डायरी के उस अंश से जो ध्वनि निकलती है, उससे पद्मकांत जी का रूष्ट होना अस्वाभाविक नहीं हैं। मैं उनसे क्षमा माँगता हूँ। मेरा अभिप्राय उन लोगों से था, जो दिल्ली में ही रहते थे।

इससे भी अधिक ग्लानि मुझे इस बात की है कि पद्मकांत जी मेरे दरवाजे से अप्रसन्न लौटे। उस समय की परिस्थिति का स्मरण मुझे नहीं है, न मैं यही याद कर पाता हूँ कि उस दिन मैं किस उजलत में था। यह तो मुझे याद है कि पद्मकांत जी ने मुझे कोई कविता भेजी थी, लेकिन स्वर्गीय श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय से मेरी क्या बात हुई थी, इसका भी स्मरण मुझे बिल्कुल नहीं है।

शेक्सपियर ने तीन तरह के बड़ों का उल्लेख किया है। एक वह जो बड़ा पैदा होता है, दूसरा वह जो बड़प्पन हासिल करता है और तीसरा वह जिस पर बड़प्पन थोप दिया जाता है। एक चौथा व्यक्ति भी हो सकता है जो बड़े वंश होने के कारण या साधन-संपन्न होने के कारण बड़प्पन को दबोच लेता है। अपने जानते मैं इनमें से किसी भी कोटि में नहीं आता हूँ। असल में मैं महान-टहान हूँ ही नहीं। मैं तो मामूली गृहस्थ हूँ, जो नौकरियाँ कर अपने और अपने परिवार का पेट पालता रहा है और वंश में जनमी कन्याओं का विवाह रचवाता रहा है। 'कुरूक्षेत्र' और 'उर्वशी' की रचना मेरी असली उपलब्धि नहीं है। मेरी वास्तविक उपलब्धि यह है कि परिवार के शकट को हाँफ-हाँफ कर खींचते हुए मैंने 9 लड़कियों के ब्याह रचवाये हैं। अगर यह मेरी महत्ता है तो उसे मैं स्वीकार करता हूँ।

मगर यह सब फालतू बातें हैं। मुख्य विषय यह है कि हिन्दी को संस्कृतनिष्ठ होना चाहिए या नहीं। पूज्य पं॰ मदनमोहन मालवीय जी के चरणों तक पहुँचने का सुयोग मुझे नहीं मिला था। किन्तु पूजनीय टंडन जी की संगति थोड़ी मुझे भी मिली थी। टंडन जी आसान हिन्दी के पक्षपाती थे। मैं भी आसान हिन्दी चाहता हूँ और मानता हूँ कि यह आदर्श हिन्दी अमृतलाल नागर लिख रहे हैं, कमलेश्वर लिख रहे हैं, हरिशंकर परसाई लिख रहे हैं और सबसे बढ़ कर अमृतराय लिख रहे हैं।

किन्तु हुआ क्या? संसदीय कार्यों के लिए हिन्दी-शब्दों की जरूरत पड़ी, स्पीकर महोदय ने विद्वानों की एक बड़ी समिति का निर्माण किया और पूज्य टंडन जी को उसका अध्यक्ष बना दिया। इस समिति में भारत की सभी भाषाओं के विद्वान रखे गये थे और समिति की कोशिश यह थी कि शब्द जहाँ तक संभव हो, आसान रखे जायें। किन्तु हिन्दी के प्रतिनिधियों की उस समिति में चली नहीं। अहिन्दी-भाषी विद्वान, कदम-कदम पर अड़ते रहे कि शब्द, संस्कृति के ही होने चाहिए नहीं तो उन्हें सार्वदेशिक स्वीकृति नहीं मिलेगी और अन्ततः समिति ने जो शब्द-कोश तैयार किया, उसमें बहुलता संस्कृत-शब्दों की ही रही।

जब कानून की शब्दावली बनने लगी तब भी यही हाल हुआ। 'मुद्दई' और 'मुद्दालेह' शब्द हिन्दी से इस लिए निकाल दिये गये कि अहिन्दी-भाषा विद्वान वादी' और 'प्रतिवादी' रखना चाहते थे। 'चोट' शब्द इसलिए निकाल दिया गया कि मराठी में उसका अर्थ अश्लील होता है। और 'चूक' शब्द इस लिए हटा दिया गया कि ओड़िया में उसका अर्थ अश्लील होता है।

एक पुनरीक्षण समिति का अध्यक्ष मैं भी था। समिति की बैठकों में मैं हिन्दी के प्रतिनिधियों को राजी कर लेता था कि वे फारसी या अरबी के शब्द स्वीकार कर लें। लेकिन तब कोई कन्नड़ या मलयालम भाषी विद्वान, कोश लेकर खड़ा हो जाता था और कहता था कि संस्कृति-शब्द ही उसे स्वीकार्य है।

इतने दिनों का मेरा अनुभव यह बतलाता है कि या तो हिन्दी राजभाषा के रूप में सफल ही नहीं होगी या होगी तो संस्कृतनिष्ठ होकर ही होगी। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि यदि 14 सितम्बर 1949 तक गांधी जी जीवित रहते तो कांग्रेस पार्टी में बहुमत हिन्दुस्तानी को ही मिलता। लेकिन जब उसे सार्वदेशिक बनाने की कोशिश की जाती तब हिन्दुस्तानी को भी उसी रास्ते पर जाना पड़ता जिस पर हिन्दी को जाना पड़ रहा है। गांधी जी के समय में हमारी कल्पना यह थी कि हिन्दी और उर्दू की समस्या निबट जाये तो तो भाषा की सारी समस्याएँ खत्म हो जायेंगी। मगर स्वराज्य के बाद से देश की प्रत्येक भाषा हिन्दी पर प्रभाव डालने लगी है। उर्दू, जो हिन्दी की असली सहेली थी, वह उसकी पन्द्रह बहनों में से एक रह गयी है। इतिहास के इस प्रवाह को रोकना वांछनीय है या नहीं, इस विषय में मतभेद हो सकता है, लेकिन यह कार्य कठिन है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

सन् 1962 में हम लोगों ने जिस भाषा का विरोध किया था, वह हिन्दी और उर्दू, दोनों का विकृत रूप थी। उर्दू, उर्दू रखी जा रही थी, मगर हिन्दी को बिगाड़ा जा रहा था। वह हिन्दी की प्रकृति के साथ मनमाना अत्याचार था।

सन् 1962 ई. में बुलेटिनों की विकृत भाषा की मैंने जो समीक्षा तैयार की थी, उसकी एक प्रति मैं आपको भेज रहा हूँ। आप अगर उसे छाप दें तो मैं भी पद्‌मकांत जी को वही शेर सुना दूँगा, जो शेर उन्होंने मुझे सुनाया है -

यारब, न वो समझे हैं, न समझेंगे मेरी बात
दे और दिल उनको जो न दे मुझको जुबाँ और।

- रामधारी सिंह दिनकर

lkfgR;] ILÑfr vkj lekt dh f=o.kh vFkkr ^fnudj* Lefr U;kl

– प्रो. रतन कुमार पाण्डेय

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' न्यास के साथ लम्बे अनुभव के पश्चात् मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं कि इसकी गतिविधियों में सहभागी होने पर आत्मा को वही आनंद प्राप्त होता है, जो संगम पर कुंभ स्नान करने वाले पुण्यार्थियों को मिलता है। दिनकर शताब्दी-वर्ष के आयोजन के साथ मैं इस संस्था के साथ जुड़ा। इस न्यास का एक ही उद्देश्य है कि मनुष्य की मनुष्य के रूप में पहचान हो क्योंकि आज मानवीय, सामाजिक, साहित्यक वे सांस्कृतिक परिवेश संक्रमण के दौर से गुजर रहा है, और ऐसी स्थिति में अपना युग-बोध बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। ऐसे संक्रमण-काल में 'दिनकर-स्मृति न्यास' तथा उसके कर्णधार नीरज कुमार ने दृढ़-संकल्प किया है कि वे चुप नहीं बैठ सकते। आशा और संभावना की मशाल बुझने नहीं देंगे। आज की व्यावसायिकता हमें बाहर से अधिक संपन्न किन्तु अन्दर से कंगाल करती जा रही है, ऐसे समय में भीतर की समृद्धि को बचाने एवं बढ़ाने का गुरुतर दायित्व इस संस्था ने उठाया है। 'न्यास साहित्य, संस्कृति और समाज की त्रिवेणी पर अडिग है। आज का महानगरीय व्यक्ति जब स्वार्थी, आत्मकेन्द्रित और बाप-दादाओं को भुला देने वाला हो गया है। तब वहाँ रहने वाला लेखक भी गाँव को भुलाकर लोक-विरोधी और जन-विरोधी लिख रहा हो तब गाँव की उस माटी से जहाँ रवीन्द्रनाथ टैगोर, प्रेमचंद, दिनकर, निराला आदि ने अपनी शक्ति अर्जित की थी, जो गाँव की जड़ों से अन्त तक जुड़े रहे को याद करना, उनको समाज के बीच अनेक माध्यमों से पुन: स्थापित करना, अच्छे मनुष्य तथा अच्छा समाज बनाने के लिए जरूरी हो गया है। आज के लेखक की मुख्य चिंता यह नहीं है कि गाँव तक उनका लिखा साहित्य कैसे पहुँचे, वरन् चिंता इस बात की है कि अंग्रेजी अनुवाद द्वारा वह विश्व साहित्य का हिस्सा कैसे बन जायें। जोड़-तोड़ करके, लखटकिया पुरस्कार कैसे प्राप्त हो जाय। प्रेमचन्द्र, गुरुदेव टैगोर, निराला, दिनकर आदि रचनाकारों की दृष्टि धरती की ओर थी, वृहत्तर समाज की ओर थी, उसमें जनता का दुख-दर्द, हर्ष-विशाद, आशा-निराशा सभी कुछ शमिल था किन्तु आज के लेखक की दृष्टि पाठक की ओर नहीं, धरती की ओर नहीं, वरन् वे पश्चिम मुख किए नमाज पढ़ रहे हैं। गुरुदेव रवीन्द्र, प्रेमचन्द्र, दिनकर आदि गाँव से, नीचे से उठे लोग थे कोई लमही से, कोई सिमरिया से उठा था किन्तु जनता के बीच बैठकर उनके अनुभव से एकाकार होकर अपना युग-बोध ही नहीं जीवन का शाश्वत-सच

लिख रहे थे। 'दिनकर स्मृति न्यास' इनको अपना ध्येय एवं प्रेम मार्ग समझता है। इन्हीं की लिखी रचनाओं को प्रकाशित करना, उनकी रचनाओं का नाट्य-रूपान्तरण करके मंचन कराना, इन रचनाकारों पर अनेक राष्ट्रीय स्तर का आयोजन करना, उत्कृष्ट स्मारिका का प्रकाशन करना तथा उन समस्त रचनाओं, स्मारिकाओं का नि:शुल्क वितरण करना न्यास के कार्य हैं जो आज लोगों को अकल्पनीय प्रतीत होगा। हजारों की संख्या में संपूर्ण देश में फैले लोग इस बात के गवाह हैं कि 'दिनकर स्मृति न्यास' ने बड़े प्रकाशन (राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित) दिनकर रचनावली की कई सौ प्रतियां खरीदकर नि:शुल्क वितरण किया है। इसके अतिरिक्त समरशेष है, पुस्तक संस्कृति विशेषांक, विवेकानन्द का भारत, जैसी स्तरीय सामग्री का प्रकाशन किया तथा लोगों को बिना मूल्य लिए उपलब्ध कराया है। इसके अतिरिक्त न्यास द्वारा गुरुदेव टैगोर की नोबल पुरस्कार द्वारा सम्मानित 'गीतांजलि' का हिन्दी में अनुवाद कराकर हजारों की संख्या में वितरण करना, 'गाय की आत्मकथा' का प्रकाशन करना तथा लोगों तक पहुंचाना आज के समय में यह स्पष्ट संकेत देता है कि जब लोग अपना बैंक बैलेंस बढ़ा रहे हैं, प्रकाशन संस्थाएं प्रकाशन कर मुनाफा कमा रही हैं तब निस्वार्थ भाव से साहित्य की यह सेवा क्या किसी राष्ट्र सेवा से कम आंकी जाएगी? न्यास के प्रत्येक सांस्कृतिक-साहित्यिक आयोजन के अवसर पर अतिथियों का सम्मान बुके की जगह 'बुक' द्वारा करना इस लगाव को और गहराता है। 'दिनकर स्मृति न्यास' ने यह नारा दिया कि 'शराब नहीं किताब चाहिए, मदिरालय नहीं पुस्तकालय चाहिए। इस नारे की अनुगूंज भारतीय लोकतंत्र के मंदिर 'लोकसभा' में पूर्व केन्द्रीय मंत्री माननीय रघुवंश प्रसाद सिंह द्वारा गूंजित की गई। सरकार ने किताब खरीद योजना को प्रोत्साहित किया और व्यवसायी प्रकाशक मालामाल हो गए क्योंकि पुस्तकों की कीमत लागत मूल्य से बीस-पच्चीस गुना रखना आज इनके लिए आम बात है। इसके साथ ही 'हुंकार हूँ मैं' का बेहतरीन प्रकाशन भी इसी का हिस्सा है। पुस्तकों को जीवन का पर्याय बनाने के सुदृढ़ संकल्प के साथ अग्रसर न्यास के प्रयासों का परिणाम था कि तत्कालीन यू॰पी॰ए॰ सरकार को 'नेशनल लाईब्रेरी मिशन' की स्थापना करनी पड़ी थी। अकेले बिहार सरकार ने इसको नीतिगत प्राथमिकता देकर पुराने पुस्तकालयों का पुनरूद्धार कराया करोड़ों की अनुदान राशि इन पुस्तकालयों को आबंटित की गई तथा पूरे बिहार प्रांत में सैंकड़ों पुस्तकालयाध्यक्षों की नियुक्ति की गई। दिनकर स्मृति न्यास का एक ही ध्येयात्मक स्वप्न है–

मानवता का दर्द लिखेंगे, माटी की बू-बास लिखेंगे।
हम अपने इस काल खण्ड का, एक नया इतिहास लिखेंगे।
– अदम गोंडवी

आज मनुष्य के जीवन में निरन्तर तनाव बढ़ता जा रहा है, जीवन सिमटता जा रहा है। मानव जीवन की गरिमा का अहसास कराने वाले टैगोर, प्रेमचन्द्र, दिनकर आदि को अपना आदर्श और रचनाओं को प्रेरक मानकर जीवन, समय और समाज के मुद्दों से प्रत्यक्ष होकर 'दिनकर न्यास' महाभारत के रचयिता न्यास के इस कथन को चरितार्थ और फलितार्थ करने में दत्त चित्त है कि–

श्रुतिः विभिन्ना स्मृतयश्च भिन्ना,
न एको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्वं निहितम् गुहायाम्
महाजनो येन गतः स पंथा।

अर्थात् श्रुतियाँ भिन्न हैं, स्मृतियाँ भिन्न हैं और एक भी मुनि के वचन प्रमाण नहीं हैं। धर्म का तत्व गुहा में निहित है, अर्थात गहन है। इसलिए महाजन जिस मार्ग पर चलते हैं, वहीं श्रेयष्कर है, प्रमाण है। जो जिन्दगी को खुली आँख से नहीं देख पाते वे इसे नहीं समझ सकते। श्री नीरज ने इस तथ्य को समझा और जो है, उससे संतुष्ट नहीं वरन् जो होना चाहिए उसके लिए निरन्तर संघर्ष कर रहे हैं।

न्यास के कर्णधार निरन्तर प्रयत्नशील हैं, बेचैन हैं आदर्श और नैतिक आचरण की स्थापना हेतु आज तक 'दिनकर-न्यास' के मंच से कोई व्यक्ति या कोई कार्यक्रम औचित्य और नैतिक आदर्शों के विरुद्ध नहीं हुआ क्योंकि आदर्श और नैतिक आचरण के बिना समाज की नींव मजबूत नहीं हो सकती। 'दिनकर स्मृति न्यास' साहित्य और संस्कृति के 'वल्गराइजेशन' को देखकर सतर्क हैं क्योंकि ऐसे प्रयास विकृत आनंद को जन्म देते है जिनमें चकाचौंध, सम्मोहन तथा उत्तेजना अवश्य है परन्तु संवेदना का लेश मात्र भी नहीं है। न्यास के प्रयास संवेदना को बचाए रखने तथा सतत् उसे विकसित करने वाला होता है। बेहतरी के इस संकल्प में श्री नीरज कुमार के भीतर निरन्तर प्रश्नों की झड़ी जन्म लेती रहती है, उन्हें उद्विग्न करती है। जिनके भीतर इस तरह के प्रश्न नहीं उठते वे सिकन्दर की भाँति चाहे कितने भी महान् क्यों न हों, एक के बाद एक विजय करते चले जायें किन्तु मानवीय सत्य की गरिमा की जिज्ञासा उन्हें बेचैन नहीं करती। बुद्ध ने बिना कोई युद्ध किए जिस मानवीय सत्य को जान लिया था कि 'जीत से बड़ी कोई हार नहीं होती' उसे अशोक ने कलिंग के युद्ध में लाखों लोगों के रक्तपात और संहार के बाद जाना किन्तु सिकन्दर ने तो लाखों खून-खराबों के बाद भी नहीं समझा था। 'दिनकर-स्मृति न्यास' को राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की इस पंक्ति का बराबर ध्यान रहता है कि–

लोहे के पेड़ हरे होंगे,
तू गान प्रेम का गाता चल,
नम होगी यह मिट्टी जरूर,
आंसू के कण बरसाता चल।

आज का मनुष्य प्रायः स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित है। उसे सामाजिक से अधिक व्यक्तिगत लाभ-हानि की चिंता है। वह कोई कार्य आरंभ करने से पूर्व नफे-नुकसान का हिसाब लगा लेता है। आज व्यक्ति शीघ्रातिशीघ्र बहुत कुछ हासिल कर लेने के लिए आतुर दिखाई दे रहा है। इन्हीं चाहतों के कारण वह आदर्शों और मूल्यों की अनदेखी करता है या उन्हें मटियामेट करता है। 'दिनकर स्मृति न्यास' के मेरुदण्ड श्री नीरज कुमार अपनों के लिए नहीं, दूसरों के लिए जीना जानते हैं। उन्हीं की चिंता करते हैं जो बेसहारा हैं।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास निरन्तर संस्कृति के निर्माण एवं रक्षण में तत्पर दिखाई पड़ता है। संस्कृति क्या है, वह कर्म (कृति) जो कृति को सम्यक रूप से सुधारे। यानी हम अपने जीवन में जो कुछ करते हैं न केवल अपने लिए वरन् अन्य के लिए, समाज और राष्ट्र में ऐसे सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजनों का उपक्रम करता है जिससे हम भारतीयता की पहचान को सही दृष्टि से जान सकें। पश्चिम बंगाल (शांति निकेतन) गया, नालन्दा (बिहार) दिल्ली वाराणसी (उ॰ प्र॰) इत्यादि स्थानों अनेकानेक विविध आयोजनों द्वारा सांस्कृतिक परिवेश का निर्माण जिस तरह यह संस्था कर रही है, वैसा प्रयास अन्यत्र दुर्लभ है। देश के विभिन्न हिस्सों में पुस्तक मेलों का आयोजन, इन मेलों में राष्ट्रीय स्तर के ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कलाकारों, विशेषज्ञों, रंगकर्मियों के माध्यम से लोक चेतना को जागृत करके उन्हें संस्कारित करने का कार्य राष्ट्रीय एकता स्थापित करने का महत् कार्य न्यास की प्राथमिकता रही है। इस ध्येय से कथक-सम्राट बिरजू महाराज, गजल एवं भजन सम्राट अनूप जलोटा, लोक गायक छन्नू लाल मिश्र, लोक गायक प्रहलाद टिपनियाँ, राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध नृत्यांगना डोना गांगुली, जैसे उत्कृष्ट कलाकारों की प्रस्तुति के माध्यम से प्रत्येक वर्ष देश के अलग-अलग हिस्सों में संस्कृति का दीप प्रज्वलित करने का कार्य आज कौन सी संस्था कर रही है जो बिना किसी शुल्क लिये, बिना किसी प्रतिदान की अपेक्षा रखे हुए। प्रसिद्ध रंग-निर्देशक श्री मुजीब खानकी नाट्य-मंडली के माध्यम से या गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के नाटक, स्वामी विवेकानन्द, प्रेमचन्द की कहानियों की नाट्य प्रस्तुति, अब्दुल कलाम आजाद तथा दिनकर की उर्वशी, रश्मिरथी, कुरुक्षेत्र आदि की अद्भुत और प्रभावशाली प्रस्तुतियाँ, या अरविन्द गौड़ के अस्मिता ग्रुप द्वारा किए गए नुक्कड़ नाटक या रंग-नाट्य प्रस्तुतियां दर्शकों के लिए अविस्मरणीय क्षण रहे हैं। इन समस्त आयोजनों में किसी प्रकार की फीस या टिकट नहीं रखा जाता है। ऐसा आज के समय में कौन करने का साहस रखता है। यदि दस दिन तक का आयोजन होगा तो लगातार दस दिनों तक विचारोत्तक-चर्चा-सत्र जो राष्ट्र, समाज और मनुष्य के लिए हितकारी हों का आयोजन तथा सायंकाल अलग-अलग सांस्कृतिक कार्यक्रमों की प्रस्तुतियाँ कराई जाती हैं। साहित्य के मंच से अपने समय के विशिष्ट-वरिष्ठ विद्वान, विचारक, चिंतक, समाजसेवी, राजनेता इन चर्चाओं में शामिल होते हैं। चाहे नामवर सिंह, रामदरश मिश्र, कृष्णदत्त पालीवाल, प्रभाकर क्षोत्रिय, प्रयाग शुक्ल, केशुभाई देसाई, सुभाष राय हों या प्रसिद्ध विचारक राजनीतिज्ञ डॉ॰ सत्यनारायण जटिया हों, डॉ॰ रघुवंश प्रसाद सिंह, डॉ॰ उदय प्रताप सिंह या अन्य हों, सभी एक साथ न्यास मंच पर आते रहे हैं। यह तो भारतीय संस्कृति की विशेषता है कि जेसे अनेक उद्गमों से आई धाराएं मिलकर एक विशाल धारा का रूप ग्रहण करती है परन्तु

अपना गुण, धर्म, रूप, पूर्णतया नहीं त्यागती हैं, वैसे ही अनेक क्षेत्रों के विद्वान-चिन्तक, कवि-लेखक, रंगकर्मी, नाट्यकर्मी, संस्कृतिकर्मी, लोकप्रिय राजनेता एक साथ इस न्यास के मंच पर आकर संस्कृति-संवर्द्धन के इस पुनीत यज्ञ में अपना योगदान देते रहे हैं।

सतत् होते रहने वाले इन प्रयासों में अर्थ श्री प्रचुर मात्रा में जरूरी होता है। न्यास के कर्णधार श्री नीरज कुमार जी इन आयोजनों में जो कुछ खर्च करते हैं, वह जुटाना भी बढ़ा ही कठिन कार्य है। इन कार्यक्रमों के आयोजन के लिए पैसे का प्रबंध करना उनका प्रथम लक्ष्य होता है। जो अपनी निजी इच्छा किसी भी तरह पूरी कर लेना चाहते हैं। स्वयं राष्ट्रकवि दिनकर ने नीरज सरीखे लोगों के लिए ही लिखा है–

मुसीबत को नहीं जो झेल सकता,
निराशा से नहीं जो खेल सकता।
पुरुष क्या शृंखला को तोड़कर के,
चले आगे नहीं जो जोर करके।

जिंदगी उसी की सार्थक होती है, जो हर मोड़ पर चलना जानता है। कुछ पाकर तो हर कोई मुस्कराता है किन्तु पहचान तो उनकी होती है जो सब खोकर भी मुस्कराना जानते हैं। दिनकर-न्यास के वैभवशाली समय में भी मैं जुड़ा था और जब न्यास के मुसीबत के दिन आए तो भी मेरा जुड़ाव बना रहा। इसका सबसे बड़ा कारण 'दिनकर-न्यास' का कार्य और उसके कर्णधार का अदभ्य साहस, कर्मठता तथा दृढ़व्रती संकल्प था। संभवत: यह साहस नीरज कुमार को दिनकर की इन पंक्तियों से प्राप्त हुआ होगा, जहां वे लिखते हैं–

खोज लेती है सुधा पाषाण में,
जिंदगी रूकती नहीं चट्टान में।

'दिनकर' स्मृति न्यास की कर्म-यात्रा रूकी नहीं हां परिस्थितिवश किंचित काल के लिए धीमी हुई थी। पुन: पुन: जीवित होकर पुनर्नवता प्राप्त करना इसका अमोघशक्ति है। मैं न्यास की इस चेतना का स्वागत करता हूँ कि जीवन संग्राम का नाम है, पलायन का नहीं।

संपर्क:
11, लक्ष्मी बिल्डिंग,
ज्योतिवा फूले रोड
दादर, मुंबई

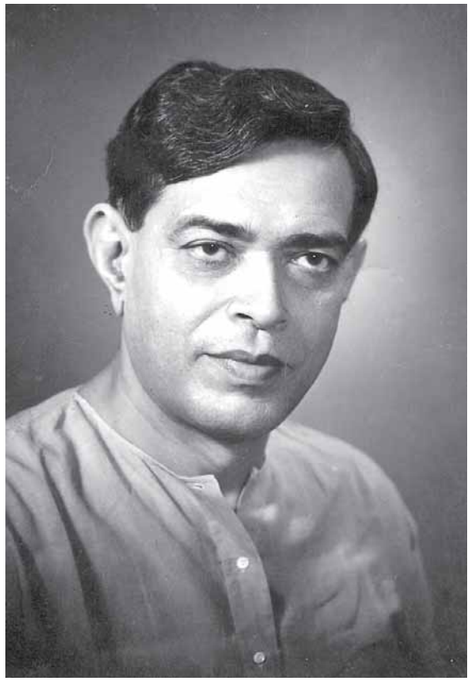

U;kl dh lugjh iy----

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' जन्मशताब्दी
स्थान : मावलंकर सभागार, रफी मार्ग, नई दिल्ली
दिनांक : 23 सितम्बर 2007, रविवार

स्थान : रवीन्द्र नाट्य मंदिर
राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर'

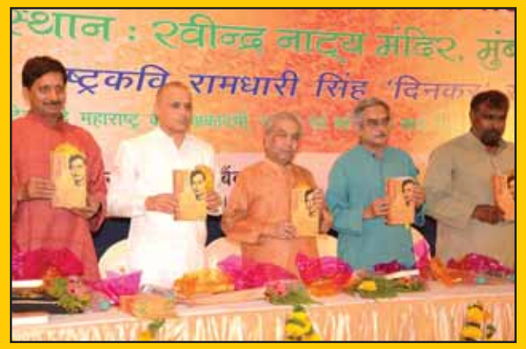

पुस्तक संस्कृति महोत्सव

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की 150वीं जयंती

सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास

ना मैं हिन्दू हूँ ना मुसलमान मैं उस धर्म में नहीं रह सकता
जहाँ लोग एक दुसरे का झुठा पानी ना पियें......

दिनांक: 4 नवम्बर 2008,

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह
105/106, द्वितीय तल,

jk"Vdfo jke/kkjh flag ^fnudj*
dh jpukvk ij vk/kkfjr
euthr flg dh dykÑfr ;k

हम
अमरजीत सिंह
2012

ॐ
ॐ

॥ हरि ओम ॥

✆ 7754922195

पं. आशुतोष ओझा, ज्योतिषविद्
अध्यक्ष

सिद्धेश्वर महाशिव ज्योतिष संस्थान

गोमती नगर, विकल्प खंड III, नजदीक मल्हौर रेलवे स्टेशन,
लखनऊ-226010, उत्तर प्रदेश
ईमेलः sms@astromahashiv.com, www.astromahashiv.com

डॉ. निशा राय
प्रधानाचार्य

मदन अहल्या महिला महाविद्यालय
नवगछिया, भागलपुर

महाविद्यालय का संक्षिप्त परिचय

बिहार के पिछड़े एवं बाढ़ प्रभावित अनुमंडल नवगछिया, जिला - भागलपुर (बिहार) में नारी-शिक्षा के उत्थान हेतु इस महिला महाविद्यालय की स्थापना हुई। स्थापना काल से ही महाविद्यालय विकास के पथ पर निरंतर अग्रसर है।

यह महाविद्यालय नारी शिक्षा के लिए अपना अमूल्य योगदान प्रस्तुत करता आ रहा है। यहाँ त्रिवर्षीय स्नातक (सम्मान) कला, विज्ञान एवं आधुनिक शिक्षा का पठन-पाठन सुयोग्य शिक्षकों के द्वारा किया जा रहा है।

छात्राओं के समुचित विकास के लिये यू. जी. सी. द्वारा प्रायोजित रिमेडियल कोचिंग, इंट्री इन सर्विसेज कोचिंग तथा कैरियर काउन्सलिंग की व्यवस्था की गई है।

छात्रओं में सामाजिक राष्ट्रीय चेतना एवं मानसिक विकास करने हेतु महाविद्यालय में 'राष्ट्रीय सेवा योजना (NSS)' और राष्ट्रीय रक्षा में योगदान करते हेतु 'एन. सी. सी. (NCC)' यूनिट स्वीकृत हैं।

छात्राओं के समग्र व्यक्तित्व निर्माण के लिये गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देना ही हमारी प्राथमिकता है। इस उद्देश्य हेतु स्थापना काल से ही यह महाविद्यालय विकास के पथ पर निरंतर अग्रसर है।

N Rai

डॉ. निशा राय
प्रधानाचार्य

सरदार पटेल मेमोरियल कॉलेज

उदंतपुरी, बिहारशरीफ़, नालंदा (बिहार)

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की कालजयी

काव्य-कृति 'हुंकार' की हीरक जयंती
के सुअवसर पर

'कलम, आज उनकी जय बोल'

स्मारिका के प्रकाशन के लिये

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास
को महाविद्यालय परिवार की ओर से
हार्दिक शुभकामनाएँ।

प्राचार्य
डॉ. राजकुमार मजूमदार

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर जी के पावन जन्मोत्सव पर

विवेकानन्द शिक्षण संस्थान, राजोता, खेतड़ी जि0 झुंझुनू (राज0) की तरफ से हार्दिक मंगलकामनायें:–

''तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतलाके,
पाते हैं जग से प्रशस्ति अपना करतब दिखलाके
हीन मूल की और देख जग गलत कहे या ठीक
वीर खींचकर ही रहते हैं इतिहासों मे लीक।''

संचालित संस्थाए –

1. विवेकानन्द पब्लिक स्कूल, राजोता, खेतड़ी
   10+2 **CBSE Co-Education**

2. विवेकानन्द पोलिटेक्निक कॉलेज, राजोता, खेतड़ी
   Trade – Electrical, Electronics, Civil, Mechanical, Computer Science

3. विवेकानन्द औद्यौगिक प्रशिक्षण संस्थान, राजोता, खेतड़ी
   Trade – Electrician

4. विवेकानन्द छात्रावास, राजोता खेतड़ी

शुभेच्छु :– अशोक सिंह शेखावत (प्रबन्ध निदेशक)
विवेकानन्द शिक्षण संस्थान, राजोता, खेतड़ी
जि0 झुंझुनू (राज0)

सम्पर्क सूत्र :– 09414082348, 01593 –234794
09649222777, 01593 –234844

TILKAMANJHI BHAGALPUR UNIVERSITY, BHAGALPUR

FIVE DECADES OF EXCELLENCE IN HIGHER EDUCATION

ESTD 1960

Encouraging General Education
Through Innovation

Prof. (Dr.) Rama Shanker Dubey
Vice Chancellor

Promotes discipline, Character
and Intellectual quality

Prof.(Dr.) Awadh Kishore Roy
Pro -Vice Chancellor

सूचित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ कि हिन्दी साहित्य के पुरोधा कवि, वीर रस के प्रणेता, राष्ट्रीय चेतना के सशक्त हस्ताक्षर एवं भागलपुर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की कालजयी रचना 'हुंकार' की हीरक जयन्ती की स्मृति में उद्‌गार व्यक्त करने का मौका पाकर आज गौरवान्वित महसूस कर रहा हूँ। राष्ट्र-पटल पर विश्वविद्यालय की सुदृढ़ छवि के ध्वजवाहक रहे राष्ट्रकवि के इस कालजयी कृति के साथ-साथ आज विश्वविद्यालय भी उनके प्रथम सानिध्य को पाकर अपने आप पर गर्व कर रहा है।

Name of Faculties
Faculty of Humanities
Faculty of Social Sciences
Faculty of Science
Faculty of Commerce
Faculty of Law
Faculty of Education
Research Institute/Centres
University Centre of Bioinformatics
Regional Study Centre
Agro-Economic Research Centre
Academic Programmes
PG & UG Courses
BCA, BBA, DPC
B.Sc. /M.Sc. Biotechnology
MBA, B.Ed. & MCA

Collaborative Researches /consultancy projects are being done with thefollowing Institutions :
Schools of National Resources and Environment, University of Michigan Ann Arbor, USA
RMRI, Patna
Mahavir Cancer Research Institute, Patna
ISRO, Dept. of Space, Govt. of India
NTPC Ltd., Kahalgaon
Ministry of Coal, Govt. of India

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की कालजयी काव्यकृति 'हुंकार' की हीरक जयंती के सुअवसर पर प्रकाशित स्मारिका 'कलम आज उनकी जय बोल' के लिए विश्वविद्यालय परिवार एवं सभी अंगीभूत महाविद्यालयों की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ एवं विश्वविद्यालय की गरिमा के पूर्व रक्षक तथा पूर्व कुलपति राष्ट्रकवि 'दिनकर' को कोटि-कोटि नमन।

Contact: 0641-2620100, 2620240 , 2620353 Website : www.tmbu

तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार
के अन्तर्गत अंगीभूत महाविद्यालय

1. टी.एन.बी. महाविद्यालय, भागलपुर
2. एस.एम. महाविद्यालय, भागलपुर
3. आर.डी. एण्ड डी.जे. महाविद्यालय, मुंगेर
4. मारवाड़ी महाविद्यालय, भागलपुर
5. जे.पी. महाविद्यालय, नारायणपुर
6. मुरारका महाविद्यालय, सुलतानगंज
7. जे.आर.एस. महाविद्यालय, जमालपुर
8. पी.बी.एस. महाविद्यालय, बांका
9. एस.के.आर. महाविद्यालय, बरबीघा
10. बी.एन.एम. महाविद्यालय, बड़हिया
11. जी.बी. महाविद्यालय, नवगछिया
12. एस.एस.बी. महाविद्यालय, कहलगाँव
13. जे.एम.एस. महाविद्यालय, मुंगेर
14. एच.एस. महाविद्यालय, हवेलीखड़गपुर
15. के.डी.एस. महाविद्यालय, गोगरी
16. कोशी महाविद्यालय, खगड़िया
17. के.एम.डी. महाविद्यालय, परवत्ता
18. डी.एस.एम. महाविद्यालय, झाझा
19. बी.आर.एम. महाविद्यालय, मुंगेर
20. आर.एस. महाविद्यालय, तारापुर
21. के.के.एम. महाविद्यालय, जमुई
22. आर.डी. महाविद्यालय, शेखपुरा
23. भागलपुर नेशनल महाविद्यालय, भागलपुर
24. टी.एन.बी. लॉ कॉलेज, भागलपुर
25. के.एस.एस. महाविद्यालय, लखीसराय
26. जमालपुर महाविद्यालय, जमालपुर
27. मदन अहिल्या महाविद्यालय, नवगछिया
28. महिला महाविद्यालय, खगड़िया
29. सबौर महाविद्यालय, सबौर, भागलपुर
30. महिला महाविद्यालय, जमुई

कुलसचिव

TILKAMANJHI BHAGALPUR UNIVERSITY, BHAGALPUR

FIVE DECADES OF EXCELLENCE IN HIGHER EDUCATION

ESTD 1960

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह
'दिनकर' की
कालजयी काव्य कृति
'हुंकार' की हीरक जयंती
के सुअवसर पर प्रकाशित स्मारिका

'कलम आज उनकी जय बोल'

हेतु

तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय,
भागलपुर, बिहार

के सभी अंगीभूत महाविद्यालयों
की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ
एवं
भागलपुर विश्वविद्यालय (सम्प्रति-तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर)

के पूर्व कुलपति राष्ट्रकवि 'दिनकर'
को कोटि-कोटि नमन

स्वाभिमान का उदयः

महर्षि दयानन्द सरस्वती

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की कालजयी कृति 'संस्कृति के चार अध्याय' से प्रभावित होकर देश में प्राचीनतम वैदिक संस्कृति को पुनर्स्थापित करने वाले, नारी शिक्षा के प्रणेता, हिन्दी भाषा के उत्थान पुरुष एवं आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती के विचारों को जन-जन तक पहुँचाने हेतु देश में पहली बार 'श्लोक इंटरटेनमेंट', मुंबई द्वारा स्वामी जी की जीवन पर आधारित धारावाहिक का निर्माण किया जा रहा है। समस्त देशवासियों, साहित्यसेवियों, संस्कृति प्रेमियों से आग्रह है कि इस धारावाहिक के निर्माण हेतु अपना रचनात्मक सहयोग प्रदान करें।

श्लोक इंटरटेनमेंट

न्यू शांति वन, 404 अंधेरी पश्चिम, मुंबई
Email: shlokentertainments@gmail.com
rinarsingh28@gmail.com

रीना रानी
संकल्पना एवं रचनात्मक निदेशक
मो. +91-9619713109, 9810390939

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास

समतामूलक, समरस, सांस्कृतिक समाज के निर्माण हेतु
राष्ट्रकवि दिनकर की कालजयी काव्य-कृति

'रश्मिरथी'

का देश भर के 101 स्थानों पर

नाट्य मंचन

कराने का संकल्प लिया है।

इस सांस्कृतिक अभियान का शुभारंभ
दिनांक 12 अगस्त, 2015 को
फिक्की सभागार, नई दिल्ली में
'हुंकार' की हीरक जयंती के सुअवसर पर
'रश्मिरथी' के नाट्य मंचन से हो रहा है।

आपसे निवेदन है कि सांस्कृतिक भारत निर्माण के इस महा अभियान में सहभागी बनकर रश्मिरथी काव्य का नाट्य मंचन कराने हेतु न्यास से संपर्क करने की कृपा करें।

नीरज कुमार, अध्यक्ष
राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास
206, द्वितीय तल, विराट भवन, कमर्शियल कॉमप्लेक्स, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
फोन: +91-11-45564498, टैलीफैक्स: +91-11-47027661
ईमेल: dinkarsmriti@yahoo.co.in, www.dinkarsmritinyas.com

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास
द्वारा ओयाजित
राष्ट्रकवि दिनकर जयंती
की पावन वेला में
सर्वविद्या की राजधानी
सांस्कृतिक पीठ 'काशी'
में
भारतीय शिक्षा-संस्कृति महोत्सव
के सुअवसर पर
राष्ट्रकवि दिनकर की कालजयी कृति 'रश्मिरथी'
एवं मुंशी प्रेमचन्द की कहानियों के
नाट्य-रूपातंरण का मंचन...
23, 24, 25 सितम्बर 2015
वाराणसी, उत्तर प्रदेश
आप सपरिवार
सादर आमंत्रित हैं।

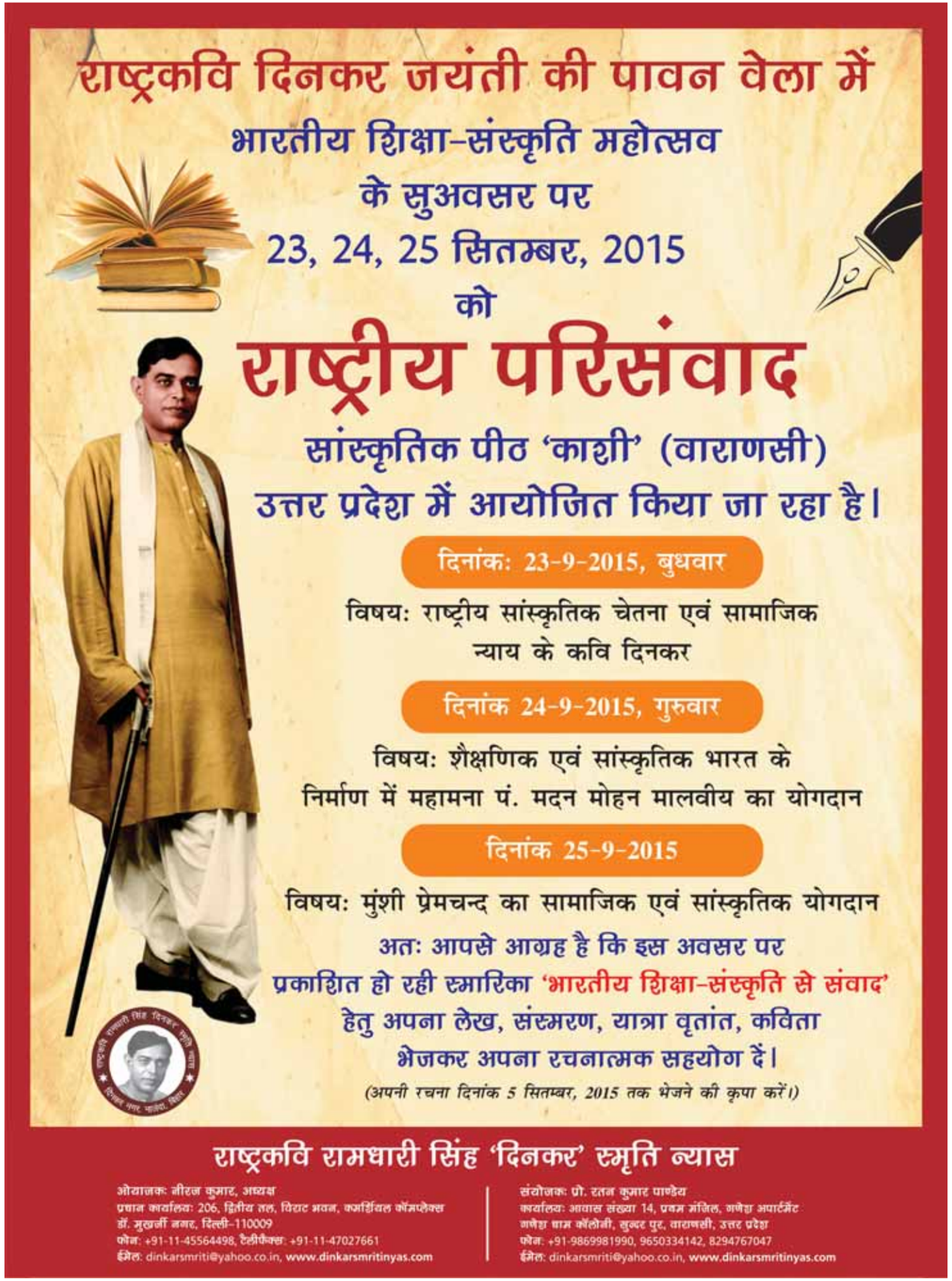
राष्ट्रकवि दिनकर जयंती की पावन वेला में
भारतीय शिक्षा-संस्कृति महोत्सव
के सुअवसर पर
23, 24, 25 सितम्बर, 2015
को
राष्ट्रीय परिसंवाद
सांस्कृतिक पीठ 'काशी' (वाराणसी)
उत्तर प्रदेश में आयोजित किया जा रहा है।
दिनांकः 23-9-2015, बुधवार
विषयः राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना एवं सामाजिक
न्याय के कवि दिनकर
दिनांक 24-9-2015, गुरुवार
विषयः शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक भारत के
निर्माण में महामना पं. मदन मोहन मालवीय का योगदान
दिनांक 25-9-2015
विषयः मुंशी प्रेमचन्द का सामाजिक एवं सांस्कृतिक योगदान
अतः आपसे आग्रह है कि इस अवसर पर
प्रकाशित हो रही स्मारिका 'भारतीय शिक्षा-संस्कृति से संवाद'
हेतु अपना लेख, संस्मरण, यात्रा वृतांत, कविता
भेजकर अपना रचनात्मक सहयोग दें।
(अपनी रचना दिनांक 5 सितम्बर, 2015 तक भेजने की कृपा करें।)
राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास
ओयाजकः नीरज कुमार, अध्यक्ष
प्रधान कार्यालयः 206, द्वितीय तल, विराट भवन, कमर्शियल कॉम्प्लेक्स
डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
फोनः +91-11-45564498, टैलीफैक्सः +91-11-47027661
ईमेलः dinkarsmriti@yahoo.co.in, www.dinkarsmritinyas.com
संयोजकः प्रो. रतन कुमार पाण्डेय
कार्यालयः आवास संख्या 14, प्रथम मंजिल, गणेश अपार्टमेंट
गणेश धाम कॉलोनी, लुब्दर पुर, वाराणसी, उत्तर प्रदेश
फोनः +91-9869981990, 9650334142, 8294767047
ईमेलः dinkarsmriti@yahoo.co.in, www.dinkarsmritinyas.com

कलम, आज उनकी जय बोल

कलम, आज उनकी जय बोल!
जला अस्थियाँ बारी-बारी
छिटकायी जिनने चिनगारी,
जो चढ़ गये पुण्य-वेदी पर लिये बिना गरदन का मोल!
कलम, आज उनकी जय बोल!

जो अगणित लघु दीप हमारे
तूफानों में एक किनारे,
जल-जल कर बुझ गये, किसी दिन माँगा नहीं स्नेह मुँह खोल।
कलम, आज उनकी जय बोल!

पीकर जिनकी लाल शिखाएँ
उगल रहीं लू-लपट दिशाएँ,
जिनके सिंहनाद से सहमी धरती रही अभी तक डोल!
कलम, आज उनकी जय बोल!

अन्धा चकाचौंध का मारा
क्या जाने इतिहास बेचारा?
साखी है उनकी महिमा के सूर्य, चन्द्र, भूगोल, खगोल!
कलम, आज उनकी जय बोल!

जाति जाति रटते, जिनकी पूंजी केवल पाषण्ड
मैं क्या जानूं जाति? जाति हैं ये मेरे भुजदण्ड।

– रश्मिरथी

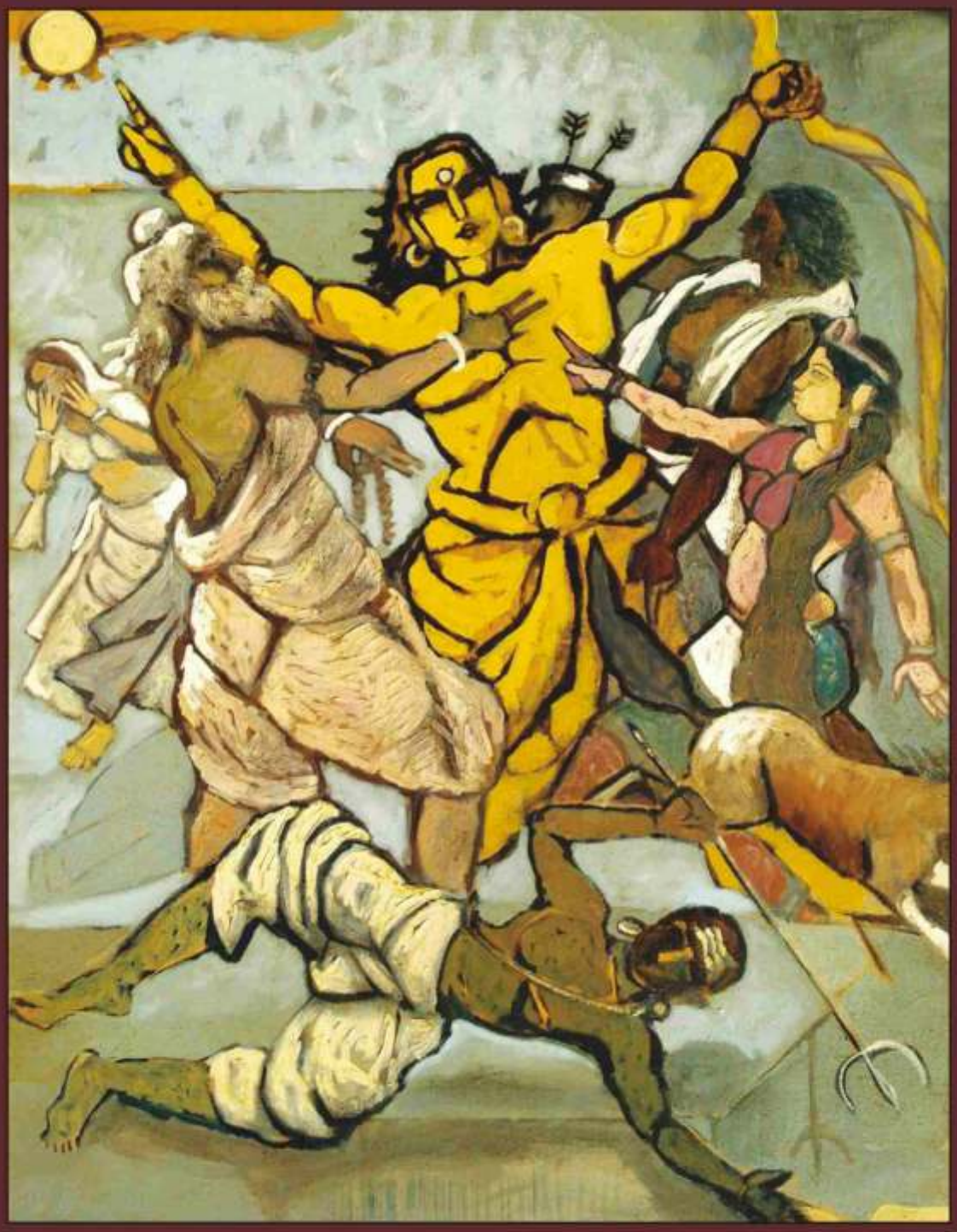

'रश्मिरथी' पर आधारित मनजीत सिंह की कलाकृति

नीरज कुमार, अध्यक्ष

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास

प्रधान कार्यालय: 206, द्वितीय तल, विराट भवन, कॉमर्शियल कॉमप्लेक्स, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली–110009

फोन: +91-11-45564498, टैलीफैक्स: +91-11-47027661

ईमेल: dinkarsmriti@yahoo.co.in, **www.dinkarsmritinyas.com**